र्क अंक

ूबर 1991

सात रुपये

'प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने कहा कि पंचायती राज और नगर-पालिका विधेयक के द्वारा स्थानीय निकायों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त होगा और इनसे यह सुनिश्चित होगा कि आम आदमी को सरकार की विकास योजनाओं का अधिकतम लाभ प्राप्त हो रहा है...उन्होंने कहा कि ये विधेयक आवश्यक हैं अन्यथा सरकार की योजनाओं के लाभ आम आदमी तक नहीं पहुंच पाते। योजनाओं का केवल 15 प्रतिशत भाग ही वास्तविक लाभार्थियों तक पहुंच पाता है और शेष राशि लालफीताशाही में ही गुम हो जाती है।'

— राजीव गांधी

(भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी द्वारा 15 अक्तूबर, 1989 को अलीगढ़ की एक सार्वजनिक सभा में दिए गए भाषण की "नेशनल हेराल्ड", दिल्ली में प्रकाशित रिपोर्ट से)।

वर्ष–36, अंक 12, आश्विन-कार्तिक शक-1913

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

सम्पादक : राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : ललिता जोशी
विज्ञापन प्रबंधक : बैजनाथ राजभर
व्यापार व्यवस्थापक : जसवंत सिंह
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : शकुन्तला
उत्पादन अधिकारी : के. आर. कृष्णन्

आवरण पृष्ठों की साज सज्जा : अल्का
चित्र : फोटो प्रभाग एवं रमेश चन्द्र ग्रामीण विकास विभाग

वार्षिक चंदा : 30 रु.

विषय सूची

गांवों के चतुर्दिक विकास के लिए ग्राम-स्वराज आवश्यक — 3
मस्तराम कपूर
ग्रामीण विकास : जन-भागीदारी एकमात्र विकल्प — 7
लक्ष्मी चन्द जैन
गरीबी उन्मूलन : कुछ मुद्दे — 11
भूपेन्द्र बेकल
ग्रामीण विकास और कार्यात्मक साक्षरता — 17
डा. हीरालाल बाछोतिया
ग्रामीण विकास कार्यक्रम समस्याएं एवं समाधान — 21
डा. भक्तराम शर्मा
गज़ल — 25
बेविल 'सरहदी'
ग्रामीण विकास कार्यक्रम उपलब्धियां और विश्लेषण — 27
मोहन दास नैमिशराय
ग्रामीण विकास की समस्याएं — 32
डा. विश्वमित्र उपाध्याय
ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में जवाबदेही — 37
सुबह सिंह यादव
ग्रामीण विकास के बुनियादी पहलू — 43
डा. नारायण दत्त पालीवाल
समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम : उपलब्धियां और संभावनाएं — 49
डा. श्याम शर्मा
ग्रामीण विकास कार्यक्रम-पुनर्निरीक्षण — 59
दीपक भल्ला
ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन की जरूरत — 63
प्रो. जे. पी. यादव
ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की मूल समस्याएं — 68
डा. अभय कुमार
ग्रामीण विकास—उपलब्धियां और चुनौतियां — 76
सुन्दर लाल ककरेजा
ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर — 81
नवीन पन्त
ग्रामीण विकास कार्यक्रम : समस्याएं एवं संभावनाएं — 86
डा. गिरिजा प्रसाद दूबे
ग्रामीण उद्योगों का विस्तार-असुविधाओं का शिकार — 91
वेद प्रकाश अरोड़ा
ग्रामीण विकास से सम्बद्ध विवर्गीय एवं अधिशासी तंत्र एक विश्लेषण — 96
डा. नरेश चन्द्र त्रिपाठी
ग्रामीण विकास : सपना अधूरा क्यों? — 99
सुभाष चन्द्र "सत्य"
विकास कार्यक्रम ऐसे हों जिनसे ग्रामीण लाभान्वित हों — 103
विमल
ग्रामीण विकास : आवश्यकता है ईमानदारी की.... — 107
डा. मुन्नीलाल विश्वकर्मा

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने है तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।
दूरभाष : 384888

सम्पादकीय

ग्रामीण विकास धीमा क्यों?

प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिंह राव ने 22 जून, 1991 को राष्ट्र के नाम अपने प्रथम प्रसारण में कहा था, "गांवों में गरीबों की दशा सुधारने पर हमारी सरकार सबसे पहले ध्यान देगी....प्रशासन को इस संबंध में और अधिक उत्तरदायी बनाया जाएगा यह भी सुनिश्चित किया जाएगा कि विकास कार्यों पर होने वाले खर्च का लाभ लोगों तक वास्तव में पहुंचे।" प्रधानमंत्री के इस कथन से यह संकेत मिलता है कि यद्यपि सरकार विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी व अभाव को कम करने के पूरी गंभीरता से प्रयास कर रही है फिर भी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का कार्यान्वयन संतोषजनक नहीं है। प्रधानमंत्री के उपरोक्त कथन से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। पहली तो यह कि जिन लोगों पर ग्रामीण विकास योजनाएं चलाने की जिम्मेदारी है वे उन हजारों-करोड़ों लोगों की आवश्यकताओं, आशाओं के प्रति पूरी तरह संवेदनशील नहीं हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी घोर गरीबी, तंगदस्ती, फटेहाली का जीवन बिताने को मजबूर हैं। ग्रामीण विकास योजनाएं चलाने की जिम्मेदारी जिन लोगों के हाथों में है उनमें से अधिकांश सम्भ्रांत वर्ग से आते हैं। ग्रामीण परिवेश की उन्हें कोई जानकारी नहीं होती। परिणाम यह होता है इन कार्यक्रमों को वे आधे-अधूरे मन से चलाते हैं। इसलिए इनका लाभ ग्रामीण आबादी को पूरी तरह नहीं मिलता। दूसरी यह है कि ग्रामीण विकास के लिए निर्धारित राशि के उपयोग में कहीं न कहीं कसर जरूर है। प्रधानमंत्री के भाषण से स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास के लिए खर्च हो रही राशि उन लोगों तक उस तरह नहीं पहुंच रही है जैसा कि होना चाहिए। भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री राजीव गांधी ने भी 15 अक्तूबर, 1989 को उत्तर प्रदेश के नगर अलीगढ़ में एक आम सभा में यही बात कही थी। पंचायती राज और नगर पालिका विधेयकों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था, "विकास योजनाओं पर सरकार अपनी तरफ से जहां एक रुपया खर्च करती है, वह आम जनता तक पहुंचते-पहुंचते केवल 15 पैसे ही रह जाता है। बाकी तो लालफीताशाही में फंस कर गुम हो जाता है।"

अतः कुरुक्षेत्र ने इस बार अपने वार्षिक अंक के लिए यही विषय चुना और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में अग्रणी अर्थशास्त्रियों व विशेषज्ञों के विचार आमंत्रित किए, जो लेखों में आपके समक्ष प्रस्तुत हैं। इनसे हमने अनुरोध किया कि वे इस मुद्दे की गहराई से जांच करें और ये सुझाव भी दें कि ग्रामीण विकास पर होने वाले खर्च को पूरी तरह उपयोगी बनाने और उसे सीधा लक्षित लोगों तक पहुंचाने के लिए वे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रभावी कार्यान्वयन की किस तरह की व्यवस्था की कल्पना करते हैं, वर्तमान व्यवस्था में कहां और क्या खामियां देखते हैं, इन्हें दूर करने के क्या उपाय सामने रखना चाहते हैं। इस वार्षिक अंक में प्रस्तुत समस्त लेख इस दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं जब कि आठवीं पंचवर्षीय योजना की तैयारी अब अपने अंतिम चरण में है।

— सम्पादक

गांवों के चतुर्दिक विकास के लिए ग्राम-स्वराज आवश्यक

मस्तराम कपूर

गांधीजी का कहना था कि गांवों की आत्मनिर्भरता राष्ट्र के विकास के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। उन्होंने सबसे पहले भारत के विकास के लिए गांव का विकास शुरू करने का विचार सामने रखा। उन्होंने ग्रामीण प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए पंचायती राज की कल्पना भी सामने रखी क्योंकि उनका कहना था कि पंचायत लोकतंत्र की मूल इकाई है। लेकिन ग्राम स्वराज की उनकी इस कल्पना को हमने साकार नहीं होने दिया। स्वाधीनता के बाद पंचायत प्रणाली के स्थान पर पश्चिमी माडल से प्रभावित सामुदायिक विस्तार कार्यक्रम चलाए गए, जिनसे पंचायतों की ताकत क्षीण हो गई और नौकरशाही का गांवों में भी बोलबाला हो गया। प्रस्तुत लेख में लेखक ने इन्हीं पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

महात्मा गांधी ने बीसवीं शताब्दी के शुरू में 'हिन्द स्वराज' पुस्तक लिखकर ऐसे भारत की कल्पना की थी जिसमें आत्मनिर्भर गांव को राष्ट्रीय ढांचे की इकाई माना गया था। उनकी यह मान्यता कि असली भारत गांवों में है, आज भी उतनी ही सच है जितनी वह सदी के शुरू में थी। आज भी लगभग अस्सी प्रतिशत आबादी गांवों में बसती है और समूचे राष्ट्र का विकास गांवों के विकास के साथ जुड़ा हुआ है।

गांधीजी ने भारत के विकास के लिए गांवों के विकास प्रक्रिया से शुरू करने का विचार रखा। वे कहते थे हिन्दुस्तान में जो सात लाख गांव हैं (उस समय गांवों की संख्या सात लाख के आस-पास थी) इनमें प्रत्येक गांव स्वनिर्भर गणराज्य बने। हरिजन पत्रिका में प्रकाशित एक लेख में उन्होंने लिखा :

> स्वराज की मेरी कल्पना है कि प्रत्येक ग्राम स्वतंत्र और आत्मनिर्भर गणराज्य हो और केवल उन्हीं मामलों में दूसरे गांव, दूसरे इलाके पर निर्भर रहे जिनमें यह निर्भरता अनिवार्य है। बाकी जीव आवश्यक वस्तुओं के बारे में आत्म निर्भर हों। हर गांव में हमारा फर्ज है कि ग्राम के अपने इस्तेमाल के लिए अनाज वहीं पैदा हो।"

गांधीजी को यह पसंद नहीं था कि एक इलाका केवल गन्ना पैदा करे दूसरा केवल कपास और तीसरा केवल अनाज। इस तरह का विभाजन (विशेषीकृत उत्पादन) पश्चिमी अर्थव्यवस्था की विशेषता थी जिसे गांधीजी पसंद नहीं करते थे। अपनी अधिकांश जरूरत की चीजों का खुद उत्पादन उनके अनुसार भारतीय कृषि परंपरा के अनुरूप था। पश्चिमी देशों में अर्थव्यवस्था के जो सिद्धांत लोकप्रिय थे उनके अनुसार केवल बाजार के लिए किए गए उत्पादन को ही उत्पादन माना जाता था। गांधीजी को ये सिद्धांत मान्य नहीं थे। उनका निश्चित मत था कि अपनी जरूरतों के लिए किया गया उत्पादन भी उत्पादन है और अपनी जरूरत को पूरा करने के बाद जो शेष बचे उसे बाजार में भेजा जा सकता है। गांधीजी गांवों को बाजार पर नियंत्रण करने वाली ताकतों से मुक्त रखना चाहते थे।

अर्थव्यवस्था के संबंध में गांधीजी की इस मान्यता को अब पश्चिमी देशों में बहुत महत्वपूर्ण माना जा रहा है। कारण यह है कि अर्थव्यवस्था के बारे में पश्चिमी कल्पना के अनुसार, जिसमें बाजार के लिए किए गए उत्पादन को ही उत्पादन माना जाता है, अपने लिए किए गए वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को राष्ट्रीय उत्पादन में शामिल नहीं किया जाता। इसका अर्थ है कि जो गृहणियां घर के काम-काज तथा बच्चों के पालन-पोषण में जीवन खपाती हैं, उनके श्रम को अनुत्पादक कहकर उपेक्षित कर दिया जाता है। अब पश्चिमी अर्थशास्त्री

और समाजशास्त्री कहने लगे हैं कि अपने लिए किए गए वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के प्रति इस तरह का रवैया तर्क-संगत नहीं है क्योंकि गृहणियों का यह अदृश्य उत्पादन बाजार के लिए किए गए उत्पादन में सहायक होता है और उस उत्पादन में गृहणियों का भी भाग होता है। इसके अतिरिक्त अब पश्चिमी देशों में अपनी जरूरतों के लिए वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया जा रहा है जैसे किचन गार्डन्स में साग-सब्जियों के उत्पादन तथा बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा आदि के लिए कारखाने या दफ्तर की तरफ से दी जाने वाली सुविधाएं। यहां तक कि अब वहां उत्पादक-उपभोक्ता की संकल्पना की जोर-शोर से चर्चा होने लगी है जिसका अर्थ है कि लोग अपने उपभोग के लिए वस्तुओं और सेवाओं का अधिक से अधिक उत्पादन करें। यही गांधीजी की भी कल्पना थी।

गांधीजी राजनीति, सत्ता, उत्पादन-वितरण और संस्कृति के विकेन्द्रीकरण पर जोर देते थे। हम लोग केन्द्रीकरण पर इतना जोर दे रहे हैं कि लगता है हम उल्टे गियर पर चल रहे हैं। हम भारत में ऐसी पिरामिडी सभ्यता का निर्माण कर रहे हैं जिसके शिखर पर इस्पात और सीमेंट लगा है और मध्य-स्तर पर बाँस, चराई और मिट्टी लगी है। अंततः महासागर में ज्वार आएगा। जब जल-प्रलय शुरू होगा तो संघर्ष में और लोग भी शामिल हो जाएंगे।

गांवों को आत्मनिर्भर गणराज्य बनाने के लिए गांधीजी ने एक तरफ तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रूपरेखा प्रस्तुत की जिसमें स्वावलंबन प्रधान खेती, सिंचाई प्रणाली, हस्तशिल्प, ग्राम और कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य सफाई तथा प्राथमिक शिक्षा आदि को विशेष महत्व दिया गया, दूसरी ओर उन्होंने ग्रामीण प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए पंचायत राज की कल्पना रखी। उनके अनुसार पंचायत लोकतंत्र की मूल इकाई थी। यदि पंचायतों को अच्छे ढंग से काम करने के लिए प्रेरित किया जाए तो ग्रामीण प्रशासन की अधिकांश त्रुटियां दूर हो सकती हैं। उनका विचार था कि पंचायतों पर गांव की जनता का सीधा नियंत्रण रहना चाहिए। गांव सभाएं जनता की प्राथमिक एसेम्बलियों की तरह काम करें और वे न केवल पंचायत के कामों पर नजर रखें बल्कि सरकारी अधिकारियों, पुलिस और राजस्व विभाग के कर्मचारियों पर भी निगरानी रखें। अगर गांव सभाओं की प्रणाली को मजबूत किया जाता और उन्हें एसेम्बलियों की तरह गांव की कार्यपालिका (पंचायत) और शासन-तंत्र को गांव सभाओं के आगे जवाबदेह बनाया जाता (जैसे केन्द्रीय सरकार और सारा शासन-तंत्र लोक सभा के और राज्यों की सरकारें तथा शासन-तंत्र विधान सभाओं के आगे जवाबदेह हैं) तो पंचायतें और सरकारी तंत्र मनमानी नहीं कर सकते थे। पंचायत राज विधेयक पर बोलते हुए भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने बड़े दुख के साथ कहा था कि "योजनाओं के कुल निवेश का केवल 15 प्रतिशत ही वास्तविक लाभार्थी तक पहुंच पाता है और शेष राशि लालफीताशाही के कारण बर्बाद हो जाती है।"

यह स्थिति क्यों पैदा हुई? यह इसलिए पैदा हुई कि हमने गांधीजी के विचारों को एक तरफ कर दिया। हमने उनके ग्राम-स्वराज की कल्पना को साकार नहीं होने दिया और उनकी कल्पना की अर्थव्यवस्था तथा पंचायत-प्रणाली गांवों में लागू नहीं की। महात्माजी ने इस पर दुख प्रकट करते हुए कहा था : "देश आजाद हो रहा है लेकिन अब मेरी बात कोई नहीं सुनना चाहता। मैं देश के विभाजन के खिलाफ हूं। कांग्रेसी नेता कहते हैं जल्दी सत्ता मिले, जल्दी देश आजाद हो, विभाजन की कीमत चुका कर भी....हिन्दु-मुस्लिम एकता का मेरा स्वप्न टूट रहा है।" इस बात से उन्हें और भी तकलीफ हुई कि उनके दो प्रिय शिष्य जवाहरलाल और सरदार पटेल बड़े-बड़े उद्योग-कारखानों और शक्तिशाली सेना बनाने की बातें करने लगे। उन्हें लगा कि मेरा जो अर्थव्यवस्था का सपना था मेरी स्वतंत्र भारत की जो तस्वीर थी, उससे ये लोग हट रहे हैं।

देश के स्वतंत्र होने के बाद पहले पंचायत प्रणाली के बजाय पश्चिमी मॉडल से प्रभावित सामुदायिक विस्तार योजनाओं को लागू किया गया। इससे गांवों में कुछ काम तो हुआ लेकिन नौकरशाही तंत्र गांवों में घुस गया। पंचायतों की शक्तियां नाम मात्र की रह गईं और ग्रामीण विकास का काम खंड विकास अधिकारियों के ऊपर छोड़ दिया गया। लालफीताशाही ग्राम-विकास योजनाओं पर हावी हो गई और जनता के सहयोग तथा उसकी भागीदारी से विकास योजनाएं वंचित हो गईं। सामुदायिक विस्तार कार्यक्रमों की असफलता देख कर पंचायत प्रणाली को लाने की पुनः कोशिश की गई और तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने ही इसका जोर-शोर के साथ शुभारंभ किया। लेकिन वह लागू हो नहीं पाई। नौकरशाही तंत्र का जाल तब तक इतना व्यापक हो चुका था कि नई पंचायत प्रणाली को लागू करने में कदम-कदम पर बाधाएं उपस्थित होने लगी। सरकारी कर्मचारियों की लंबी जमात अपने तौर-तरीके बदलने के लिए तैयार नहीं थी। इसके अलावा रोजनेताओं की एक नई जमात तैयार हो गई, जो सरकारी तंत्र, ठेकेदारों-इंजीनियरों से मिलकर विकास-योजनाओं के लिए स्वीकृत धन-राशि का दुरुपयोग करने लगे।

श्री एस. के. डे जो नेहरू युग के पंचायती राज और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के मुख्य शिल्पी थे, 1967 में छपी अपनी पुस्तक 'पावर टू दि पीपुल' में कहा :

"गांधीजी राजनीति, सत्ता, उत्पादन-वितरण और संस्कृति के विकेन्द्रीकरण पर जोर देते थे। हम लोग केन्द्रीकरण पर इतना जोर दे रहे हैं कि लगता है हम उल्टे गियर पर चल रहे हैं। हम भारत में ऐसी पिरामिडी सभ्यता का निर्माण कर रहे हैं जिसके शिखर पर इस्पात और सीमेंट लगा है और मध्य-स्तर पर बाँस, चराई और मिट्टी लगी है। अंततः महासागर में ज्वार आएगा। जब जल-प्रलय शुरू होगा तो संघर्ष में और लोग भी शामिल हो जाएंगे। इस बात की पूरी संभावना है कि भारत की धरती पर एक कुरुक्षेत्र का युद्ध लड़ा जाए।"

यदि पंचायती राज को सफल बनाना है और ग्राम विकास कार्यक्रमों को प्रभावकारी तरीके से कार्यान्वित करना है तो भ्रष्ट नौकरशाही तंत्र में आमूल परिवर्तन करना पड़ेगा। केन्द्रीय और राज्य स्तर की अकर्मण्यता तथा भ्रष्टाचार ही यदि गांव के स्तर पर विकेन्द्रित हुआ तो न पंचायत प्रणाली कामयाब होगी और न विकास-कार्यक्रमों से अपेक्षित लाभ होगा।

स्वर्गीय राजीव गांधी ने अपने एक भाषण में कहा था कि ग्राम स्तर पर आर्थिक और सामाजिक योजनाएं बनें और वास्तविकताओं से दूर प्राथमिकताएं निर्धारित करने का सिलसिला बंद होना चाहिए। ठीक यही बात अब उन्नत देशों के अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री भी कर रहे हैं। उनके अनुसार एक केन्द्रीयकृत निर्णय तंत्र आज हमारी समस्याओं को नहीं समझ सकता और उनके विषय में सही निर्णय नहीं ले सकता। उन्नत देशों में आज केन्द्रीयकृत व्यवस्था से लगे बड़े-बड़े उद्योगों से मोह-भंग हो रहा है तथा वहां लघुता के सौंदर्य की खोज होने लगी है। वे निर्णय तंत्र को विकेन्द्रित करके ग्रासरूट स्तर पर सोशल एसेम्बलियां बनाने के सुझाव रख रहे हैं। उद्देश्य यह है कि जनसाधारण अपने भविष्य के बारे में स्वयं निर्णय ले, अपने विकास की योजनाएं स्वयं बनाएं और स्वयं अपनी सीधी देख-रेख में उन्हें कार्यान्वित करें। उनका कहना है कि ऊपर बैठे चंद लोगों द्वारा लक्ष्यों का निर्धारण अब बेमतलब हो गया है।

गांधीजी ने ग्रासरूट की सोशल एसेम्बलियों की कल्पना पंचायत प्रणाली के रूप में की। बाद में डॉ. राम मनोहर लोहिया ने उसे चौखंभा राज की संरचना में प्राथमिक खम्भा बनाया। चौखम्भा राज के अनुसार ग्राम-स्तर, जिला-स्तर, राज्य-स्तर और केन्द्र-स्तर पर स्वायत्त और स्वावलंबी ढांचे की कल्पना की। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने भी अपनी सम्पूर्ण क्रांति की कल्पना में ग्राम और मोहल्ला स्तरों पर लोक समितियों का सुझाव दिया जो जनता को संगठित, शिक्षित और जागरुक बनाए।

विचार करने की बात है कि गांधी, लोहिया और जयप्रकाश नारायण ने अलग-अलग समय पर, अलग-अलग परिस्थितियों से गुजरते हुए ग्रामीण भारत की समस्याओं पर विचार किया और वे ऐसे निष्कर्षों पर पहुंचे। देश के राजनैतिक और आर्थिक ढांचे के लिए उन्होंने जो योजनाएं रखीं उनका उद्देश्य था सत्ता का जन-साधारण के स्तर पर विकेन्द्रीकरण। इसका कारण था जन-साधारण की शक्ति और उत्साह पर इन नेताओं की अगाध आस्था। तीनों नेता स्वतंत्रता आंदोलन में से तप कर निकले थे। उन्होंने जनता की शक्ति को स्वयं देखा था कि कैसे उसने एक अत्यंत शक्तिशाली साम्राज्य को उखाड़ फेंका था। उन्होंने अनेक यातनाएं झेल कर यह भी सीखा था कि विदेशी टेक्नोलोजी पर निर्भर रहने के बजाय हमें अपने देश की जरूरतों के मुताबिक नई टेक्नोलोजी तथा नई अर्थ एवं प्रशासन-व्यवस्था विकसित करनी पड़ेगी। इसीलिए पंचायत प्रणाली, ग्राम-स्वराज तथा ग्रासरूट लोकतंत्र पर उनकी दृढ़ आस्था थी।

यदि पंचायती राज को सफल बनाना है और ग्राम विकास कार्यक्रमों को प्रभावकारी तरीके से कार्यान्वित करना है तो भ्रष्ट नौकरशाही तंत्र में आमूल परिवर्तन करना पड़ेगा। केन्द्रीय और राज्य स्तर की अकर्मण्यता तथा भ्रष्टाचार ही यदि गांव के स्तर पर विकेन्द्रित हुआ तो न पंचायत प्रणाली कामयाब होगी और न विकास-कार्यक्रमों से अपेक्षित लाभ होगा। यह काम होगा ग्राम स्तर पर एक नई संस्कृति को जन्म देकर जिसमें आम जनता अपनी क्षमता को पहचाने और उसका इस्तेमाल करना सीखें। 1942 में लुई फिशर के साथ बात करते हुए गांधीजी ने कहा था कि आजाद हिन्दुस्तान में गांव स्वशासी इकाई बनेंगे और वे सिविल नाफरमानी करके तथा सरकारी प्रतिबंधों को तोड़ कर भी अपने अधिकारों को प्राप्त करेंगे।

संविधान के 64वें संशोधन विधेयक के द्वारा राजीव गांधी सरकार ने पंचायतों को मजबूत करने और ग्रासरूट स्तर पर लोकतंत्र को सुदृढ़ करने का प्रयास किया था। इस काम को ईमानदारी के साथ सही परिणति तक पहुंचाया जाना चाहिए।

सही परिणति से तात्पर्य है कि जिस तरह गांधी, लोहिया और जयप्रकाश नारायण जनसाधारण को अपने अधिकारों के प्रति जागरुक बना कर उसे लोकतंत्र का मूलाधार बनाना चाहते थे, उस दिशा में सचेष्ट प्रयास किए जाएं। इसके लिए एक तो हमें गांव की आम जनता की साधारण सभाओं (गांव सभा) को कानूनी मान्यता देनी होगी और उसके नियतकालीन अधिवेशनों की उसी प्रकार व्यवस्था करनी होगी जैसे केन्द्र और राज्य स्तर के विधान मंडलों की गई है। गांव सभा के अधिवेशनों में जनता को मौका मिले कि वह पंचायतों-सरकारी विभागों और उनके कर्मचारियों तथा पुलिस से जवाब तलब कर सकें। इन जन सभाओं का ग्राम-स्तर की सारी शासन-व्यवस्था पर अंकुश रहना चाहिए। सरकारी अफसरों का भ्रष्टाचार और पुलिस की लापरवाही तथा गैर-जिम्मेदारी इन खुली सभाओं की बहस का विषय बनना चाहिए। यदि इन सभाओं में किसी विभाग या अफसर की आलोचना हो तो इसके खिलाफ तुरन्त जांच कराई जानी चाहिए और उसे उचित दंड दिया जाना चाहिए। इतना ही नहीं, यदि जनता को सही मायनो में शासन तंत्र पर अंकुश रखना है, जो लोकतंत्र का वास्तविक उद्देश्य होता है, तो जनता के पास विरोध, प्रदर्शन, शांतिपूर्ण सत्याग्रह तथा सिविल नाफरमानी जैसे अहिंसात्मक हथियार भी होने चाहिए। ये अहिंसात्मक हथियार हमारे स्वतंत्रता आंदोलन की देन हैं और इसलिए इन्हें समुचित आदर की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि जब जनता के महत्वपूर्ण अहिंसात्मक हथियारों को छीना जाता है तो जनता हिंसा के रास्ते पर चल पड़ती है।

एक स्वस्थ विकेन्द्रित लोकतंत्र, सशक्त पंचायत-प्रणाली, उद्योगों का ग्राम स्तर पर छोटी-मोटी इकाइयों में विकेन्द्रीकरण, ग्रामीण जनता के अनुरूप सरल और सस्ती प्रौद्योगिकी और सबसे अधिक महत्वपूर्ण शिक्षा और साक्षरता का प्रसार ये तमाम चीजें गांव के विकास कार्यक्रमों को अभीष्ट तक ले जाने तथा गांधीजी के ग्राम-स्वराज के सपने को साकार करने के लिए आवश्यक हैं।

79 बी, पाकेट 3, मयूर विहार
दिल्ली-110091

मत्स्य पालक विकास अभिकरण फर्रूखाबाद

अच्छी उपज और अच्छी आय—करके देखो मत्स्य व्यवसाय

ग्रामीण अंचल में उपलब्ध जल सम्पदा का समुचित सदुपयोग हेतु फर्रूखाबाद में वर्ष 82-83 से मत्स्य पालन कार्यक्रम के सम्पादन हेतु निम्न प्रक्रिया अपनाई।

1— भूराजस्व विभाग के सहयोग से ग्राम समाज में निहित तालाबों का पात्र व्यक्तियों को 10 वर्षीय पट्टा दिलाना।

2— तालाब सुधार एवं प्रथम वर्ष के उत्पादन निवेश हेतु अधिकतम रु० बीस हजार प्रति हेक्टर की दर से ऋण उपलब्ध कराना जिस पर 25% का अनुदान अभिकरण द्वारा दिया जाता है।

3— मत्स्य पालकों को दस दिवसीय मत्स्य पालन प्रशिक्षण 150 रु० प्रशिक्षण भत्ता दिया जाना।

4— नकद भुगतान दिये जाने पर उत्तम नस्ल का मत्स्य बीज मत्स्य पालकों को उपलब्ध कराना।

यदि वैज्ञानिक पद्धति से मत्स्य पालन किया जाए तो एक हेक्टर जल क्षेत्र से कम से कम 3000 कि०ग्रा० मत्स्य उत्पादन होता है जिससे मत्स्य पालक को रु० पच्चीस हजार से तीस हजार की आय होती है।

सुख समृद्धि का साधन—सघन मत्स्य उत्पादन

(नूरूल हक)
मुख्य कार्यकारी अधिकारी,
मत्स्य पालक विकास अभिकरण
फर्रूखाबाद

(बी०एन० अग्रवाल)
अतिरिक्त जिलाधिकारी (परि०)
फर्रूखाबाद

(राजू शर्मा)
आई०ए०एस०
जिलाधिकारी
फर्रूखाबाद

ग्रामीण विकास: जन-भागीदारी एक मात्र विकल्प

लक्ष्मी चन्द जैन

जाने-माने ग्रामीण अर्थशास्त्री श्री जैन ने इस लेख में यह स्पष्ट किया है कि केन्द्रीकृत नियंत्रण की परम्परागत प्रणाली से ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता चाहे यह कितने ही प्रभावशाली क्यों न हो। उनके मतानुसार, ग्रामीण विकास की योजना बनाने और उसे अमल में लाने का काम चुनी हुई स्थानीय संस्थाओं के हाथों में सौंपा जाना चाहिए और विकास कार्यों के विशेषज्ञों को इन संस्थाओं के निर्देशों के अनुसार काम करने के लिए कहा जाना चाहिए। श्री जैन का विश्वास है कि जब तक विकास की प्रक्रिया और निर्णय लेने में लोगों को शामिल नहीं किया जाएगा तब तक हमारे व्यापक लोकतांत्रिक समाज में सार्थक विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। वास्तव में वे विकास प्रक्रिया के केन्द्र बिन्दु होने चाहिए।

औद्योगीकीकरण को उदार बनाने की आवश्यकता पर अत्याधिक ध्यान दिया जा रहा है। यह व्यापक रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि भारत के औद्योगिक क्षेत्र में सभी गुण विद्यमान होने के बावजूद अफसरशाही नियंत्रण इसके विकास में बाधक रहा है। भारत के उद्योगों में भारी मात्रा में निवेश, कुशल प्रशासनिक शक्ति अन्तर्ग्रस्त है फिर भी इनका विकास न तो स्वदेशी मांग को पूरा कर पाने में सक्षम बन सका है और न ही अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का मुकाबला कर सका है।

दूसरी ओर, ग्रामीण प्रशासन के सम्मुख आ रही समस्याओं की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है जिससे ग्रामीण विकास नहीं हो सका है। ग्रामीण विकास का काम योजना बनाने से लेकर उसे अमलीजामा पहनाने तक अफसरों के हाथों में रहता है। वास्तव में हाल के वर्षों में सरकार के कुछ नेताओं ने ग्रामीण प्रशासन की कार्य क्षमता और नीयत की आलोचना की है। राजीव गांधी के शब्दों में "गरीबों के कल्याण के लिए दिए जाने वाले एक रुपये में से 85 पैसे उन तक नहीं पहुंचते हैं।" पिछले दस वर्षों में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर 25,000 करोड़ रुपये खर्च किए गए हैं और इतनी गम्भीर आलोचनाओं के बाद भी ग्रामीण प्रशासन में कोई सार्थक सुधार लाने अथवा कार्य प्रणाली में संशोधन करने के किसी भी पहलू पर बल नहीं दिया गया है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि वित्त मंत्री ने यह बात दोहराई है कि कुल योजना परिव्यय का 50 प्रतिशत अंश ग्रामीण क्षेत्रों पर खर्च किया जाएगा। इस समय ग्रामीण क्षेत्रों के लिए निर्धारित परिव्यय की राशि की समस्या नहीं है, हालांकि यह भी महत्वपूर्ण है, लेकिन वास्तविक समस्या यह है कि इस क्षेत्र के लिए निर्धारित किए गए परिव्ययों को ईमानदारी और बुद्धिमत्ता से इस्तेमाल किया जाए। आवश्यकता इस बात की है कि यदि अधिक नहीं तो ग्रामीण विकास के लिए दिया हर एक रुपया कम से कम तीन रुपयों का काम करे।

यद्यपि रुपया अपनी उत्पादकता नहीं बढ़ा सकता। यह काम तो विकास कार्य में लगे तंत्र को करना है जो एक-एक रुपये से अधिकतम लाभ उठा सकता है। यह प्रसन्नता का विषय है कि 'कुरुक्षेत्र' ने अपने वार्षिक अंक के लिए इस महत्वपूर्ण विषय को चुना है। यह कैसे सुनिश्चित किया जा सकता है कि देश में जो लोग विभिन्न विकास परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी हैं, उन्हें अपने कार्यों के प्रति सजग और जिम्मेवार बनाया जाए।

सबसे पहले हमें इस बात का निर्णय लेना होगा कि ग्रामीण प्रशासन के लिए किसे उत्तरदायी बनाया जाए जबकि ग्रामीण प्रशासन की कार्य-कुशलता में कुछ आमूल-चूल सुधार किए जा सकते हैं, लेकिन जब तक इस कार्य में स्थानीय लोगों को उत्तरदायी नहीं बनाया जाएगा तब तक विकास कार्यों में किए जाने वाले निवेश से लोगों की वास्तविक आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती।

उत्तरदायित्व की ऐसी स्थिति किसी केन्द्रीय नियंत्रण, चाहे वह कितना ही प्रभावशाली हो अथवा उसकी निगरानी कितनी

ही कड़ी न रखी गई हो, से नहीं आ सकती। इसके लिए, गांवों की योजना बनाने और अमल में लाने का काम वहां के स्थानीय लोगों की समितियों और ऐसे व्यक्तियों के हाथों में सौंपा जाना चाहिए जिनके लाभ के लिए ये काम किए जाते हैं। साथ ही साथ गांवों में काम कर रहे अधिकारियों के काम पर निगरानी रखने का अधिकार इन समितियों का होना चाहिए। योजनाओं के कार्यान्वयन में यह महत्वपूर्ण परिवर्तन करने से ही इस जटिल समस्या का समाधान हो सकता है।

हमारे ग्रामीण ढांचे में एकमात्र मतभेद स्पष्ट रूप से लोकतंत्र और अफसरशाही के बीच है। लोकतांत्रिक समाज में विकास और निर्णय लेने की प्रक्रिया से लोगों को दूर रखकर सार्थक रूप में कोई विकास नहीं किया जा सकता। वास्तव में इन कार्यों में उनकी तो केन्द्रीय भूमिका होनी ही चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन निकायों के प्रतिनिधियों को प्रशासनिक और तकनीकी सहायता की आवश्यकता होगी। लेकिन उनकी भूमिका लोगों के प्रयासों में मदद करने की होगी और इस प्रकार इन निकायों को सरकारी योजनाओं को कार्यान्वित करने में एजेन्टों अथवा दलालों की मदद लेने की जरूरत नहीं रहेगी।

ग्रामीण प्रशासन के गठन में एक दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन अधिक संख्या में तकनीकी अधिकारियों की नियुक्ति करके लाया जा सकता है। तकनीकी कर्मचारियों से अर्थ यह नहीं है कि सरकार तकनीकी विशेषज्ञों को नियुक्त करे। आज के युग में अफसरशाही से हटकर हमारे देश में सामाजिक, शैक्षिक और तकनीकी संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। इन संस्थानों के तकनीकी और व्यावसायिक संसाधनों को, आपसी तालमेल से ग्रामीण विकास में लगाया जा सकता है। इससे विकास की संस्कृति में भी एक परिवर्तन आएगा।

पिछले एक दशक में, केन्द्र ने इतनी अधिक शक्तियां अपने हाथ में ले ली हैं कि राज्य सरकारें अपना अस्तित्व खो बैठी हैं। हमें अत्यधिक केन्द्रीकरण को समाप्त करना होगा। केन्द्र को उन कार्यक्रमों पर से नियंत्रण को समाप्त करना होगा जिन्हें राज्य अथवा गांव के स्तर पर चलाया जा सकता है। ऐसी लगभग 260 केन्द्रीय प्रायोजित योजनाएं हैं जिन्हें संयुक्त रूप से राज्यों और गांवों को आसानी से सौंपा जा सकता है, इस प्रकार प्रतिवर्ष लगभग 5,000 करोड़ रुपये की योजनाबद्ध राशि को गांवों और ग्रामीण विकास के लिए राज्यों को हस्तांतरित किया जा सकता है।

हमारे गांवों की बुनियादी आवश्यकता यह है कि प्रत्येक नागरिक को प्रारम्भिक शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल की सुविधाएं मुहैया कराई जाएं। केरल राज्य ने यह कर दिखाया है कि शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के बिना हम बढ़ती जनसंख्या पर रोक नहीं लगा सकते। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम प्राथमिक शिक्षा को पहली प्राथमिकता मानें। पिछले एक दशक के दौरान 60,000 करोड़ रुपये की राशि प्राथमिक स्कूलों और स्वास्थ्य केन्द्रों पर खर्च की गई है लेकिन सभी रिपोर्टों से पता चलता है कि कहीं-कहीं अध्यापक पढ़ाते ही नहीं हैं। कर्नाटक का उदाहरण उल्लेखनीय है जहां मण्डल पंचायतों के चुनाव के कुछ महीनों में ही पूरे राज्य में अध्यापकों और विद्यार्थियों की कक्षाओं में उपस्थिति 90 प्रतिशत हो गई थी। इस प्रकार हमें यह शिक्षा मिली कि पैसा महत्वपूर्ण है लेकिन इतना होना ही काफी नहीं है, हमें अपने स्कूलों, स्वास्थ्य प्रणाली के प्रबंध को प्रभावशाली बनाना होगा तभी सामाजिक और आर्थिक विकास हो सकता है।

हमारे ग्रामीण ढांचे में एकमात्र मतभेद स्पष्ट रूप से लोकतंत्र और अफसरशाही के बीच है। लोकतांत्रिक समाज में विकास और निर्णय लेने की प्रक्रिया से लोगों को दूर रखकर सार्थक रूप में कोई विकास नहीं किया जा सकता। वास्तव में इन कार्यों में उनकी तो केन्द्रीय भूमिका होनी ही चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन निकायों के प्रतिनिधियों को प्रशासनिक और तकनीकी सहायता की आवश्यकता होगी।

जैसा कि आप जानते हैं पिछले एक दशक के दौरान सरकार ने 25,000 करोड़ रुपये से अधिक की राशि लोगों की भागीदारी के बिना सरकारी माध्यमों से गरीबी निवारण कार्यक्रमों पर खर्च की है। यह खेद का विषय है कि इतनी बड़ी राशि से संतोषजनक परिणाम नहीं निकले हैं इसलिए पंचायती राज और आयोजना प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण के अलावा और कोई विकल्प नहीं है। लेकिन पंचायती राज संस्थाएं, जो कि एक सिक्के के दो पहलू हैं, तभी सार्थक हो सकती हैं जब उन्हें योजना बनाने की प्रक्रिया में भी शामिल किया जाए। इसलिए केन्द्र से लेकर गांवों तक अधिकारियों के बीच कार्यों और उत्तरदायित्वों के वितरण को सुव्यवस्थित करना होगा। यहां इस बात को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जिस स्तर का काम हो उसे उसी स्तर पर किया जाना चाहिए। उससे ऊपर के अधिकारी न तो उस काम को करें और न ही उसमें हस्तक्षेप करें अर्थात गांव का काम ग्राम पंचायत, जिले का काम जिला परिषद, राज्य का काम राज्य सरकार ही करें। एक-दूसरे के कंधों पर जिम्मेवारी डालने से विकास की आशा नहीं की जा सकती।

अब प्रश्न यह उठता है कि विगत अनुभवों को ध्यान में रखते हुए उन कार्यों का निर्धारण कैसे किया जाए जिन्हें राज्य अथवा

केन्द्र सरकार की तुलना में पंचायतें अधिक बेहतर ढंग से पूरा कर सकती हैं। कार्य वितरण में यह सम्भव हो सकता है कि पूरे देश में एक समान प्रणाली सफल न हो लेकिन भूमि, पानी, वन, पशुधन आदि जैसे संसाधनों के उचित प्रबंध पर आम राय हो सकती है कि उनके बारे में योजनाएं बुनियादी स्तर पर बनाई जाएं। इसलिए इनको गांव, मण्डल, ब्लाक, जिला परिषद् स्तरों पर पंचायती राज संस्थाओं के कार्य क्षेत्र में लाया जा सकता है।

दूसरा महत्वपूर्ण कार्य भूमि के प्रभावशाली इस्तेमाल के कार्यक्रमों से सम्बंधित है ताकि जहां तक सम्भव हो सके खाने, चारे और ईंधन की जरूरतों को स्थानीय तौर पर पूरा किया जा सके।

तीसरा पहलू शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा, पीने के पानी, ग्रामीण सड़कों और सार्वजनिक वितरण प्रणाली से सम्बंधित बुनियादी न्यूनतम आवश्यकताओं के बारे में है। यहां भी अनुभव से पता चलता है कि जहां-जहां प्राथमिक स्कूलों का संचालन पंचायतों के हाथों में है वहां अध्यापकों की उपस्थिति में सुधार हुआ है जबकि कुछ मामलों में यह भी पाया गया है कि नियमित अध्यापकों ने अपनी नौकरी को दूसरे लोगों को कम वेतन पर नीलाम किया हुआ है। यही स्थिति स्वास्थ्य केन्द्रों की है। इसका कारण स्पष्ट है। स्थानीय लोग अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं और अपने परिवार के स्वास्थ्य की देखभाल चाहते हैं। इसलिए वे इनके प्रबंध में कोई कोताही नहीं बरतेंगे।

पंचायती राज संस्थाएं, जो कि एक सिक्के के दो पहलू हैं, तभी सार्थक हो सकती हैं जब उन्हें योजना बनाने की प्रक्रिया में भी शामिल किया जाए। इसलिए केन्द्र से लेकर गांवों तक अधिकारियों के बीच कार्यों और उत्तरदायित्वों के वितरण को सुव्यवस्थित करना होगा। यहां इस बात को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जिस स्तर का काम हो उसे उसी स्तर पर किया जाना चाहिए।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि आयोजना की प्रक्रिया की संकल्पना समग्र रूप से की जाती है तो पंचायतों, जिला प्रशासनों, राज्य सरकारों और केन्द्र में स्थित योजना आयोग के बीच क्या तालमेल हो सकता है। इस समय देश में आयोजना समेकित रूप से तैयार की जाती है जिसका साधारण सा कारण यह है कि देश की आयोजना का उद्देश्य गरीबी और बेरोजगारी को दूर करना है। लेकिन इन समस्याओं का निराकरण योजना से बाहर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्रामीण बेरोजगार कार्यक्रम जैसे विशेष गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की मार्फत किया जा रहा है। कोई भी व्यक्ति जिसे योजना के बारे में थोड़ी सी भी समझ है वह आसानी से जान सकता है कि चाहे कितनी भी अच्छी तरह से इन कार्यक्रमों में निवेश किया जाए, फिर भी इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें इन गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को अगले हजार वर्षों तक जारी रखना होगा। दूसरे, तकनीकी स्तर पर यह सर्वविदित है कि हमारी योजनाएं क्षेत्रवार होती हैं जैसे राज्य सरकार और केन्द्र दोनों में प्रत्येक मंत्रालय अपने-अपने विषय पर योजनाएं बनाता है और उनमें निवेश करता है।

समेकित योजना बनाने की प्रक्रिया दूसरी पंचवर्षीय योजना में तैयार की गई थी। उसके बाद कोई योजना उस स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकी है। दूसरी योजना में, हर योजना गांव स्तर पर तैयार की गई थी, तब उसे ब्लाक स्तर पर भेजा जाता था। इसी प्रकार योजनाएं जिला, राज्य और केन्द्र स्तर तक पहुंचती थी। दुःख की बात तो यह रही कि यह प्रक्रिया जन्म लेकर ही रह गई, इसे कार्यरूप नहीं दिया जा सका। कारण स्पष्ट है, यदि ग्राम, जिला, खण्ड स्तर पर योजनाएं बनाने के लिए स्थानीय विकल्प नहीं होंगे तो समेकित योजना बन ही नहीं सकती। पंचायती राज संस्थाओं के गठन के बाद ही हम देश के लिए एक समेकित योजना की परिकल्पना कर सकते हैं।

जो लोग पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से विकेन्द्रीकृत आयोजना की सफलता की बात करते हैं वे शायद यह भूल जाते हैं कि जब पंचायती राज संस्थाओं का गठन किया गया था तब उनका गठन तो हो गया था परन्तु उन्हें न तो कोई शक्तियां और अधिकार ही दिए गए और न ही उनके कामों का बंटवारा किया गया। एक हवाई जहाज को यदि अपने अगले पत्तन से कम दूरी की यात्रा कर पाने का ईंधन देकर उड़ा दिया जाए तो उसका रास्ते में ही गिर जाना स्वाभाविक है। यही हाल पंचायतों का हुआ। कुछ राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं को पैसा और काम सौंपा गया, जैसे पश्चिम बंगाल, गुजरात और कर्नाटक। इन्हीं राज्यों से हमें इन संस्थाओं की सफलता की कहानियां सुनने को मिलती हैं। जो इस बात का उदाहरण बन गई है कि ग्रामीण विकास न होने में इन संस्थाओं का दोष नहीं है, असफलता का कारण तो उनके पास पर्याप्त तकनीकी सुविधाओं, मानव शक्ति और धन की कमी रहा।

आयोजना के विकेन्द्रीकरण पर बल देने के साथ-साथ यह भी जरूरी होगा कि कम से कम जिला स्तर पर आर्थिक स्वतंत्रता और अन्य तकनीकी विशेषज्ञता उपलब्ध कराई जाए। निःसंदेह कुछ राज्यों ने जिला आयोजना एकक के नाम से स्थापना की है परन्तु वहां पर आयोजना के काम को गम्भीरता से नहीं लिया गया है। प्रायः वहां जो पद बनाए गए उन्हें लोगों

की पदोन्नति करके भर दिया गया जिससे कुछ अधिकारियों को व्यक्तिगत लाभ हुआ लेकिन वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त नहीं किया जा सका। यह जरूरी है कि इन यूनिटों में स्वयंसेवी संगठनों सहित शिक्षा, तकनीकी और समाज सेवा के क्षेत्र में कार्यरत संस्थाओं से उपलब्ध जानकारी का समावेश किया जाए।

एक और गम्भीर प्रश्न जो इस समय देश में चर्चा का विषय बना हुआ है कि जिला प्रशासन का पुनर्गठन किया जाए जो पिछले 100 वर्षों से कलेक्टर के अधीन हैं। दूसरी योजना के बाद से जिला स्तर पर विभिन्न विभागों/अधिकारियों के बीच समन्वय की कमी के कारण हमारी समस्त योजनाओं के लाभकारी और प्रभावशाली परिणाम नहीं निकल पाए हैं।

आज की स्थिति यह है कि कानून और व्यवस्था की दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है और हमारे विकास कार्य उतने संतोषजनक रूप से प्रगति नहीं कर पा रहे हैं जितनी कि उनसे आशाएं थी। ऐसी स्थिति में विकास कार्यों और कानून और व्यवस्था के उत्तरदायित्व एक ही व्यक्ति पर डालने का कोई औचित्य नहीं है। यदि स्थानीय विकास कार्यों को चलाने के काम को चुने हुए निकायों को सौंपा जाता है तो उनके पास मुख्य कार्यकारी स्तर का एक अधिकारी होना चाहिए जो उनके निर्देशों के अधीन कार्य करे। ऐसा अधिकारी वह नहीं हो सकता जो कानून और व्यवस्था की मुख्य जिम्मेदारी को पूरा कर रहा हो। अतः पहले कदम के रूप में इन दोनों कार्यों को अलग-अलग अधिकारियों को सौंपा जाना चाहिए जो विकास के अलग-अलग क्षेत्र के विशेषज्ञ हों। इससे उनकी विशेषज्ञता का लाभ भी उठाया जा सकता है और यह देश के समग्र विकास में भी हितकर होगा। जन-शक्ति और सामग्री दोनों प्रकार के संसाधनों को बढ़ाना ही हमारे विकास प्रयासों की सफलता की कुंजी होगी।

अनुवाद—शशिबाला
53, नीमड़ी कालोनी, दिल्ली

इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैंक लि०

अब

मात्र 63 माह में 100 रु० जमा धन 200.75 रु० हो जाता है !

जब कि अन्य व्यवसायिक बैंकों में 66 माह में

जी हाँ

भारतीय रिजर्व बैंक के निर्देशों के अर्न्तगत हमारे बैंक द्वारा अन्य व्यवसायिक बैंकों से

आधा प्रतिशत अधिक ब्याज दिया जाता है

और

आपके धन की पूरी सुरक्षा निक्षेप बीमा से रहती है

तुरन्त सेवा—ग्राहकों को अधिक सुविधा

हमारा लक्ष्य

हमारी वर्तमान ब्याज दर

बचत खाता	5½ प्रतिशत	जब कि अन्य बैंकों में 5%			
सावधि निक्षेप					
46 दिन से ऊपर एवं एक वर्ष से कम	9½ प्रतिशत	जबकि अन्य बैंकों में 9%	2 वर्ष या अधिक तीन वर्ष से कम	11½ प्रतिशत	जबकि अन्य बैंकों में 11%
1 वर्ष या अधिक दो वर्ष से कम	10½ प्रतिशत	जबकि अन्य बैंकों में 10%	3 वर्ष या अधिक	13½ प्रतिशत	जबकि अन्य बैंकों में 13%

हमारी निकट की शाखाओं से कृपया सम्पर्क करें ।

शिव किशोर सिंह
सचिव महाप्रबन्धक

शिव सागर सिंह
सभापति

गरीबी उन्मूलन : कुछ मुद्दे

भूपेन्द्र बेकल

गरीबी उन्मूलन की अनेकानेक योजनाओं पर हजारों करोड़ रुपये व्यय होने के बावजूद हमारे गांव आखिर गरीबी के अभिशाप से मुक्त क्यों नहीं हो पा रहे हैं? प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने इसके कारण तलाशने का प्रयास किया है। एक राष्ट्रीयकृत बैंक से सम्बंधित लेखक का मानना है कि योजनाओं के अपेक्षित परिणाम न निकलने का मूल कारण है योजना प्रक्रिया का अत्यधिक केन्द्रीकरण, जिसके फलस्वरूप आंकड़ों की भरमार में गरीबी उन्मूलन का मूल उद्देश्य विस्मृत होकर रह गया है। अनेकों सर्वेक्षणों के निष्कर्षों के आधार पर लेखक ने दावा किया है कि योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए जिम्मेवार अधिकारियों को ग्रामीण जनता के प्रति उत्तरदायी बनाए बिना अपेक्षित परिणाम संभव नहीं। इसके लिए लेखक ने ग्रामीण जनता को योजना प्रक्रिया के हर चरण से सम्बद्ध करने का सुझाव दिया है ताकि स्वदेशी से स्वराज्य तथा स्वराज्य से स्वावलम्बन का स्वप्न पूरा हो सके।

हमारा देश स्वतंत्रता के 45वें वर्ष में कदम रख चुका है। नियोजित विकास की दिशा में सात पंचवर्षीय योजनाओं को सम्पन्न करने के बाद आज सम्बंधित अधिकारी आठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप को निखारने में लगे हैं। इन योजनाओं के परिणामस्वरूप देश ने निस्संदेह उन्नति की है। कृषि के क्षेत्र में 'हरित क्रांति' के परिणामस्वरूप देश खाद्यान्न के मामले में आत्म-निर्भरता की ओर बढ़ा है। औद्योगिक क्षेत्र में भी देश ने उल्लेखनीय उन्नति की है। स्वतंत्रता से पूर्व जहां छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए भी हम विदेशों पर आश्रित थे, वहीं आज देश की अधिकतर आवश्यकताओं की पूर्ति हमारे अपने कारखाने करते हैं। अंतरिक्ष एवं परमाणु विज्ञान के क्षेत्रों में भी देश ने सराहनीय उपलब्धियां हासिल की हैं। इन सबके बावजूद भूख-बेरोजगारी एवं गरीबी आज भी चुनौती के रूप में हमारे सामने विद्यमान है। इस सत्य को झुठलाना संभव नहीं कि आज भी करोड़ों भारतीय गरीबी की रेखा के नीचे जीने के लिए विवश हैं। हजारों गांवों में आज भी पीने के पानी जैसी मौलिक आवश्यकता की वस्तु भी उपलब्ध नहीं। अनेकों गांवों में आज भी ग्रामीण जनता को उसी स्रोत से पीने के लिए पानी लेना पड़ता है, जहां से पालतू जानवर भी पानी पीते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार आठवीं पंचवर्षीय योजना में प्रवेश करते समय भी देश में कम से कम 10,000 ऐसे गांव हैं, जहां पीने के पानी का एक भी स्रोत नहीं। ये आंकड़े विकास की सरकारी योजनाओं पर सटीक टिप्पणी के समान है।

गरीबी की चुनौती

यहां यह उल्लेखनीय है कि हमारी सभी योजनाओं का मुख्य उद्देश्य देश के समन्वित विकास के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक समानता लाना रहा है। गरीबी एवं पिछड़ेपन को असमानता का मूल कारण स्वीकार करते हुए, नियोजित विकास की प्रक्रिया में, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी गई। सरकार द्वारा समय-समय पर इसके लिए कई कार्यक्रम भी बनाए गए जिनमें भूमि सुधार, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, जवाहर रोजगार योजना, पंचायती राज, ट्राइसेम तथा समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम आदि प्रमुख हैं।

देश की तीन चौथाई जनसंख्या देश के 5.70 लाख गांवों में बसती है और इसका एक बहुत बड़ा भाग भूमिहीन मजदूरों एवं छोटे किसानों का है जिन्हें देश में गरीबी का सबसे बड़ा भण्डार माना जा सकता है। किसी हद तक गांवों में बसने वाला यह वर्ग ही शहरों में बढ़ रही झोपड़पट्टियों का स्रोत भी है। अतः ग्रामीण विकास का प्रभाव मात्र गांवों तक सीमित न रह कर शहरी क्षेत्रों पर भी पड़ना स्वाभाविक है। ग्रामीण विकास का हमारी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से चोली-दामन का साथ है। इस आधार पर यह कहना गलत न होगा कि गरीबी की चुनौती का प्रभावशाली सामना ग्रामीण विकास के बिना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। शायद इस सत्य की स्वीकृति का ही एक परिणाम है समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम गरीबी उन्मूलन की दिशा में सरकार का अब तक का सबसे महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है। सन् 1976-77 में इसे देश के विभिन्न 20 जिलों में आरम्भ

किया गया था। सन् 1978-79 में यह कार्यक्रम देश के 2300 विकास खण्डों में लागू कर दिया गया। 2 अक्तूबर 1980 से इस कार्यक्रम को विस्तार देकर इसे देश के सभी 5011 विकास खण्डों तक पहुंचा दिया गया। इस बहुआयामी तथा महत्वाकांक्षी कार्यक्रम का उद्देश्य है अभिचिन्हित परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठने के लिए आवश्यक सहायता उपलब्ध कराना। इसके लिए गरीबी की रेखा को 6400 रुपये प्रतिवर्ष प्रति परिवार माना गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत उन परिवारों को, जिनकी वार्षिक आय 6400 रुपये से कम है, चिन्हित कर ऋण एवं अनुदान के माध्यम आय अर्जन वाली परिसम्पत्तियां उपलब्ध करवाई जाती हैं ताकि वे अपनी पारिवारिक आय बढ़ा कर गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सकें।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत, छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान डेढ़ करोड़ परिवारों को आवश्यक सहायता उपलब्ध करवाने का लक्ष्य था। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, सम्बन्धित वर्षों में एक करोड़ पैंसठ लाख से अधिक परिवारों को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता उपलब्ध करवाई गई। सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान दो करोड़ परिवारों को सहायता प्रदान करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। आंकड़ों के अनुसार यह लक्ष्य भी प्राप्त हुआ। गत लगभग 10 वर्षों में इस कार्यक्रम पर सरकार द्वारा लगभग 25,000 करोड़ रुपये खर्च किए गए। इनमें से लगभग 15,000 रुपये केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा उपलब्ध कराए गए तथा शेष 10,000 करोड़ रुपये में बैंकों का योगदान रहा।

मुख्य प्रश्न

आंकड़ों की दृष्टि से यह कार्यक्रम भले कितना भी सफल माना जाए, लेकिन इसकी सफलता-असफलता का मूल्यांकन वास्तविकता के धरातल पर करना भी आवश्यक है। मूल प्रश्न यह नहीं कि गरीबी उन्मूलन के लिए कितना धन खर्च हुआ? मूल प्रश्न यह है कि उस खर्च से कितने गरीब, गरीबी एवं अभाव की जिन्दगी से ऊपर उठ पाए? प्रश्न यह नहीं कि सरकारी आंकड़ों के अनुसार कितने गरीब परिवारों को सहायता उपलब्ध हुई। प्रश्न यह है कि कितने गरीब परिवार उस सहायता से लाभान्वित हुए और सबसे मुख्य प्रश्न यह है कि वह सहायता क्या वास्तव में वहां तक पहुंची जहां उसका पहुंचना अपेक्षित था या आंकड़े पूरे करने की फिराक में उसे यहां-वहां-कहीं भी बांट दिया गया। सरकारी दावों के अनुसार सहायता प्राप्त परिवारों में से लगभग 80% परिवारों की आय में वृद्धि हुई, लेकिन वे सभी गरीबी की रेखा को लांघने में सफल नहीं हो पाए। केन्द्रीय सरकार के ग्रामीण विकास विभाग की सन् 1990-91 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार 42% सहायता प्राप्त परिवारों की वार्षिक आय में 2000 रुपये से अधिक की वृद्धि हुई जबकि 18% परिवारों की वार्षिक आय 1001 रुपये से लेकर 2000 रुपये तक बढ़ी। 9% मामलों में वृद्धि 501 रुपये से अधिक लेकिन 1000 रुपये से कम आंकी गई। इस रिपोर्ट के अनुसार मात्र 28% सहायता प्राप्त परिवार ही 6400 रुपये प्रतिवर्ष की निर्धारित गरीबी की रेखा को लांघने में सफल हो पाए हैं।

हाल ही में, लोकसभा में बजट पर बहस के दौरान वित्त मंत्री डा. मनमोहन सिंह ने घोषणा की कि योजना राशि का 50% ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए उपलब्ध कराया जाएगा। इस घोषणा के साथ सम्बन्धित कार्य नीति की कोई घोषणा नहीं की गई। इतनी घोषणाओं के बावजूद यदि ग्रामीण विकास की गति उत्साहवर्द्धक नहीं तो आवश्यक है कि इससे सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाए ताकि गरीबी उन्मूलन मात्र नारा न रह कर निष्ठा का प्रश्न बन जाए।

आंकड़े ही आंकड़े

सरकार की ओर से गरीबी उन्मूलन पर समय-समय पर दिए जाने वाले बल के फलस्वरूप अब समन्वित ग्रामीण विकास तथा ग्रामीण जनता के आर्थिक एवं सामाजिक विकास से सम्बन्धित अन्य कार्यक्रमों के लिए लक्ष्य निर्धारित करना हमारी योजना प्रक्रिया का अविभाज्य अंग बन गया है। दुर्भाग्यवश सरकारी मशीनरी का सारा जोर इन लक्ष्यों की प्राप्ति के आंकड़ों को इकट्ठा करने और फिर उन्हें प्रचारित करने पर ही लगता है। लक्ष्य प्राप्ति के परिणामों की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। लक्ष्य प्राप्ति के आंकड़े गरीबी उन्मूलन के ध्येय पर हावी होकर रह गए हैं। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत गरीब परिवारों को आवश्यक सहायता प्रदान करने के विचार से जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों (D.R.D.As.) का गठन किया गया था। इसके अधिकारियों से अपेक्षा की जाती है कि वे अभिचिन्हित परिवारों को समय-समय पर सलाह एवं सहायता प्रदान करेंगे ताकि वे सदा के लिए गरीबी के अभिशाप से मुक्त हो सकें। इसे एक विडम्बना ही कहा जाएगा कि इस कार्यक्रम से सम्बन्धित संस्थाओं एवं अधिकारियों ने निर्धारित संख्या के परिवारों को आवश्यक ऋण एवं अनुदान उपलब्ध कराने को ही अपना लक्ष्य मान लिया और गरीबी उन्मूलन का वास्तविक ध्येय गौण हो गया। इस योजना के अन्तर्गत चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों में निश्चित संख्या के परिवारों को सहायता उपलब्ध

करवाने का तो लक्ष्य निर्धारित रहता है, लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में यह सुनिश्चित करना कतई आवश्यक नहीं माना जाता कि क्या सहायता प्राप्त परिवार गरीबी के चंगुल से निकल भी पाए या नहीं। हाल ही में पंजाब के जालंधर, रोपड़ एवं फिरोजपुर जिलों में किए गए एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि अनुदान एवं ऋण रूप में सहायता उपलब्ध करवाने के बाद सम्बन्धित अधिकारियों ने एक वर्ष में मुश्किल से एक या दो बार सहायता प्राप्त परिवारों से सम्पर्क स्थापित किया। केन्द्रीय सरकार के ग्रामीण विकास विभाग द्वारा हाल ही में प्रकाशित वर्ष 1990-91 की रिपोर्ट के अनुसार लगभग 70% ऐसे मामलों में सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा आवश्यक सहयोग नहीं किया गया जिनमें आरम्भिक सहायता के बाद इन परिवारों को अतिरिक्त सहायता एवं सहयोग की आवश्यकता थी जिसके परिणामस्वरूप आरम्भिक सहायता भी अर्थहीन होकर रह गई।

उदासीनता के कारण

अधिकारियों के इस उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण का जहां एक मूल कारण मात्र लक्ष्य प्राप्ति के आंकड़ों पर आवश्यकता से अधिक बल है, वहीं इसका दूसरा मूल कारण है उनका ग्रामीण जनता के प्रति किसी भी प्रकार उत्तरदायी न होना। इसके लिए हमारा वर्तमान प्रशासनिक ढांचा ही दोषी नहीं, त्रुटि ऐसे कार्यक्रमों से सम्बन्धित योजना की सम्पूर्ण प्रक्रिया में है। हमारी नियोजित विकास की सभी योजनाएं ऊपर से आरम्भ होती हैं, उनका धरातल की सच्चाइयों से करीबी रिश्ता नहीं होता। पंचवर्षीय योजनाओं सहित सभी योजनाओं की मौलिक रूपरेखा केन्द्र में बनती है। केन्द्रीय अधिकारी अपनी सीमित-असीमित जानकारी, प्राथमिकताओं, उपलब्ध साधनों एवं विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित राजनीतिक समीकरण के प्रभावाधीन योजना के विभिन्न मदों का निर्धारण करते हैं। केन्द्र से उभरने वाली ये योजनाएं राज्यों की राजधानी में राज्य की आवश्यकताओं एवं स्थानीय राजनीतिक समीकरण की विवशताओं के अनुरूप ढल कर जिला स्तर के अधिकारियों के पास क्रियान्वयन के लिए पहुंचती है। विकास को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए आवश्यक तो यह है कि गांवों की आवश्यकता का निर्धारण गांवों, खण्डों एवं जिलों के स्तर पर किया जाए और फिर उन आवश्यकताओं के अनुरूप, उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखते हुए, राज्य स्तर पर योजना का प्रारूप बने जिसके आधार पर पूर्ण देश के लिए केन्द्रीय योजना बने और वह लोगों की अपेक्षित धारणाओं के अनुरूप हो। इस प्रक्रिया से उपलब्ध निर्धारण एक सफल योजना का आधार बन सकते हैं। लेकिन आज तक किसी भी पंचवर्षीय योजना का प्रारूप इस प्रकार नहीं बना। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के समय इस दिशा में कुछ कार्य अवश्य हुआ, लेकिन गत चार दशकों का अनुभव यही है कि ग्रामों, कस्बों एवं जिलों की आवश्यकताओं का निर्धारण दूर राज्य की राजधानी में बैठे अधिकारी करते हैं और गत लगभग दो दशकों से तो यह निर्धारण राज्य की राजधानी के बजाए देश की राजधानी से होने लगा है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप, योजना के मदों का वास्तविक आवश्यकताओं से सम्बंध टूटा है जिसके परिणामस्वरूप योजना के साथ जुड़ी उद्देश्यों की घोषणाएं मात्र नारे बन कर रह जाती हैं। योजनाओं और कार्यक्रमों की सफलता के लिए उनका जमीन से रिश्ता जुड़ना आवश्यक है। ऊपर से थोपी गई योजनाओं में स्थानीय आवश्यकताओं की गंध की कमी के कारण ही गरीबी उन्मूलन से सम्बन्धित अधिकतर कार्यक्रम अपेक्षित लाभ नहीं दे पाए।

आई.एस.एस.टी. द्वारा सन् 1982 में एक खण्ड में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार उस क्षेत्र की विकास सम्बंधी आवश्यकताओं का समस्त निर्धारण, जिला अधिकारियों द्वारा पेश की गई मांगों को पूर्णतया अनदेखा करते हुए, राज्य की राजधानी में किया गया। इस सर्वेक्षण के अनुसार मात्र 12% राशि ही जिला अधिकारियों के निर्धारण के अनुसार पारित हुई, शेष 88% योजना राशि राजधानी के इशारों पर तय की गई। इसके लिए योजनाओं के प्रारूप राजधानी से प्राप्त हुए। जिला अधिकारियों का कार्य उन योजनाओं को कार्यरूप देना मात्र था, भले ही वे योजनाएं उनके क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरी करती हैं या नहीं।

योजना प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण अनिवार्य

योजना की इस प्रक्रिया के कारण कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने वाले जिला स्तरीय अधिकारियों का कार्यक्रमों से लाभान्वित होने वाले लोगों से कोई सीधा व्यवहारिक सम्बंध नहीं जुड़ पाया और अधिकारियों का ध्येय आंकड़े पूरे करना मात्र रह गया। यदि योजना की प्रक्रिया गांव के स्तर से आरम्भ हो और इस प्रक्रिया से ग्रामीण जनता सम्बन्धित हो तो उसके क्रियान्वयन के परिणामों के प्रति भी ग्रामीण जनता जागरूक होगी। इस स्थिति में सम्बन्धित अधिकारी अपेक्षित उद्देश्य प्राप्ति में मिलने वाली सफलताओं-असफलताओं के लिए ग्रामीण जनता के प्रति उत्तरदायी भी हो जाएंगे। अतः इन कार्यक्रमों की सफलता के लिए आवश्यक है कि योजना का ढांचा स्थानीय जनता की आवश्यकताओं के अनुरूप हो, स्थानीय जनता योजना की प्रक्रिया में बराबर की हिस्सेदार हो तथा योजना को कार्यरूप देने वाले अधिकारी स्थानीय ग्रामीण जनता के प्रति उत्तरदायी हों। संक्षेप में योजना प्रक्रिया का

केन्द्रीयकरण के बजाए विकेन्द्रीकरण हो, तभी अपेक्षित परिणाम सम्भव हैं।

स्थानीय आवश्कताओं से पूर्णतया असम्बन्धित होने के कारण गरीबी उन्मूलन की अनेकों योजनाएं, भारी खर्च के बावजूद गरीबी हटाने में असफल रही हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार, योजना के अनुरूप, राजस्थान के एक गांव में पिछड़ी जाति के अनेकों छोटे किसानों को उम्दा किस्म की भैंसे उपलब्ध करवाई गईं। आंकड़ों की दृष्टि से यह एक सफल कार्यक्रम था, लेकिन वे गरीब किसान अधिक दिनों तक उन भैंसों को अपने पास नहीं रख पाए। उन भैंसों के लिए जिस प्रकार के सूखे एवं हरे चारे की आवश्यकता थी, वह उनके पास उपलब्ध नहीं था। फलस्वरूप, उनमें से अधिकतर को वे भैंसें उन सम्पन्न किसानों को बेच देनी पड़ीं जिनके पास चारे की व्यवस्था थी। इसी प्रकार कुछ किसानों को नलकूपों के लिए ऋण एंव अनुदान किया गया, लेकिन उनके लिए आवश्यक बिजली की व्यवस्था न हो पाने के कारण वह सहायता फलदाई सिद्ध न हो पाई। मंगलोर जिले के एक स्थान पर गरीब मछेरों को समुद्र तट पर संसाधनों तथा ऐसे स्थान की आवश्यकता थी जहां वे बरसातों में भी बैठ कर मछलियां बेच पाएं। जिला अधिकारियों द्वारा इसकी अनुशंसा भी की गई, लेकिन गरीब मछेरों की गरीबी मिटाने के लिए राज्य सरकार ने वहां एक कोल्ड स्टोरेज बनाने की व्यवस्था कर दी। कोल्ड स्टोरेज का लाभ निस्संदेह हुआ, लेकिन गरीब मछेरों को नहीं बल्कि उन बड़े व्यापारियों को जो बड़े स्तर पर मछली का व्यापार करते थे।

अनावश्यक व्यय भार

यदि गत 10 वर्ष के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की समीक्षा की जाए तो इस प्रकार के अनेकों उदाहरण सामने आएंगे। केन्द्रीय कृषि मंत्रालय के ग्रामीण विकास विभाग द्वारा सन् 1990-91 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार 78% मामलों में सहायता प्राप्त परिवारों को उस गतिविधि के लिए सहायता नहीं मिली जिसके लिए ट्राइसेम कार्यक्रम के अंतर्गत उन्हें प्रशिक्षित किया गया था। 26% मामलों में उपलब्ध कराई गई परिसम्पत्तियां अतिरिक्त आय प्रदान करने में अक्षम पाई गईं।

उपरोक्त सभी योजनाओं पर खर्च हुआ धन जो समन्वित ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन के विभिन्न लक्ष्य प्राप्ति सम्बंधी आंकड़ों का महत्वपूर्ण हिस्सा भी बना, लेकिन इन लक्ष्य प्राप्तियों से गरीबों को कितना लाभ हुआ होगा तथा 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम को कितनी सफलता मिली होगी, उस पर कोई अन्य टिप्पणी करना आवश्यक नहीं।

इस प्रकार के अनावश्यक व्यय को बचाना है तो योजनाअ को ग्रामीण जनता की स्थानीय आवश्यकताओं से सम्बंधित करना ही होगा अन्यथा योजना व्यय बढ़ता रहेगा, आंकड़े इकट्ठे होते रहेंगे और गरीब अपनी गरीबी से पिसता रहेगा।

ग्रामीण जनता के इन कार्यक्रमों में योजना बनाने की प्रक्रिय से ही सम्बंधित होने से जहां अनावश्यक व्यय में कटौती होगी तथा जिला स्तरीय अधिकारी कार्यक्रम के परिणामों के लिए स्थानीय जनता के प्रति उत्तरदायी होंगे, वहीं इससे दो अन्य महत्वपूर्ण लाभ भी होंगे। पहला लाभ होगा भ्रष्टाचार एव भाई-भतीजावाद पर अंकुश तथा दूसरा होगा ग्रामीण जनत की आर्थिक योजनाओं के अतिरिक्त अन्य सामाजिक विकास की योजनाओं में भी रुचि एवं भागीदारी।

जो धन गरीबी की रेखा से नीचे गरीब परिवारों को उपलब्ध करवाया जाना था, उसका एक बड़ा भाग साधन सम्पन्न लोगों की आय बढ़ोत्तरी का साधन बन कर रह गया। स्वयं ग्रामीण विकास विभाग की रिपोर्ट के अनुसार कम से कम 16 प्रतिशत सहायता ऐसे आयोग्य परिवारों को मिली।

राष्ट्रीय समस्या

इसे एक राष्ट्रीय समस्या ही कहा जाएगा कि गरीबी उन्मूलन जैसा राष्ट्रीय महत्व का कार्यक्रम भी प्रशासनिक लालफीताशाही तथा भ्रष्टाचार एवं भाई-भतीजावाद की चपेट से नहीं बच पाया। अभिचिन्हित परिवारों को ऋण एवं अनुदान के रूप में सहायता उपलब्ध करवाने के लिए रिश्वत लेने मात्र के ही मामले प्रकाश में नहीं आए बल्कि ऐसे भी बहुत मामले प्रकाश में आए हैं जहां उन परिवारों को सहायता उपलब्ध करवाई गई जो समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत सहायता प्राप्ति के योग्य ही नहीं थे। जो धन गरीबी की रेखा से नीचे गरीब परिवारों को उपलब्ध करवाया जाना था, उसका एक बड़ा भाग साधन सम्पन्न लोगों की आय बढ़ोत्तरी का साधन बन कर रह गया। स्वयं ग्रामीण विकास विभाग की रिपोर्ट के अनुसार कम से कम 16% सहायता ऐसे अयोग्य परिवारों को मिली। गैर सरकारी सर्वेक्षण ऐसे अयोग्य परिवारों की संख्या 16% से कहीं अधिक आंकते हैं। इस गलत अभिचिन्हन के अतिरिक्त दूसरी समस्या है सहायता उपलब्ध करवाने के लिए रिश्वत की। हाल ही में एक राज्य में किए ग एक सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 28% परिवारों को सहायता प्राप्त करने के लिए सम्बंधित बैंक एवं अन्य अधिकारियों को रिश्वत देनी पड़ी। इसी सर्वेक्षण के अनुसार समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत दुधारू जानवर उपलब्ध करवाने के लिए लगभग कई मामलों में आवश्यक स्वास्थ्य प्रमाण प

लेने के लिए रिश्वत देनी पड़ी। गलत अभिचिन्हन तथा भ्रष्टाचार के दानवी रूप पर एक सटीक टिप्पणी करते हुए सन् 1989 में तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने एक जन सभा में स्वीकार किया कि केन्द्र द्वारा निर्धारित प्रति रुपये में से मात्र 15 पैसे ही अपेक्षित परिवारों तक पहुंच पाते हैं। इस समस्या से छुटकारे के लिए स्वर्गीय राजीव गांधी ने ग्रामीण पंचायतों की जोरदार वकालत की थी। यदि योजना के प्रत्येक चरण से, पंचायतों के माध्यम से ग्रामीण जनता जुड़ जाए तो गलत अभिचिन्हन तथा भ्रष्टाचार से निबटना सम्भव हो सकता है। इसके लिए कार्यक्रम का संचालन कर रहे जिला स्तरीय अधिकारियों को पंचायतों एवं ग्रामीण जनता के प्रति उत्तरदायी बनाना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। इस दिशा में सबसे बड़ी रुकावट जिला स्तरीय अधिकारियों के दृष्टिकोण के फलस्वरूप है। सन् 1977 में पंचायती संस्थाओं के मूल्यांकन सम्बंधी अशोक मेहता कमेटी का यह एक निश्चित निष्कर्ष था कि जिला स्तरीय अधिकारी केवल राज्य स्तर के अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होना चाहते हैं और वे जिला या ग्राम स्तर की किसी भी मनोनीत या निर्वाचित संस्था के प्रति उत्तरदायी होने को तैयार नहीं। इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाए बिना गरीबी उन्मूलन का व्यवहारिक रूप धारण करना असम्भव नहीं। इन अधिकारियों को गांवों की निर्वाचित संस्था 'पंचायत' के माध्यम से ग्राम सभा के प्रति उत्तरदायी बनाने के बाद ही प्रशासनिक लालफीताशाही, भ्रष्टाचार एवं भाई-भतीजावाद से छुटकारा मिलना सम्भव है, अन्यथा हर निर्धारित कार्यक्रम अपनी सफलता के आयाम तक नहीं पहुंच सकता। इसके लिए पंचायतों को भी प्रभावी बनाना होगा। इस दिशा में कर्नाटक, केरल तथा पश्चिमी बंगाल में उठाए गए कदमों के आशातीत फल सामने आए हैं।

जब तक स्वाधीनता के फलस्वरूप विकास का प्रकाश देश के गरीबतर लोगों तक नहीं पहुंचता, जब तक देश का हर नागरिक गरीबी की रेखा को लांघने में सफल नहीं हो जाता, तब तक स्वावलम्बन की बात भी बेमानी है। अतः ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को और अधिक प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता आज भी बनी हुई है ताकि समन्वित विकास के माध्यम से हम सामाजिक सामंजस्य को प्राप्त हो पाएं।

ग्रामीण जनता की भागीदारी आवश्यक

आज की स्थिति में गरीब परिवार उन्हीं कार्यक्रमों से सम्बंधित होना पसन्द करते हैं जिनसे उन्हें शीघ्र आर्थिक लाभ प्राप्त होने वाला हो। शिक्षा प्रसार एवं स्वास्थ्य केन्द्रों आदि से सम्बंधित कार्यक्रमों में उनकी कम रुचि देखी गई है। इसका मुख्य कारण है उनका इन योजनाओं के अपेक्षित लाभों से अनभिज्ञ होना। आज अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि हमारे विकास के मार्ग में एक बहुत बड़ी रुकावट सिद्ध हो रही है। यह भी एक निर्विवाद सत्य है कि अनियंत्रित जनसंख्या की यह समस्या गैर-शिक्षित गरीबों में शिक्षित परिवारों के मुकाबले अधिक है। केरल के उदाहरण ने सिद्ध कर दिया है कि शिक्षा एवं स्वास्थ्य केन्द्रों के प्रसार के फलस्वरूप जनसंख्या वृद्धि में आशातीत कमी लाई जा सकती है।

स्वराज्य से स्वावलम्बन

स्पष्ट है कि समस्त दावों के बावजूद गरीबी उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास को अभी तक स्तर से ही छूने के प्रयास किए गए हैं। इससे सम्बंधित मुद्दों को उनके धरातल पर उतर कर चुनौती देने की आवश्यकता आज भी बनी हुई है। महात्मा गांधी ने स्वदेशी से स्वराज्य तथा स्वराज्य से स्वावलम्बन का जो नारा दिया था, उसको अभी साकार रूप धारण करना है। स्वाधीनता के 44 वर्षों के बाद भी स्वावलम्बन की दिशा में हमारे कदम भटके हुए से लग रहे हैं। जब तक स्वाधीनता के फलस्वरूप विकास का प्रकाश देश के गरीबतर लोगों तक नहीं पहुंचता, जब तक देश का हर नागरिक गरीबी की रेखा को लांघने में सफल नहीं हो जाता, तब तक स्वावलम्बन की बात भी बेमानी है। अतः ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को और अधिक प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता आज भी बनी हुई है ताकि समन्वित विकास के माध्यम से हम सामाजिक सामंजस्य को प्राप्त हो पाएं। प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव द्वारा दिनांक 22 जून 1991 को कहे गए निम्न शब्दों से इस दिशा में कुछ आशा अवश्य बंधती है :

"हम सामाजिक न्याय चाहते हैं और सामाजिक न्याय के साथ-साथ सामाजिक सामंजस्य भी चाहते हैं। ऐसा समाज चाहते हैं जो संवेदनशील हो, ऐसा समाज चाहते हैं जिसमें कोई विघटन की प्रवृत्ति न हो। एक-दूसरे से मिलकर रहने की प्रवृत्ति जहां पाई जाए और एक-दूसरे के दुःख में, सुख में भागीदार होने की प्रवृत्ति उसमें हो। गांधी जी ने जो कहा था कि हरेक आंख से आंसू की हरेक बूंद के पोंछने का जो काम है वो असली काम है सरकार का होना चाहिए। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि गांधी जी का दिया हुआ यही महामंत्र हमारा ध्येय रहेगा और इसी पर हम काम करने का पूरा-पूरा प्रयास करेंगे।"

मैनेजर,
कार्मिक प्रभाग
पंजाब नेशनल बैंक
भीकाजी कामा प्लेस काम्प्लेक्स, नई दिल्ली

हरियाणा के विकास में गति

जनता से स्पष्ट जनादेश पाने के बाद वर्तमान सरकार द्वारा सत्ता सम्भालते ही हरियाणा में हर्ष एवं आशा के नवयुग का सूत्रपात हुआ है। विकास के हर क्षेत्र में असाधारण परिवर्तन आ रहा है।

हमारी प्राथमिकताओं की सजीव तस्वीर :

- राज्य में कानून का शासन पुन: स्थापित करना तथा विकास के क्षेत्र में अग्रणी राज्य के रूप में इसकी प्रतिष्ठा पुन: बहाल करना।
- सरकारी तथा गैर-सरकारी स्कूलों और कालेजों में स्नातक स्तर तक लड़कियों के लिए मुफ्त शिक्षा।
- अब वृद्धावस्था पेंशन 65 वर्ष की अपेक्षा 60 वर्ष के वृद्ध नागरिकों को दी जाएगी जिसका अर्थ है कल्याणकारी कार्यों पर 25 करोड़ रुपये का अतिरिक्त व्यय। 100 रुपये मासिक की दर से पेंशन हमारे वयोवृद्ध नागरिकों को प्रतिमाह 7 तारीख तक दे दी जाएगी।
- खाद्यान्नों का लक्ष्य 1990-91 में 95 लाख 71 हज़ार टन से बढ़ा कर 1991-92 में 101 लाख 20 हज़ार टन रखा गया है।
- सिंचाई का पानी सभी रजबाहों के अन्तिम सिरे (टेल) तक उपलब्ध कराया जाएगा। उपलब्ध पानी का सर्वोत्तम उपयोग सुनिश्चित करने के लिए नहरों तथा जलमार्गों की मिट्टी निकाली जा रही है और उनकी मरम्मत की जा रही है।
- बिजली सप्लाई के मामले में कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता।
- ट्रांसफार्मरों की मरम्मत करने की क्षमता प्रतिमास 700 से बढ़ाकर 1500 कर दी गई है। ट्रांसफार्मरों के प्रतिस्थापन में ग्रामीण क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जा रही है।
- राज्य "ग्रिड" के लिए एक दिन में 350 लाख यूनिट बिजली सप्लाई की गई, जो अब तक का रिकार्ड है। इसमें से 225 लाख यूनिट कृषि को सप्लाई की गई।
- राज्य में औद्योगिक तथा कृषि के तीव्र विकास के लिए बिजली की सप्लाई 25 प्रतिशत बढ़ाई जा रही है। यमुनानगर ताप बिजली संयंत्र पर अतिशीघ्र कार्य शुरू करवाने हेतु प्रयास किए जा रहे हैं।
- विवादास्पद ज़िनीलैण्ड परियोजना किसानों के हित में रद्द कर दी गई है।
- पंचायती तथा सरकारी भूमि से अवैध कब्जे हटाने के लिए विशेष अभियान शुरू किया गया है।
- चालू वित्त वर्ष के अन्दर राज्य के सभी गांवों को पेयजल की सुविधा।
- सभी क्षतिग्रस्त सड़कों की मरम्मत 6 महीने के अन्दर प्राथमिकता के आधार पर की जाएगी।
- सतलुज–यमुना योजक नहर को पूरा करवाने के प्रयास किए जा रहे हैं।
- अनुसूचित जातियों, पिछड़े तथा कमज़ोर वर्गों के लोगों के अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की गई है।
- प्रत्येक परिवार के कम से कम एक शिक्षित सदस्य को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए रोज़गार के अवसर पैदा किए जा रहे हैं।
- सहकारी ऋणों पर अन्तिम सात वर्षों का ब्याज माफ किया जाएगा तथा मूलधन की राशि 6 आसान किश्तों में वसूल की जाएगी।

सरकार सामाजिक–आर्थिक कायाकल्प करने के लिए वचनबद्ध है। लोगों के चेहरों पर नई रौनक है।

मैं हरियाणा के शांतिप्रिय एवं कर्मठ लोगों से सहयोग देने की अपील करता हूँ ताकि हरियाणा में विकास के नवयुग का सूत्रपात हो सके।

भजन लाल
मुख्य मन्त्री हरियाणा

लोक सम्पर्क, हरियाणा

ग्रामीण विकास और कार्यात्मक साक्षरता

डा. हीरालाल बाछोतिया

अपने इस लेख में लेखक ने ग्रामीण विकास और साक्षरता में संबंध स्थापित करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि स्वाधीन भारत में गरीबी उन्मूलन की इतनी योजनाओं के बावजूद भी लोग गरीबी में जकड़े हुए हैं क्योंकि इसका एक कारण है कि वे निरक्षर हैं। यदि लोग साक्षर हो जाएं तो ही उन्हें अपने कल्याण के लिए बनी सरकारी योजनाओं की जानकारी होगी और वे इनके क्रियान्वित न होने पर अपना असंतोष प्रकट कर सकेंगे। हमारे देश में अभी लोगों में निरक्षरता है और उन्हें स्वयं के लिए बनी कल्याणकारी योजनाओं का ज्ञान नहीं होता। परिणामस्वरूप उनकी स्थिति पूर्ववत बनी हुई है। अतः आवश्यक है कि लोगों को कार्यात्मक साक्षर बनाया जाए जिससे वे जागरुक बनें और इन कल्याणकारी योजनाओं का लाभ उठा सकें। लेखक के अनुसार ग्रामीण विकास के लिए अधिकारियों/कर्मचारियों की जवाबदेही निश्चित होनी चाहिए। इससे गरीबी उन्मूलन व ग्रामीण विकास की संभावनाएं बढ़ेंगी। लेख में कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया गया है कि कार्यात्मक साक्षरता द्वारा कृषकों ने अपने उत्पादन में सुधार किया है और उनमें सरकारी कार्यक्रमों के प्रति जागरुकता आई है। वे इन योजनाओं से लाभान्वित होने लगे हैं। अतः ग्रामीण विकास के लिए साक्षरता नितान्त आवश्यक है।

स्वाधीन भारत में एक योजना के बाद दूसरी योजना के क्रियान्वयन के बावजूद लोगों को गरीबी से मुक्ति मिलना तो दूर गरीबी रेखा से नीचे आने वाले लोगों की संख्या में शामिल होना पड़ा है। उनकी गरीबी के कारणों में निरक्षरता भी एक प्रमुख कारण है। निरक्षर ग्रामीण लोग अपने लिए आरंभ की गई कल्याणकारी योजनाओं का फायदा नहीं उठा पाए। इसका परिणाम कुल मिलाकर उनकी स्थिति यथावत् बने रहने के रूप में दिखाई देती है। जब तक वे जागरुक तथा संगठित होकर खुद आगे नहीं बढ़ेंगे, गरीबी से मुक्ति मिलना कठिन है।

गरीबी से मुक्ति पाने के संदर्भ में निरक्षरता और इसके उन्मूलन के लिए कार्यात्मक साक्षरता को देखना कई दृष्टियों से उपयोगी ही नहीं अवश्यंभावी है। जहां-जहां निरक्षरता दिखाई देती है उसके साथ गरीबी भी दिखाई देती है। ये निरक्षर लोग ही हैं जो भुखमरी और उपेक्षा का जीवन बिताने के लिए विवश हैं। ये निरक्षर लोग विज्ञान और प्रौद्योगिकी का लाभ भी नहीं उठा सकते। यूनेस्को के अनुसार निरक्षर की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—"वह व्यक्ति जो अपने दैनिक जीवन से संबंधित तथ्यों से संबंधित छोटे तथा सरल विवरण न लिख सकता हो, न पढ़ सकता हो, न समझ सकता हो।"

निरक्षता उन्मूलन के लिए हमारे देश में कार्यात्मक साक्षरता (फंक्शनल लिटेरसी प्रोग्राम) 1988 में शुरू किया गया जो 1978 में प्रारंभ किए राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का अगला कदम है। कार्यात्मक साक्षरता का तात्पर्य है अक्षर ज्ञान और संख्या-ज्ञान में आत्मनिर्भर होना, अपनी गिरी हुई हालत की जानकारी पाना और संगठित होकर विकास कार्यक्रमों में भाग लेकर अपनी दशा सुधारने की कोशिश करना, आर्थिक उन्नति को मजबूत करने के लिए नए हुनर सीखना, राष्ट्रीय एकता, पर्यावरण संरक्षण, महिला और पुरुष की समानता, छोटा परिवार—इन सामाजिक मूल्यों को अच्छी तरह समझना। कहना न होगा यदि कार्यात्मक साक्षरता अपने सही अर्थों में क्रियान्वित की जा सके तो ग्रामोत्थान का सपना काफी अंशों में साकार हो सकता है। उक्त कार्यात्मक साक्षरता राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का प्राप्तव्य है जिसका शुभारंभ तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा 5 मई 1989 को किया गया था। साक्षरता मिशन का लक्ष्य 15 से 35 आयुवर्ग के 8 करोड़ निरक्षरों को 1995 तक कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करना प्रस्तावित है। इसमें से 5 करोड़ लोगों को 1990 तक साक्षर बनाना शामिल था। 1991 की जनगणना के अनुसार देश की 52.11 प्रतिशत आबादी साक्षर हो गई है, जो 1981 की जनगणना के अनुसार 36.23 प्रतिशत थी। किन्तु इसका दूसरा पहलू भी है जिसके अनुसार पिछले दस वर्षों में देश की आबादी लगभग 21 प्रतिशत बढ़ गई है। जहां हमारा साक्षरता का प्रतिशत बढ़ा वहां बढ़ी हुई आबादी के कारण पिछले दस वर्षों में निरक्षरों की संख्या भी सात प्रतिशत बढ़ गई है। हमारे बढ़े

हुए साक्षरता प्रतिशत का एक कारण यह भी है कि साक्षरों की गणना का आधार भी ताजा जनगणना में बदल दिया गया है। पहले पांच साल से कम उम्र के बच्चों को साक्षर या निरक्षर की श्रेणी में नहीं रखा जाता था, इस बार यह आयु सीमा बढ़ाकर सात साल कर दी गई है जो अधिक वैज्ञानिक है। साक्षरता का बढ़ा हुआ प्रतिशत यद्यपि पूर्ण साक्षरता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है, किन्तु साक्षरता की उपलब्धि को कार्यात्मक साक्षरता में बदलना जरूरी है। इसके अभाव में साक्षरता द्वारा ग्रामीण विकास का आधार पुष्ट होना कल्पनावत् ही रहेगा।

ग्रामोत्थान के अनेक पहलुओं में कृषि कार्य में अधिक अर्थोपार्जन भी शामिल है। कृषि कार्य के लिए अनेकानेक योजनाएं क्रियान्वित की जा रही हैं। ऐसी योजनाओं का पूरा लाभ ग्रामीणों को न मिलने का एक कारण निरक्षता भी है। क्यों न गांवों में, विशेष रूप कृषि में, सुधार आदि के लिए दी जा रही सब्सिडी जैसे लाभों को निरक्षरता उन्मूलन से जोड़ दिया जाए। जांबिया तथा अन्य देशों में हुए ऐसे प्रयोगों को इस दृष्टि से देखा जा सकता है।

जांबिया में कार्यात्मक साक्षरता कार्यक्रम 1969 में प्रारंभ हुआ था। उक्त परियोजना कार्य आधारित (वर्क ओरिएंटेड) थी। वहां किसान औसतन एक एकड़ में पांच बोरे मक्का पैदा करता था। मक्का को ही साक्षरता के लिए केन्द्रीय विषय बनाया गया। मक्का की उत्पादन विधियों आदि की जानकारी साक्षरता के माध्यम से दी गई। सैद्धांतिक जानकारियां देने के बाद शिक्षार्थियों से उन्हें व्यवहार में लाने के लिए कहा गया। पढ़ना-लिखना सिखाने के लिए सोलह महीनों का समय रखा गया था। जिन शिक्षार्थियों ने उक्त कोर्स पूरा कर लिया उन्हें 4000 मीटर मक्का के खेत के लिए बीज, खाद और कीटाणु निरोधक सामग्री दी गई। 1972 में फसल आने के बाद देखा गया कि उन शिक्षार्थियों ने प्रति हैक्टेयर औसतन 15 बोरे मक्का पैदा की जो पहले से 300 प्रतिशत अधिक थी।

इस प्रयोग को एक उदाहरण ही माना जा सकता है। हम अपनी परिस्थितियों में इस प्रयोग से प्रेरणा लेना चाहें तो ग्रामीण विकास के नए आयाम उद्घाटित हो सकते हैं। प्रौढ़ शिक्षा अभियान को विशिष्ट सफलताएं, सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक विकास के संदर्भ में मिली हैं। इन स्थितियों में साक्षरता को लोगों द्वारा नई स्थिति का सामना करने तथा समाज में वांछित परिवर्तन लाने की दृष्टि से उनमें नेतृत्व का विकास करने के रूप में भी देखा जा सकता है।

जहां गरीबी है वहां निरक्षरता भी समान रूप से फैली हुई दिखाई देती है। दूसरे शब्दों में कहें तो ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक-दूसरे को बल देती हैं। गरीबी और निरक्षरता के साथ अन्य अनेक समस्याएं भी जन्म लेती हैं। बीमारी, कुपोषण, जनसंख्या वृद्धि, उच्च बाल मृत्यु दर, जीवन में स्तरहीनता, रोजगार के अवसरों में कमी आदि समस्याएं गरीबी और निरक्षरता से उत्पन्न अन्य समस्याएं हैं।

उत्पादक श्रम शक्ति में जो लोग कार्यरत हैं वे या तो निरक्षर हैं या मामूली शिक्षा प्राप्त। ये लोग कृषि, छोटे-मोटे उद्योग और सेवा कार्यों में लगे हुए देखे जा सकते हैं। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों में इनकी गणना की जा सकती है। सीमांत कृषक, भूमिहीन कृषि मजदूर, शहरों में निर्माण कार्यों में लगे मजदूर, घुमन्तू श्रमिक आदि ऐसे ही लोग हैं। इनमें सर्वाधिक संख्या गांवों में बसे लोगों की है।

गरीबी और निरक्षरता का आनुपातिक संबंध है। सर्वेक्षणों से यह सामने आया कि मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, असम तथा उत्तर प्रदेश में गरीबी की दर ऊंची है तो निरक्षरता की दर भी काफी अधिक है। अतः कह सकते हैं कि निरक्षरता और गरीबी का चोलीदामन का संबंध है।

जहां गरीबी है वहां निरक्षरता भी समान रूप से फैली हुई दिखाई देती है। दूसरे शब्दों में कहें तो ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक-दूसरे को बल देती हैं। गरीबी और निरक्षरता के साथ अन्य अनेक समस्याएं भी जन्म लेती हैं। बीमारी, कुपोषण, जनसंख्या वृद्धि, उच्च बाल मृत्यु दर, जीवन में स्तरहीनता, रोजगार के अवसरों में कमी आदि समस्याएं गरीबी और निरक्षरता से उत्पन्न अन्य समस्याएं हैं।

केरल, गुजरात और कर्नाटक में समन्वित ग्रामीण विकास योजनाओं से लाभान्वित होने वाले लोगों के शैक्षिक स्तर के सर्वेक्षण से यह सिद्ध हुआ कि निरक्षर होने के कारण अधिकांश को इन योजनाओं की आवश्यक जानकारी तक न थी। वे न तो इन योजनाओं के लाभों से परिचित थे न अपने अधिकारों से अवगत थे। अतः गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की उपयोगिता तभी है जब लाभान्वित होने वाले स्वयं उन कार्यक्रमों में रुचि लेने लगें। रुचि पैदा करने के लिए उनके शैक्षिक स्तर को बढ़ाना आवश्यक है। इसलिए कार्यात्मक साक्षरता तथा गरीबी उन्मूलन योजनाओं को साथ-साथ चलाया जाना चाहिए।

साक्षरता कार्यक्रमों में अपेक्षित सफलता न मिलने के कारणों पर विचार करना भी आवश्यक है। सफलता इसलिए नहीं मिली क्योंकि साक्षरता के कार्यक्रम एकांगी रूप से चलाए गए।

उनकी गति भी वही रही जो अनेक विकास योजनाओं की रही। आपस में संवाद का न होना भी सफलता में अड़चनें पैदा करता रहा। निरक्षरता उन्मूलन कार्यक्रमों तथा ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में आपसी तालमेल का अभाव साक्षरता कार्यक्रमों को क्षति पहुंचाता रहा। तालमेल के इस अभाव ने एक को असफल बनाया और एक असफलता ने दूसरे को असफल बनाया।

साक्षरता की वृद्धि व्यावसायिक दक्षता में वृद्धि करती है। इससे उत्पादन लक्ष्यों को भी प्राप्त किया जा सकता है। हमारे देश में 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यों में लगी है। लगभग 50 प्रतिशत आय कृषि क्षेत्र से आती है। अतः यह जरूरी है कि कृषि विस्तार सेवा से संबंधित कार्यक्रमों तथा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में आपस में तालमेल होना चाहिए। किसानों को सुधरी हुई तकनीक एवं विधियों के बारे में बताते समय साक्षरता पर भी ध्यान देना आवश्यक है। जैसे-जैसे नई तकनीक का प्रयोग बढ़ेगा साक्षरता की अनिवार्यता भी उसी गति से महसूस की जाएगी। तकनीक एक कौशल है तथा इसकी प्राप्ति साक्षरता के बिना शायद कल्पना ही रहेगी। ग्रामीण विकास के परिप्रेक्ष्य में इन स्थितियों को जितनी जल्दी व्यवहार में लाया जाए उतना फलदायी होगा।

प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में भी दृष्टि-परिवर्तन की आवश्यकता है। शिक्षा मूलभूत मानवीय अधिकार है तथा निरक्षरता एक बहुत बड़ी बाधा है। शिक्षा व्यक्तित्व के विकास का एक प्रमुख साधन है तथा राष्ट्र निर्माण का आधार भी। इस दृष्टि से प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से समाज की स्वास्थ्य, पोषण, आवास आदि समस्याओं को व्यावहारिक रूप में देखा जा सकता है।

अतः ग्राम विकास के परिप्रेक्ष्य में प्रौढ़ शिक्षा में प्रशिक्षण आदि पर इस दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। प्रौढ़ शिक्षा के कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण नियमित तथा स्तरों पर होना चाहिए। ग्रामीण विकास के कई आयाम हैं। अच्छा हो भिन्न-भिन्न विभागों के प्रशिक्षणार्थियों के लिए एक जैसे प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए। इससे ये लोग समस्याओं को एक-दूसरे से संबंधित कर देख सकेंगे तथा एक ऐसी दृष्टि का विकास कर सकेंगे जो अलग-अलग क्षेत्रों की समन्वयकारी दृष्टि होगी। इसमें सुदूर शिक्षा (डिस्टेंट एजूकेशन) तथा इलेक्ट्रानिक उपकरणों का भी सहयोग लिया जा सकता है।

ग्रामीण विकास की दृष्टि से अन्य उल्लेखनीय बिन्दु यह है कि साक्षरता कार्यक्रम लोगों पर थोपे न जाएं या लोगों को कम से कम यह न लगे कि यह उन पर थोपा गया है। यह कारगर तभी हो सकता है जब लाभान्वित होने वाले लोग इसमें स्वयं भाग लें और व्यक्तिगत रूप से हर एक भाग लेने के लिए जागरुक रहे। लोग इस कार्यक्रम से प्रतिबद्धता का अनुभव करें। ऐसी प्रतिबद्धता से सांस्कृतिक भावनात्मक एकीकरण का भी आधार पुष्ट होता है।

साक्षरता के माध्यम से ग्रामीण विकास को मूर्त रूप देने की दृष्टि से लोगों के साक्षर हो जाने के साथ यह कार्यक्रम समाप्त नहीं हो जाता बल्कि शुरू होता है। अतः उत्तर साक्षरता तथा नवसाक्षरों के लिए सतत शिक्षा कार्यक्रम प्रारंभ किए जाने चाहिए। इसके द्वारा ग्रामीण समाज एक प्रकार की सामाजिक प्रक्रिया का सतत सदस्य बना रह सकता है। नवसाक्षर वे लोग हैं जिन्होंने थोड़ा बहुत पढ़ना-लिखना सीख लिया है। उन्हें अब ऐसा साहित्य पढ़ने-सीखने के लिए मिलना चाहिए जिससे वे अपनी साक्षरता बनाए रखने के साथ-साथ अपना जीवन स्तर सुधारने और जीविकोपार्जन के साधनों में अपनी सीखी नई जानकारी का उपयोग कर सकें और सुधार ला सकें। इस तरह यह जीवन भर चलने वाला कार्यक्रम भी बना सकता है।

नवसाक्षरों के लिए 'जनशिक्षण निलयम' की स्थापना राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के अंतर्गत की गई है। एक जन शिक्षण निलयम 5000 ग्रामीण जनसंख्या के लिए निर्धारित है अर्थात् चार या पांच गांवों के बीच एक जनशिक्षण निलयम का प्रस्ताव है। हर जनशिक्षण निलयम में सायंकालीन कक्षाओं, पुस्तकालयों और वाचनालयों के अलावा वाद-विवाद, खेलकूद, साहसपूर्ण गतिविधियों सांस्कृतिक कार्यक्रमों, रेडियो, टी. वी. और वी. डी. ओ. की सुविधा रहेगी। विभिन्न विषयों पर कार्यात्मक और सरल प्रशिक्षण कार्यक्रम होंगे और एक ही स्थान पर विकास कार्यक्रम की जानकारी देने की व्यवस्था होगी।

नवसाक्षरों में सीखने की ललक होती है। उनके लिए विभिन्न विभागों की विज्ञप्तियां तथा पोस्टर भी उपयोगी हो सकते हैं। यहां तक कि सहकारी समिति से ऋण के आवेदन-पत्र करना व मनीआर्डर फार्म भरना भी उनके लिए नया सीखना हो सकता है। इसी प्रकार नवसाक्षरों के लिए छपे दीवार समाचार पत्र आदि भी साक्षरता को बनाए रखने में मदद दे सकते हैं ऐसा नवसाक्षर साहित्य भी विशेष रूप से तैयार किया जाना चाहिए जिसे पढ़कर हमारे ग्रामीण प्रौढ़ अपने रोजगार धंधे के बारे में नई जानकारी पा सकें। कोई नवसाक्षर प्रौढ़ कोई नया व्यवसाय शुरू करना चाहे तो नवसाक्षर साहित्य में ऐसी पुस्तकों का समावेश होना चाहिए। मुर्गीपालन, पशुपालन, मधुमक्खी पालन आदि की वैज्ञानिक जानकारी पर नवसाक्षर साहित्य के

अंतर्गत कुछ पुस्तकें छपी भी हैं किन्तु वे अपने पाठकों तक पहुंच नहीं पातीं। जनशिक्षण निलयम इस दिशा में बहुत काम कर सकते हैं और एक पढ़ने वाले समाज की स्थापना में कारगर भूमिका निभा सकते हैं।

शिक्षा के द्वारा सामाजिक परिवर्तन भी एक वास्तविकता बन सकती है। बशर्ते शिक्षा में सातत्य को बनाए रखा जाए। कोई भी परिवर्तन पहले मस्तिष्क में होता है फिर व्यवहार में आता है। शिक्षा मन में परिवर्तन के बीज का न केवल अंकुरण करती है बल्कि उसे पल्लवित-पुष्पित भी करती है। यही सामाजिक परिवर्तन का आधार भी बनता है। इसके लिए संचार साधनों का भी महत्व स्वीकार करना तथा उनका उपयोग करना अपेक्षित है।

संचार साधनों की चर्चा करते समय गांवों में शताब्दियों से चली आ रही पारंपरिक शैलियों को नहीं भूलना चाहिए। इनमें कथा, कीर्तन, नाच, नौटंकी आदि का समावेश है। पारंपरिक कलाएं ग्राम जीवन के अधिक निकट हैं तथा अधिक खर्चीली भी नहीं हैं। इनके द्वारा प्रौढ़ शिक्षा के लिए अपेक्षित वातावरण बनाया जा सकता है तथा शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में भी ये सहायक हो सकती हैं। हमारी ये शैलियां मौखिक परंपरा का श्रेष्ठतम उदाहरण है। इनमें जनजागरण की भी अपूर्व क्षमता है। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को अधिक संगत बनाने में इनका उपयोग किया जा सकता है तथा विज्ञान जैसे विषय भी लोक कलाओं के माध्यम से लोकप्रिय बनाए जा सकते हैं।

इस प्रकार जैसा कहा गया कि ग्रामीण विकास की दृष्टि से प्रौढ़ शिक्षा या साक्षरता कार्यक्रमों पर भी पुनर्विचार की आवश्यकता है। साक्षरता कार्यक्रमों को मात्र निरक्षरता निवारण तक सीमित न रख सतत शिक्षा या जीवन पर्यन्त शिक्षा के रूप में देखना होगा। ऐसा चिंतन निश्चय ही हमारे विकास चक्र से जुड़ेगा और सीखने की दुनिया तथा काम की दुनिया के बीच नए रिश्ते कायम करेगा। इसके लिए जरूरी है कि सीखने की विधि में परिवर्तन हो। प्रौढ़ को कबूतर से ही न सिखाया जाए बल्कि वह काम में सीखे और इस सीखने में काम का महत्व, काम के घंटे और दिहाड़ी, कोई काम न छोटा न बड़ा, कोई नया काम करना चाहे तो उसकी सूचना जैसी जानकारियां देना प्रौढ़ शिक्षा या साक्षरता कार्यक्रमों का उद्देश्य बनाना चाहिए। इस जानकारी के आयाम बढ़ाए भी जा सकते हैं। कोई गांव का नवसाक्षर प्रौढ़ अपने खाली समय में कोई नया धंधा शुरू करना चाहे तो सरकार से ऋण कैसे और कितना मिल सकता है, जैसी जानकारी भी इसमें शामिल हो। नवसाक्षर को किसी अभिकरण द्वारा ऋण मिलने में सहायता का उपबंध किया जा सके तो साक्षरता की प्यास बढ़ सकती है जिसका परिणाम कालांतर में ग्रामीण विकास के रूप में प्रतिफलित हो सकता है।

शिक्षा के द्वारा सामाजिक परिवर्तन भी एक वास्तविकता बन सकती है। बशर्ते शिक्षा में सातत्य को बनाए रखा जाए। कोई भी परिवर्तन पहले मस्तिष्क में होता है फिर व्यवहार में आता है। शिक्षा मन में परिवर्तन के बीज का न केवल अंकुरण करती है बल्कि उसे पल्लवित-पुष्पित भी करती है। यही सामाजिक परिवर्तन का आधार भी बनता है।

ग्रामीण विकास एक समन्वित दृष्टि हो सकती है। कार्यात्मक साक्षरता कार्यक्रमों का महत्व स्वीकारा ही नहीं गया है। जहां अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के द्वारा हम आने वाली जनसंख्या को शिक्षित करने के लिए कृतसंकल्प हैं वहीं निरक्षर रह गई जनसंख्या को आत्मनिर्भर जागरूक और अपना विकास स्वयं करने की क्षमता विकसित करने के लिए उन्हें कार्यात्मक साक्षरता देना हमारी अनिवार्यता होनी चाहिए।

के. 40 एफ साकेत
नई दिल्ली-110017

ग्रामीण विकास कार्यक्रम समस्याएं एवं समाधान

डॉ. भक्तराम शर्मा

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण विकास के लिए शुरू किए गए लगभग सभी कार्यक्रम अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में पूरी तरह सफल नहीं हो पाए। जहां एक ओर, इन कार्यक्रमों को बनाते समय हमारे गांवों की वास्तविकताओं, आवश्यकताओं और संभावनाओं का पूरी तरह आकलन नहीं किया गया था, वहीं दूसरी ओर ऐसी अनेकों बाधाओं का पुर्वानुमान सही तरह से नहीं लगाया गया जो इन कार्यक्रमों के रास्ते में आ सकती थीं। आज आवश्यकता है कि हम अपने विकास कार्यक्रमों को वास्तविक जरूरतों के अनुरूप ढालें और इन्हें प्रभावी रूप से क्रियान्वित करें ताकि इनसे निर्धन वास्तव में लाभान्वित हों। डा. भक्त राम शर्मा इस दिशा में कुछ समाधान सुझा रहे हैं।

असली भारत गांवों में निवास करता है किन्तु क्या हम गांवों में रहने वाले अपने ग्रामीण भाइयों के जीवन स्तर को स्वतंत्रता प्राप्ति के 44 वर्षों के पश्चात भी वैसा बना पाए हैं जैसा कि होना चाहिए था? आज भी गरीबी उन्मूलन और बेरोजगारी समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के महत्वपूर्ण पहलू बने हुए हैं। हम वहां के बेरोजगार युवकों को पर्याप्त रूप से लाभदायक रोजगार उपलब्ध नहीं करा पा रहे हैं। कृषि उत्पादन में वृद्धि के बावजूद भूमिहीन श्रमिकों के रोजगार के दिनों की संख्या तथा वास्तविक मजदूरी में गिरावट आई है। कृषि उत्पादन से सम्बंधित किसी भी विकास कार्यक्रम में लघु कृषकों को आवश्यक महत्व नहीं मिला। इनकी जोतें छोटी होती चली गईं, काश्तकारी के स्वरूप व उससे सम्बद्ध समस्याओं ने बल पकड़ा। उत्पादन और उपभोग के निम्नस्तर और परिणामस्वरूप अपर्याप्त बचतें तथा ऋण के बंधन देखने में आए। गत चार दशकों में क्रियाशील आर्थिक नीति, विकास योजना आदि कार्यक्रम ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन में बहुत सफल नहीं रहे। विज्ञान, तकनीकी और औद्योगीकरण के यथोचित लाभ अभी तक समस्त ग्रामीणों को प्राप्त नहीं हुए हैं। इसके अनेक कारणों में लालफीताशाही और बिचौलियों द्वारा ग्रामीणों का शोषण व विकेन्द्रीकरण का अभाव है।

स्वर्गीय भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 15 अक्तूबर 1989 को बुलंदशहर में नरौरा परमाणु बिजलीघर को राष्ट्र को समर्पित करने के बाद एक जनसभा को सम्बोधित करते हुए कहा था—

"भ्रष्टाचार, शोषण और दलाली खत्म करने के लिए हमने पंचायती राज की नई तरकीब निकाली थी। इससे महिला, हरिजन और गरीबों को विशेष सुविधा होती और इस विधेयक से हमने देश में विकास का एक नया द्वार खुलने की उम्मीद की थी।...."

आगे उन्होंने कहा था कि "उत्तर प्रदेश का पिछले सालों में काफी तेजी से विकास हुआ है। फिर भी आपकी और हमारी आशाएं पूरी नहीं हुई हैं। दरअसल 100 रुपये हम देते हैं तो 15 रुपये आप तक पहुंच पाते हैं। बीच की दलाली और मुवकिल को हमें खत्म करना है।"

अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय रुपये का बड़ी तीव्रता से अवमूल्यन हुआ है। इसके कारण भारतीय माल विदेशियों के लिए सस्ते होते जा रहे हैं। इस अवमूल्यन ने घरेलू बाजार में भी रुपये के मूल्य को कम कर दिया है। फलतः कीमतों में दिन-प्रतिदिन बढ़ोतरी हो रही है। यही कारण है कि भारतीय अर्थतंत्र की प्रकृति में गत कुछ वर्षों में बड़ा अन्तर आ गया है। अर्थतंत्र के प्रबंधन की चुनौतियां बढ़ गई हैं। बाजार की शक्तियां नियंत्रण से बाहर न चली जाएं, उसके लिए आवश्यक है कि समाज में उभर रहे नए दबाव समूहों की शक्ति, प्रकृति तथा उसके प्रभाव का सम्यक मूल्यांकन हो। सारे देश में कृषक एक दबाव समूह के रूप में उभर रहे हैं। बाजार की शक्तियों को अपने अनुकूल करने का उनका प्रयास तेज होता जा रहा है। मूल्य संरचना पर उनका प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है।

ग्रामीण व्यवस्था को सुदृढ़ करने के उपाय प्रबंध-व्यवस्था

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि प्रौद्योगिकी, निवेश, ऋण, मूल्य समर्थन तथा अन्य सेवाएं राष्ट्रीय स्तर से ग्रामीण स्तर तक कैसे पहुंचाई जाती हैं। अतः कृषि विकास के लिए प्रबंध-व्यवस्था बहुत महत्वपूर्ण है। इस समय राज्यों में प्रबंध व्यवस्था इतनी ठीक नहीं है कि आयोजन, संगठन, कर्मचारी व्यवस्था, निगरानी आदि के कार्यों के साथ न्याय कर सकें क्योंकि यह प्रबंध व्यवस्था इन कार्यों को ध्यान में रखकर नहीं की गई हैं। राज्य के कृषि प्रशासन ढांचे को मजबूत करने की आवश्यकता है ताकि उसे ऊपर से नीचे तक अधिकार क्षेत्र के अनुसार योजनाओं के कार्यान्वयन और उपलब्धियों के मूल्यांकन से अधिक अनुकूल बनाया जा सके।

समता मूल्य का सिद्धान्त

यदि हम वास्तव में ऐसा चाहते हैं कि हमारे देश मे भुखमरी और गरीबी मिटाई जाए तो हमें ग्रामीण समाज के आर्थिक उन्नयन के लिए प्रयत्नशील होना पड़ेगा। इसके लिए सबसे पहले हमें मूल्य-निर्धारण प्रणाली में सुधार लाना होगा। यदि हम समता मूल्य का न्यायसंगत सिद्धांत अपना लें तो इसमें अनेक सुधारों की सम्भावना है। समता मूल्य के सिद्धांत का सीधा सा अर्थ यह है कि किसानों को अपनी उपज को बेचने पर जो मूल्य प्राप्त होता है तथा उन्हें अपने उपयोग की वस्तुओं को खरीदने के लिए जो मूल्य देना पड़ता है इन दोनों में समतुल्यता होनी चाहिए।

जब ग्राम-स्तर पर जनता स्वयं अपनी योजनाएं बनाती है तो उसे उपलब्ध साधनों, कमियों और कम लागत की तकनीकों का बेहतर ज्ञान होता है। इस तरीके से बेहतर परिणाम दिखाने की भावना आती है और सारे क्षेत्र का समान विकास हो सकता है क्योंकि स्थानीय लोगों को अपनी जरूरतों, प्राथमिकताओं, अपने क्षेत्र की स्थिति तथा संभावनाओं की अधिक जानकारी होती है। स्थानीय जनता परस्पर निर्भर गतिविधियों की बेहतर जानकारी के कारण ऐसे समेकित कार्यक्रम अधिक अच्छे ढंग से बना सकती है जिसमें एक न्यूनतम लागत पर अधिकतम सफलता मिले।

विकेन्द्रीकरण

संतुलित ग्राम-विकास के लिए आर्थिक शक्तियों के विकेन्द्रीकरण की भी आवश्यकता है। यह विकेन्द्रीकरण राज्य स्तर से लेकर जिला, तालुका, खंड तथा पंचायत स्तर तक होना चाहिए। पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण तथा क्रियान्वयन के लिए सभी राज्यों की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए एक राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना करनी होगी। इसकी भूमिका को अधिक व्यापक बनाने के लिए योजना आयोग को इसका कार्यकारी उपकरण बनाना होगा। अतः विकेन्द्रीकरण अर्थव्यवस्था के अंतर्गत नियोजन की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के संस्थागत प्रयास होना चाहिए।

गरीबी और बेरोजगारी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। 'गरीबी हटाओ' का नारा तो अनेक राजनीतिक पार्टियां देती रहती हैं। लेकिन जब तक बहुत बड़े-बड़े धनी रहेंगे तब तक निर्धनता दूर नहीं की जा सकती। अतः एक अमीरी रेखा का निर्धारण भी किया जाना चाहिए। एक सीमा से ऊपर की सम्पत्ति को सरकार को गरीबी-उन्मूलन कार्यक्रमों में खर्च करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

जमींदारी उन्मूलन अधिनियम बनने के बाद देश से जमींदारी प्रथा खत्म हो जानी चाहिए थी। लेकिन आजादी के 44 वर्षों बाद आज भी कुछ ऐसे गांव हैं, जहां यह प्रथा बरकरार है और सरकारी कानून का मखौल उड़ा रही है। ऐसे गांवों में आज भी जमींदार का दबदबा है। छोटी-छोटी सुविधाओं तक के लिए ग्रामीणों को जमींदार की मेहरबानी पर आश्रित रहना पड़ता है। जमींदारों ने बकायदा अपने सिंडीकेट बना रखे हैं।

जनता की भागीदारी

सरकारी योजनाओं में आम लोगों की भागीदारी भी आवश्यक है। इसके लिए निर्वाचित परिषदों का गठन—राज्य, जिला तथा ग्रामीण स्तर पर किया जाना चाहिए। ये परिषदें जनता की प्रतिनिधि संस्थाएं होनी चाहिए और कृषि-विकास के सरकारी प्रयासों में इनकी सक्रिय हिस्सेदारी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। यह एक क्रांतिकारी कदम होगा।

ग्रामीण विकास में गांव की भूमिका मुख्य होनी चाहिए। इसमें सरकार को सहायक भूमिका निभानी चाहिए। अब तक इसमें जन-सहयोग की अपेक्षा नौकरशाही साधनों को ही अधिक महत्व दिया गया है। ग्रामीण विकास की योजनाएं केन्द्र और राज्यों के मुख्यालयों में तैयार की जाती रही हैं। उन्हें स्थानीय अधिकारियों को कार्यान्वित करने के लिए सौंप दिया जाता रहा है। स्थानीय जनता का सहयोग बहुत सीमित रहा है। फलतः प्रायः लोगों की आवश्यकताओं और सरकार के कार्यों के मध्य तालमेल का अभाव रहा है।

ग्रामीण विकास की योजनाओं में स्थानीय जनता के सहयोग से बेहतर ढंग से योजनाएं बन सकती हैं। जब ग्राम-स्तर पर जनता स्वयं अपनी योजनाएं बनाती है तो उसे उपलब्ध साधनों, कमियों और कम लागत की तकनीकों का बेहतर ज्ञान

होता है। इस तरीके से बेहतर परिणाम दिखाने की भावना आती है और सारे क्षेत्र का समान विकास हो सकता है क्योंकि स्थानीय लोगों को अपनी जरूरतों, प्राथमिकताओं, अपने क्षेत्र की स्थिति तथा संभावनाओं की अधिक जानकारी होती है। स्थानीय जनता परस्पर निर्भर गतिविधियों की बेहतर जानकारी के कारण ऐसे समेकित कार्यक्रम अधिक अच्छे ढंग से बना सकती है जिसमें एक न्यूनतम लागत पर अधिकतम सफलता मिले।

भारत के संविधान में यह कहा गया है कि भारतीय जनता का लक्ष्य जनकल्याणकारी राष्ट्र है, जिसमें व्यक्ति समाज के लिए जिएगा और समाज व्यक्ति के लिए, भारत जाति समूह में आगे बढ़ेगा, जिसमें सबके लिए प्रेम और किसी के लिए द्वेष की भावना नहीं होगी। वस्तुतः जनकल्याणकारी राष्ट्र जनता के एक ऐसे आन्दोलन की पूर्णाहुति का सूचक है जिसमें जनता, जनता के प्रतिनिधि तथा जनता के सेवक एक सामान्य लक्ष्य की ओर कंधे से कंधा मिलाकर चलते हैं।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में ग्रामीण महिलाओं को अधिक से अधिक लाभ पहुंचाना, विकलांगों, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों, बंधुआ मजदूरों को लाभ पहुंचाना, भूमि सुधार उपायों को सम्मिलित करना, कृषि उत्पादों के लिए बाजार के विकास में प्राथमिक उत्पादों को लाभ पहुंचाना आदि सम्मिलित हैं। लेकिन इन बातों का व्यावहारिक क्षेत्र में कितना पालन हो रहा है, यह विचारणीय प्रश्न है। इस संबंध में वर्तमान प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव ने अपने प्रथम राष्ट्रीय प्रसारण में कृषि पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता पर जो बल देते हुए कहा था—उसका यह अंश विचारणीय है :

''कृषि के क्षेत्र में हमें बहुत कुछ काम करना है। हमने किया है बहुत कुछ लेकिन आगे भी करना है। खास ध्यान देना पड़ेगा, सिंचाई का विस्तार करना चाहते हैं, बारानी खेती को प्रोत्साहन बड़े पैमाने पर देना चाहते हैं और हमारी विस्तार सेवाएं हैं, जो एक्सटेंशन सर्विस हैं उनके माध्यम से हम नई टेक्नोलोजी को अपने किसान के घर तक, उसके दरवाजे तक पहुंचाना चाहते हैं और इस बात को भी सुनिश्चित करना चाहते हैं कि किसान को लाभकारी कीमतें मुहैया कराएं और इस बात को सुनिश्चित करें।''

देहात के गरीबों पर विशेष ध्यान देने पर भी उन्होंने बल दिया है। साथ ही उन्होंने कहा कि यह सुनिश्चित करना है कि जिनके लिए खर्च किया जाता रहा है उनको अवश्य मिले, बीच में कहीं इधर-उधर जाया न हो।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार

प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव ने 23 अगस्त 1991 को मुख्यमंत्री सम्मेलन में घोषणा की कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को देश के कोने-कोने में और दूर-दराज के गांवों तक पहुंचाया जाएगा। उन्होंने यह भी कहा कि डेढ़ वर्ष में ही इस कार्यक्रम को पूरा करने की कोशिश की जाएगी।

यद्यपि भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का इतिहास काफी पुराना है तथापि अभी भी यह प्रणाली जिस रूप में है उसे संतोषजनक नहीं माना जा सकता। आज सार्वजनिक वितरण प्रणाली अधिकांशतः शहरों की हद तक ही ठीक है। हमें इसका विस्तार दूरस्थ देहातों तक करना होगा ताकि इसका लाभ देहात के गरीबों को भी मिल सके। इस प्रणाली से न केवल लोगों को उचित दर पर चीजें मुहैया होंगी अपितु इसके माध्यम से वहां के लोग गरीबी से लोहा ले सकेंगे।

पंचायती राज व्यवस्था

महात्मा गांधी ने कहा था कि ''आजादी सबसे निचले स्तर से ही शुरू होनी चाहिए। इस प्रकार हर गांव एक गणराज्य या पंचायत होगा जिसे सभी प्रकार के अधिकार होंगे। इनका अर्थ यह हुआ कि हर गांव को आत्मनिर्भर बनना होगा और उसे अपने काम खुद करने के काबिल बनना होगा। इसे इतना समर्थ बनना होगा कि सारी दुनिया खिलाफ होने पर यह अपनी रक्षा खुद कर सके।''

लेकिन वास्तविकता में हुआ यह कि जनता के हाथ में सत्ता सौंपने का कार्यक्रम शक्तिशाली के हाथ में सत्ता सौंपने का कार्य बन गया। अधिकांश राज्यों में पंचायतों पर समृद्ध तबकों का अधिकार बना हुआ है।

भारतीय राजनीति में विकेन्द्रीकरण और लोकतंत्र के सिद्धांत सर्व स्वीकृत हैं किन्तु 1959 में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का जो कार्यक्रम आरंभ किया गया था उसका उद्‌गम सामुदायिक विकास के एक अध्ययन दल की रिपोर्ट से हुआ था। इस दल की रिपोर्ट में कहा गया था कि सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए संस्था बनानी चाहिए और इन क्षेत्रों के विकास का सारा काम उसे सौंप देना चाहिए। केवल दिशा-निर्देश, निगरानी तथा उच्च स्तरीय योजना का काम सरकार के पास रहे।

आठवीं पंचवर्षीय योजना की नीति के सफल कार्यान्वयन के लिए विकेन्द्रीकरण को महत्वपूर्ण माना गया है। अतः इस बात की पूरी कोशिश की जानी चाहिए कि ग्राम-स्तर की संस्थाएं सेवा का माध्यम बनने की अपेक्षा सरकारी नियंत्रण, स्थानीय गुटबाजी और सत्ता की होड़ के अखाड़े न बन जाएं।

पंचायतों को पुनर्जीवित करने के लिए संसद में सितम्बर 1990 में एक संविधान संशोधन विधेयक 1990 प्रस्तुत किया गया था। इस विधेयक में अन्य बातों के साथ-साथ, यह प्रस्ताव किया गया कि प्रत्येक गांव में 'ग्राम सभा' होनी चाहिए, ग्राम तथा अन्य स्तरों पर पंचायतों का गठन हो, ग्राम स्तर पर पंचायतों की सभी सीटों के लिए सीधे चुनाव तथा अन्य स्तरों पर पंचायतों की कम से कम पचास प्रतिशत सीटों के लिए सीधे चुनाव होने चाहिए। इसमें यह भी व्यवस्था की गई है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए जिनकी संख्या के अनुपात में सीटों का आरक्षण होना चाहिए तथा कम से कम एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की जाएं। इस विधेयक का उद्देश्य स्थानीय प्राधिकरणों को शक्तियां तथा अधिकार प्रदान करना है। वर्ष 1990-91 के दौरान पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए नए अध्ययन करने और अभिनव परियोजनाएं चलाने के लिए निधियां जुटाने हेतु दो करोड़ रुपये के प्रावधान से राष्ट्रस्तर पर 'पंचायतों का विकास' नामक एक योजना चलाई गई थी।

गरीबी और आय, धन तथा अवसरों की असमानताएं, आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनों को उत्तेजित करती हैं, उन्हें नियोजन तथा उत्पादन-वृद्धि के सहारे दूर करना होगा। योजना आयोग के अनुसार भारत में नियोजन का केन्द्रीय उद्देश्य जनता के स्तर को ऊंचा उठाना और उसके लिए एक अधिक समृद्धिशाली और विविधतापूर्ण जीवन का अवसर प्रदान करना है।

नियोजन की आवश्यकता

नियोजन न मात्र सीमित साधनों का एक विशेष प्रकार से उपयोग कर उत्पादन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए ही आवश्यक है बल्कि पूर्ण रोजगार की प्राप्ति, धन तथा आय की असमानता को समाप्त करने तथा सब को समान अवसर प्रदान करने आदि के बहुत से अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भी इसके आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों में भयानक गरीबी और आय, धन तथा अवसरों की असमानताएं, आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनों को उत्तेजित करती हैं, उन्हें नियोजन तथा उत्पादन-वृद्धि के सहारे दूर करना होगा। योजना आयोग के अनुसार भारत में नियोजन का केन्द्रीय उद्देश्य जनता के स्तर को ऊंचा उठाना और उसके लिए एक अधिक समृद्धिशाली और विविधतापूर्ण जीवन का अवसर प्रदान करना है। इन उद्देश्यों को योजना आयोग ने चार भागों में बांट दिया है-

(1) विकास की प्रक्रिया को उत्साहित करना, जो रहन-सहन के स्तर को ऊंचा करेगी, (2) समुदाय में उपलब्ध साधनों का उपयोग और अधिक प्रभावशाली ढंग से करना जिसमें आर्थिक नियोजन भी सम्मिलित होगा, (3) प्राविधिक उन्नति के संकुचित अर्थों में नहीं अपितु मानव शक्तियों के व्यापक विकास के लिए आर्थिक विकास करना, और (4) उपयुक्त संस्थागत ढांचे के अंतर्गत जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करना।

कृषि परम्परागत रूप से एक व्यवसाय है, जिसमें आर्थिक कार्यों का संगठन, व्यक्ति तथा उसके परिवारों पर केन्द्रित होता है परन्तु आधुनिक परिस्थितियों में यह दिन-प्रतिदिन अपर्याप्त सिद्ध हो रही है। हम कृषि तथा सहायक उद्योगों को चाहे व्यक्तिगत क्षेत्रों के अंतर्गत सम्मिलित करें या सार्वजनिक क्षेत्रों के अंतर्गत, यह वास्तविकता की अपेक्षा केवल नामकरण का ही अन्तर होगा, क्योंकि इन क्षेत्रों में वांछित विकास की प्राप्ति राज्य की सहायता तथा प्रोत्साहन के बिना नहीं हो सकती। संक्षेप में नियोजित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत व्यक्तिगत उत्पादकों को यथेष्ट उत्पादन के साधनों का प्रयोग मितव्ययिता के साथ समुदाय के अधिक से अधिक लाभ के लिए करना है।

समन्वित ग्रामीण विकास में प्रगति हेतु सामाजिक संस्थाओं तथा संबंधों का आधुनिकीकरण करना आवश्यक है। प्राविधिक तथा सामाजिक तत्वों के पारस्परिक अंतः-सम्बंधों का विकास भी बेहतर आर्थिक व्यवस्था के लिए अत्यंत आवश्यक है। मात्र विद्यमान धन के पुनर्वितरण से निर्धनता का उन्मूलन नहीं हो सकता। साथ ही न तो मात्र उत्पादन-वृद्धि के उद्देश्यों पर आधारित कार्यक्रमों द्वारा ही वर्तमान असमानताएं दूर की जा सकती हैं। दोनों को एक साथ ही कार्यान्वित करना है। यह समस्या मात्र उपलब्ध सामाजिक-आर्थिक ढांचे के अनुसार आर्थिक-क्रियाओं के टालने की ही नहीं है बल्कि संपूर्ण ढांचे को उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पुनः व्यवस्थित करना पड़ेगा।

कुछ लोगों को इस बात की शंका है कि कृषि के यंत्रीकरण से बेरोजगारी बढ़ेगी। यंत्रीकरण का अर्थ हमेशा खेती के लिए बड़े ट्रैक्टरों और कम्बाइन हार्वेस्टरों का उपयोग करना ही नहीं है। खेत के आकार तथा आवश्यकता के अनुरूप छोटे यंत्रों का उपयोग भी किया जा सकता है। यह सोचना गलत है कि छोटे पैमाने की खेती के लिए यान्त्रिकीकरण की आवश्यकता नहीं है। दो या तीन एकड़ का छोटा किसान अपने बैलों की पूरी क्षमता का उपयोग अपनी जमीन पर नहीं कर सकता, फिर भी उसे वर्ष भर इन बैलों की देखभाल करनी पड़ती है। यदि उसके

पास पावर टिलर हो तो उसका समय बच सकता है। मशीनी यंत्रों के उपयोग के द्वारा किसान जो समय और श्रम बचाएगा, उसका उपयोग वह दुग्ध-उत्पादन, मुर्गी-पालन, रेशम के कीड़े पालने आदि कार्यों में कर सकता है और अपने रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठा सकता है। जो भूसा वह बैलों को खिलाता है, यदि वही दूध देने वाले पशुओं को खिलाए तो अधिक लाभदायक होगा।

नियोजन का एक उद्‌देश्य 'सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास' रहा है। अब तक आर्थिक विकास को अधिक महत्व दिया जाता रहा है, परन्तु सामाजिक न्याय को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। अब तक औद्योगिक नीतियों के मुख्य लक्ष्य रहे हैं भारी मात्रा में उत्पादन, उद्योगों का विस्तार, आयात प्रतिस्थापना तथा निर्यात संवर्द्धन परन्तु संतुलित ग्रामीण विकास के लिए औद्योगिक नीतियों का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए अधिकतम रोजगार का सृजन। इसके लिए कुटीर तथा लघु उद्योगों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

अभिप्राय यह है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन के लिए कुछ परिवर्तनों की महती आवश्यकता है। समस्त बुराइयों की जड़ वर्तमान अर्द्धसामंती और इजारेदार सरमायेदारी है। इसका उन्मूलन करना होगा। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लाभ निचले स्तर तक ईमानदारी से पहुंचाने के लिए पूर्ण जांच होनी चाहिए। दोषी एवं भ्रष्ट अधिकारियों को समुचित दंड मिलना चाहिए। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे परिवारों को सब्सिडी और संस्थागत ऋण के द्वारा आमदनी वाली परिसम्पत्तियां प्रदान की जाएं। पंचायती राज की व्यवस्था को सम्यकतः लागू करना होगा। सरकार और कृषक के बीच बिचौलियों की समाप्ति होनी चाहिए। विकेन्द्रीकरण और सहकारिता की व्यवस्था से ग्रामीण-विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना होगा। उत्पादन और वितरण के दोनों ही क्षेत्रों में सहकारिता का सिद्धांत तुरन्त लागू होना आवश्यक है और इसी आधार पर धीरे-धीरे ग्रामीण आर्थिक जीवन का पुनर्गठन प्रारम्भ होना चाहिए। समन्वित ग्रामीण विकास के लिए ऐसे नियोजन की ही आज आवश्यकता है।

13/236, गीता कालोनी
दिल्ली-110031

गज़ल

बेदिल 'सरहदी'

ज़माना नित नई रुदाद[1] कहता जायेगा हम से।
किसी मरकज[2] पै जब शायद न ठहरा जाएगा हम से।

न टकराएंगे हम पत्थर से लेकिन क्या यकीं इसका,
कोई फेंका हुआ पत्थर न टकरा जाएगा हम से।

बिछाओ शौक से कांटे हमारी राह में लेकिन,
तुम्हारे हाथ जख्मी हों न देखा जाएगा हमसे।

खबर क्या थी ये होगी इन्तहा फहमो[3] फरासत की,
न सोचा-जाएगा हम से न समझा जाएगा हम से।

तमन्नाओं से गम हैं और गमों से जिन्दगानी है,
ये मकरुहात[4] का घेरा न तोड़ा जाएगा हम से।

किसी के गम को अपना गम समझ लेना नहीं मुश्किल,
किसी को अपना गम लेकिन न सौंपा जाएगा हम से।

और ये दुनिया के धन्धे क्या कयामत हैं?
ये माया-जाल है यारो, न निकला जाएगा हम से।

हमें भी इशरते दुनिया मुय्यसर हो तो सकती है
जमीर अपना मगर "बेदिल" न बेचा जाएगा हम से।

1. रुदाद = कहानी
2. मरकज = केन्द्र
3. फहमोफरासत = सूझ-बूझ
4. मकरुहात = विकारों

ए 371, नेहरू विहार
दिल्ली-54

आपका छोटा परिवार मंगलमय हो

राष्ट्र की एकता, अखन्डता एवं स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने के लिये

जनसंख्या विस्फोट से बचें।

हम दो हमारे दो

लड़का लड़की एक समान।
दो बच्चों का लक्ष्य महान॥

गरीबी, बेरोजगारी, आतंकवाद तथा प्रदूषण से बचने
के लिये अपने परिवार को सीमित रखें।

जनपद में
प्रा०स्वा०केन्द्रों, महिला चिकित्सालयों पर लगाये जाने वाले
सेवा शिविरों से सीमित परिवार के लिये
दूरबीन पद्धति द्वारा महिला नसबन्दी
सेवायें उपलब्ध करायी जा रही हैं

शिविर में आपका स्वागत है।

(डा० वी०के० पान्डेय)
मुख्य चिकित्सा अधिकारी,
फर्रूखाबाद।

(राजू शर्मा)
आई०ए०एस०
जिला अधिकारी
फर्रूखावाद।

ग्रामीण विकास कार्यक्रम
उपलब्धियां और विश्लेषण

मोहन दास नैमिशराय

लेखक की मान्यता है कि ग्रामीण जीवन की कठिनाइयां अब सरकार के अथक प्रयासों द्वारा दूर होती नजर आ रही हैं। आज गांव में पहले जैसी स्थिति नहीं है। एक चिट्ठी को पढ़वाने के लिए लोग दूसरों के दरवाजे नहीं खट-खटाते बल्कि आज उनके घरों में उनके बेटे-बेटियां इस काबिल हो गए हैं कि वे स्वयं पढ़-लिख सकते हैं।

इस संदर्भ में लेखक का मत है कि जवाहर रोजगार योजना बेरोजगार युवकों को रोजगार दिलाने के उद्देश्य से शुरू की गई है। अब गांव में सहकारी बैंकों का कार्य भी प्रगति पर है, जिससे गरीब एवं निर्बल, दलित वर्ग के लोगों को साहूकारों के चंगुल से छुटकारा मिला है और उन्होंने राहत की सांस ली है।

आज पूंजीवादी दबाव के कारण गांव और शहर के रिश्ते भी बड़ी तेजी से बदल रहे हैं, जिससे नैतिकता के मूल्यों में कमी आई है और लोग भौतिकता की ओर अग्रसर हो रहे हैं जो देश के लिए अच्छा नहीं है। हमें मुड़ कर फिर गांवों की ओर देखना होगा?

इसी सन्दर्भ में लेखक का मत है कि सभी सुविधाएं जो शहरों में उपलब्ध हैं यदि गांवों में भी उपलब्ध करा दी जाएं तो गांवों का शहरों की ओर पलायन रुक सकता है।

भारत मूलतः गांवों का देश है। देश की 80 प्रतिशत के लगभग जनसंख्या गांवों में ही निवास करती है। भारतीय गांवों की एक अलग संस्कृति और परम्परा रही है। जिसका अच्छा खासा प्रभाव महानगरीय जीवन पर देखा जा सकता है। सभ्यता और संस्कृति के स्रोत गांव ही रहे। भले ही कुछ लोगों द्वारा इस तथ्य को झूठला दिया जाए। गांव की जीवन शैली, लोक गीत तथा लोक कथाएं ही भारतीय संस्कृति की संवाहक बनी। प्रकृति तथा मनुष्य के बीच संवाद गांव ही बने। गांवों ने ही मनुष्य समाज को समुदाय जीवन जीने के लिए ऊर्जा दी, बल दिया, मानवीय सम्बन्धों को सकारात्मक स्तर पर फलने-फूलने का अवसर दिया। वस्तुतः गांवों का जैसा रूप और प्रारूप आज हम देखते हैं, ऐसा था नहीं। ब्रिटिश शासन की साम्राज्यवादी नीति के परिणामस्वरूप ग्रामीण जीवन तथा उसके परिवेश में पल रहे परम्परागत धन्धे प्रभावित हुए बिना न रह सके थे।

हमारे देश में गांवों की इसी दुर्दशा की ओर संकेत करते हुए तथा ग्रामीण जीवन को उसकी अस्मिता और पहचान लौटाने के लिए उसी समय से सवाल-दर-सवाल उठते रहे हैं। महात्मा गांधी ने कहा था कि भारत की आत्मा गांवों में निवास करती है। गांधी जी का गांवों के प्रति अटूट प्रेम था। वो तो प्रत्येक गांव को एक गणतंत्र बनाने के लिए भी सोचने लगे थे।

देश में आजादी का सूरज उगने के पश्चात से ही ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की शुरुआत हो गई थी। पंचवर्षीय योजनाओं ने व्यावहारिक रूप से गांवों के परिवेश को बदलना आरम्भ कर दिया था। चूंकि कृषि प्रधान देश में आर्थिक विकास हेतु भूमि सुधार सर्वोच्च प्रमुखता रखते हैं, इसलिए कृषिगत विसंगतियों, जमींदारी प्रथा, मजदूर किसानों का शोषण, कृषकों की भूमि से बेदखली, सिंचाई सुविधाओं की कमी तथा अन्य विसंगतियों को रोकने के लिए यथासंभव कदम उठाए गए।

सर्वप्रथम 1948 में मद्रास, तत्पश्चात 1949-50 में बंबई, हैदराबाद, 1951 में बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत और असम, 1952 में उड़ीसा, पंजाब, सौराष्ट्र और राजस्थान, 1954-55 में मैसूर, दिल्ली, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश में भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों को लागू किया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि जहां लगभग 2 करोड़ काश्तकारों का सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हुआ वहीं

दूसरी ओर इन कानूनों से एक मध्यवर्गीय किसान वर्ग का उदय हुआ। व्यापक स्तर पर लोगों को रोजगार मिला। लगभग 60 लाख हैक्टेयर भूमि भूमिहीन व गरीब किसानों को बांटी गई। एक नए युग का सूत्रपात हुआ। गांव में जब लोगों को भूमि मिली, रोजगार मिले तो उनके बीच खुशहाली आई।

भारतरत्न बाबा साहेब डा. बी. आर. आम्बेडकर ने एक बार कहा भी था—'अगर गांव में दलितों पर अत्याचार रोकने हों, तब दलित मजदूर किसानों को सबसे पहले जमीन के ऐसे टुकड़े चाहिए, जिनके सहारे गरीब मजदूर किसान अपना स्वाभिमान रखते हुए अपनी रोजी-रोटी कमा सकें। उन्हें दूसरों पर आधारित न होना पड़े। उनके जानवरों को अपने ही खेतों से चारा प्राप्त हो।' खेती को उन्होंने उद्योग का दर्जा देने की भी बात की थी। इस संदर्भ में उन्होंने एक प्रारूप भी भारत सरकार के सामने रखा था।

जवाहरलाल नेहरू को 5 अक्तूबर, 1945 में लिखे एक पत्र में गांधीजी ने कहा था—"मुझे विश्वास है कि अगर भारत को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करनी है एवं भारत के जरिए विश्व को भी तो आज नहीं तो कल इस तथ्य को मानना होगा कि लोगों को गांवों में रहना पड़ेगा, शहरों में नहीं। करोड़ों लोग शहरों एवं महलों में एक-दूसरे के साथ शांति से कभी नहीं रह सकेंगे।"

गांधीजी ने उसी पत्र में आगे लिखा था, "आखिरकार प्रत्येक आदमी अपने सपनों की दुनिया में रहता है। मेरे आदर्श गांव में बुद्धिमान मनुष्यों का वास होगा। वे जानवरों की तरह गंदगी एवं अंधकार में नहीं रहेंगे। प्रत्येक आदमी को अपने हिस्से का शारीरिक श्रम करना पड़ेगा। रेलवे, डाक एवं तार कार्यालय वगैरह के बारे में भी अनुमान लगाना संभव है। मेरे विचार से मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति ज्यादा जरूरी है। बाकी चीजें बाद में उपलब्ध हो जाएंगी।"

चरण सिंह उत्तर भारत की राजनीति में मंझले किसान के अभ्युदय के प्रतीक थे। शिखर जातियों का असर कम होने लगा था और हरित क्रांति ने यह अवसर ला दिया था कि जो खेत में खप कर फसल संवारेगा, वह ज्यादा कमाएगा। पर सबसे निचली सीढ़ी पर खड़े दीनहीन बने भूमिहीन मजदूर-किसान को न्याय मिलने की शुरुआत आज़ादी के पहले दशक के बाद ही हुई। चूंकि आर्थिक मोर्चे पर वह स्वयं अपनी लड़ाई नहीं लड़ सकता था। अतः उसकी लड़ाई को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी किसी न किसी रूप में सरकार ने ली। जमींदारी तथा सामंती प्रथा समाप्त हो चुकी थी। इस तरह आर्थिक शोषण से उसे मुक्ति मिली। गरीबी मिटाओ कार्यक्रम के अंतर्गत उसे रोजगार के साधन मुहैया हुए। जिससे उसके जीवन में उजाले की किरणें फूटीं।

गांवों में आरम्भ से ही बंधुआ मजदूरों की एक बड़ी समस्या रही है। यूं 1950 में भारतीय संविधान लागू होते ही अनुच्छेद 23 के अंतर्गत मनुष्यों के व्यापार, जबरन मजदूरी या बेगार को प्रतिबंधित कर दिया गया था। आपातकाल के दौर में 1 जुलाई, 1975 को घोषित 20 सूत्री कार्यक्रम में बंधुआ मजदूरी उन्मूलन को भी जगह दी। 25 अक्तूबर, 1975 को 'बंधुआ मजदूर' प्रणाली (उन्मूलन) अध्यादेश संसद में लाया गया, जिसे फरवरी, 1976 में संसद के दोनों सदनों में पारित करा कर, कानून का रूप दिया जा सका। फलस्वरूप बंधुआ मजदूरों का पता लगाना तथा उनके पुनर्वास का कार्य गति से होने लगा था। राज्य सरकारों से प्राप्त रिपोर्टों के अनुसार नवम्बर, 1985 तक 2,13,465 बंधुआ मजदूरों का पता लगा लिया गया था। 1985 में लगभग, 20,000 और नवम्बर 1986 तक 7,542 बंधुआ मजदूरों का पता लगाया गया। इसके बावजूद बंधुआ मुक्ति अभियान के रास्ते में चुनौतियां बहुत हैं। ये चुनौतियां सरकारी अधिकारियों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के स्वीकार किए बिना कार्य आसान नहीं। कानून के साथ-साथ लोगों के हृदय भी परिवर्तन करने होंगे।

संविधान के अनुच्छेद 45 में 14 वर्ष की आयु पूरी करने वालों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की बात कही गई है। भारत सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा ग्रामीण क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा नीति को विशेष रूप से अपनाया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों के निर्धन एवं असहाय बालकों को उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए सरकार की ओर से विशेष योजनाओं के अंतर्गत सार्थक प्रयास भी हुए हैं।

सरकार ने 1986 में शिक्षा सम्बन्धी जो राष्ट्रीय नीति बनाई थी, उसकी समीक्षा के लिए आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। उक्त शिक्षा नीति की समीक्षा करने के लिए तीन मुख्य लक्ष्य रखे गए—

1. महिलाओं और पिछड़ी जातियों तथा अल्पसंख्यकों को समानता का अधिकार दिलाने के लिए शिक्षा को एक प्रभावशाली तंत्र बनाना।
2. शिक्षा को काम और रोजगारोन्मुख बनाना और इसमें से असमानताओं को समाप्त करना।
3. समतावादी और धर्मनिरपेक्ष सामाजिक चेतना की ओर आगे बढ़ना।

इस तरह नई शिक्षा नीति, 1986 के अनुसरण में आरम्भ की गई चालू केन्द्रीय प्रायोजित योजनाएं प्रभावी रूप में क्रियान्वित हुई। राष्ट्रीय साक्षरता अभियान भी चलाया गया। गांव-गांव से प्रौढ़ लोगों के बीच से अशिक्षा का अंधकार भगाया गया। ध्यान

रहे कि हमारे देश की कुल आबादी में प्रौढ़ों की संख्या 33 प्रतिशत है। इनमें से 73 प्रतिशत प्रौढ़ ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। देश की प्रगति के लिए इनका शिक्षित होना अत्यंत आवश्यक है।

आज गांवों में बीस साल पहले वाली स्थिति नहीं है। जब एक चिट्ठी को पढ़वाने के लिए अनपढ़ लोगों को घर-घर दस्तक देनी पड़ती थी। अब तो घर-घर में उनके बेटे तथा पोते-पोती पढ़-लिख रहे हैं। स्वयं अधिक उम्र के लोगों के लिए प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम भी चल रहे हैं। प्रत्येक गांव में स्कूल न सही पर कुछ गांवों के समीप एक-एक प्राइमरी स्कूल भी खुल गए हैं।

सरकार की ओर से राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम भी शुरू किए गए। यह कार्यक्रम अक्तूबर 1980 में आरम्भ किया गया था और अप्रैल 1981 से केन्द्र तथा राज्य के बीच 50:50 की साझेदारी के आधार पर केन्द्रीय प्रायोजित कार्यक्रम के रूप में ग्रामीण विकास विभाग द्वारा कार्यान्वित किया गया। इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य हैं—

1. ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार तथा अल्परोजगार व्यक्तियों के लिए अतिरिक्त लाभकर रोजगार का निर्माण।
2. ग्रामीण आर्थिक तथा सामाजिक आधारित संरचना को मजबूत करने के लिए उत्पादन के सामुदायिक साधनों का निर्माण।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन की कुल गुणवत्ता में सुधार।

यह कार्यक्रम पूरे देश में स्थापित जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। जिन स्थानों पर पंचायत राज संस्थाएं सक्रिय हैं, वहां यह कार्य मुख्यतः उन्हीं की मार्फत किया जाता है। राज्यों/केन्द्रशासित क्षेत्रों को संसाधनों का आबंटन निर्धारित मापदंड के आधार पर किया जाता है। जिसमें 50 प्रतिशत भाग खेतिहर मजदूरों, सीमान्त किसानों तथा सीमान्त कर्मकारों का तथा 50 प्रतिशत भाग निर्धनता के पहलू का रखा जाता है। संसाधनों का दस प्रतिशत सीधे तथा केवल अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए लाभ कार्यों तथा 25 प्रतिशत सामाजिक वानिकी के कार्यों के लिए खर्च किया जाता है।

छठी योजना में केन्द्र तथा राज्य दोनों क्षेत्रों में 1,620 करोड़ रुपये के परिव्यय का प्रावधान रखा गया था। वास्तव में 1,873 करोड़ रुपये की राशि ही दी गई थी। सातवीं योजना की अवधि के लिए राज्य के 1,236.66 करोड़ रुपये के भाग सहित 2,487.47 करोड़ रुपये के परिव्यय का प्रावधान किया गया था। इस योजना अवधि में प्रति वर्ष लगभग 2,900 लाख श्रमिक दिवसों के रोजगार का निर्माण करने की परिकल्पना की गई थी। इस योजना के व्यावहारिक पक्ष के विश्लेषण से यह तथ्य उभर कर सामने आया कि केन्द्रीय ग्रामीण विकास विभाग में प्राप्त हुई तीन राज्यों की रिपोर्टों के अनुसार इस कार्यक्रम के अधीन उपलब्ध कराया गया रोजगार बहुत कम अवधि के लिए था। साथ ही यह ठीक प्रकार से नियोजन भी नहीं किया गया था। योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन तथा केन्द्रीय ग्रामीण विकास विभाग ने बिहार, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, कर्नाटक, केरल, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल में कुछ मूल्यांकन अध्ययन किए थे।

विनोबा जी भी कहते थे कि—अगर एक-एक गांव समझ जाए और मिल-जुल कर रहे, प्रेम से रहे, गांव की खुद रक्षा करें, वहां सबके लिए रोजगार का प्रबन्ध हो जाए तो गांव मजबूत हो जाएगा। उससे देश भी मजबूत होगा इस तरह सब लोगों को जरूरी चीजें मिलनी चाहिए। अन्न, वस्त्र, घर, स्वास्थ्य और पढ़ाई का प्रबन्ध होना चाहिए। यह प्रबन्ध सरकार की मदद से नहीं, असल में जनता अपने हाथ से कर ले, तो ठीक होगा।

जवाहर रोजगार योजना के तहत 1990-91 में 120 करोड़ रुपये और 1991-92 में 130 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया था। आठवीं योजना अवधि में प्रति वर्ष एक करोड़ नए रोजगार के अवसर पैदा करने का लक्ष्य होगा। निश्चित ही इससे ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगार युवकों को भी रोजगार मिलेगा।

कुछ राज्यों में ऋण राहत योजनाएं आरम्भ की गई हैं। यह योजना किसानों, बुनकरों, दस्तकारों, शिल्पकारों तथा भूमिहीन कृषि मजदूरों को उनके द्वारा 2 अक्तूबर, 1989 तक या इससे पूर्व लिए गए सहकारी ऋणों के अतिदेयों से राहत दिलाने के लिए घोषित की गई है।

समाज के हर वर्ग के विकास एवं हित को ध्यान में रखते हुए उत्तर प्रदेश सरकार ने कई कदम उठाए हैं—

1. पहली जनवरी, 1990 से पेंशन राशि 60 रुपये से बढ़ाकर 100 रुपये प्रतिमाह एवं न्यूनतम अर्हता 65 से घटाकर 60 वर्ष कर दी गई है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में ढाई एकड़ भूमि वालों या भूमिहीनों को लाभ मिलेगा।
2. स्वतंत्रता सेनानियों की पेंशन 1 अप्रैल, 1990 से 401

रुपये प्रति माह से बढ़ाकर 500 रुपये प्रति माह कर दी गई है।

3. पेयजल व्यवस्था तथा ग्रामीण आपूर्ति हेतु 136.36 करोड़ रुपये का प्रावधान।
4. समस्याग्रस्त गांवों में प्रति 250 व्यक्ति के लिए एक हैंड पम्प।
5. ग्रामीण युवाओं के विकास के लिए 3.13 करोड़ रुपये व्यय।

इसी तरह की योजनाएं अन्य राज्यों ने भी आरम्भ की हैं। पूरा देश 14 अप्रैल 1990 से अप्रैल 1992 तक भारत रत्न बाबा साहेब डा. आम्बेडकर जन्म शताब्दी समारोह मना रहा है। इसलिए देश भर में रहने वाले अनुसूचित जाति तथा जनजाति के निर्बल लोगों के लिए कुछ विशेष योजनाएं आरम्भ की गई हैं। उदाहरण के लिए ऐसे गांव जो अनुसूचित जाति/जनजाति बाहुल्य के हैं, उन्हें "आम्बेडकर ग्राम" के रूप में योजनाबद्ध कर वहां पर्यावरण एवं जीवन सुधार की व्यवस्था की गई हैं। मैदानी क्षेत्रों में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में अनुसूचित जातियों के परिवारों का आरक्षण 50 प्रतिशत से बढ़ाकर 60 प्रतिशत कर दिया गया। कुछ गांवों में होम्योपैथिक दवाखाने भी खोले गए हैं।

पिछले एक दशक से गांव कस्बों में सहकारी बैंकों का कार्य भी प्रगति पर है। इस दिशा में स्टेट बैंक आफ इंडिया तथा बैंक आफ इंडिया और सिंडिकेट बैंक ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। अनेक गांवों में इन बैंकों की शाखाएं खुलने से गरीब, निर्बल तथा पीड़ित वर्ग ने सूदखोरों की ब्याज पर ब्याज कमाऊ गिरफ्त से छुटकारा पाकर राहत की सांस ली है।

गांवों में और अधिक सामुदायिक केन्द्र, डाकघर तथा अस्पताल खुलने लगे हैं। इन केन्द्रों पर देश-विदेश के समाचारों के लिए दूरदर्शन भी रखे गए हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में चूंकि कुछ सालों से ऊर्जा का संकट बन रहा था इसलिए सरकार द्वारा विशेष प्रबन्ध किए गए। जैसे-जैसे गांवों के परम्परागत ऊर्जा स्रोत तेजी से क्षीण होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे ऊर्जा की समस्या भी बढ़ती चली जा रही है। अब केवल खाना पकाने और सर्दी से बचाव करने के लिए ईंधन की आवश्यकता नहीं पड़ती बल्कि घरों में रोशनी, खेतों में पम्प और ट्रैक्टर आदि के इस्तेमाल के लिए भी भारी मात्रा में ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। इसलिए गांवों में बायोगैस संयंत्र लगाने का अभियान अब प्रगति पर है। हालांकि छोटे किसान और भूमिहीन मजदूरों को बायोगैस संयंत्रों से बहुत कम लाभ मिला है, क्योंकि इसके लिए कम से कम तीन पशु रखना अनिवार्य शर्त है लेकिन कुल मिलाकर गरीब वर्गों को बायोगैस से लाभ मिलने की आशा जगी है। छोटे पनबिजली के कारखाने लगने से भी ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा की मात्रा में वृद्धि हुई है।

अप्रैल, 1985 से ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तृत बीमा योजना निश्चित ही उन सभी किसानों के लिए दिलासा देकर क्षति पूर्ति करने वाली सिद्ध हुई है जिनकी फसल प्राकृतिक विपदाओं के कारण नष्ट हो जाती है। इस योजना ने किसानों को आशा की किरण दी है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था—"आज जिन लोगों ने जीवनदात्री गांव की भूमि के रिक्त स्तनों में दूध संचार का व्रत लिया है, जो इसके घरों में प्रकाश लाने के लिए दीप जला रहे हैं, मंगल दाता विधाता उनके प्रति प्रसन्न हो। त्याग के द्वारा, तपस्या के द्वारा, सेवा द्वारा, परस्पर मैत्री बंधन द्वारा, बिखरी हुई शक्ति को एकत्र करके भारतवासियों के गरीबी के अभिशाप को वे साधक देश से निष्कासित करें, यही मैं एकमन से कामना करता हूं।"

विनोबा जी भी कहते थे कि—अगर एक-एक गांव समझ जाए और मिल-जुल कर रहे, प्रेम से रहे, गांव की खुद रक्षा करें, वहां सबके लिए रोजगार का प्रबन्ध हो जाए तो गांव मजबूत हो जाएगा। उससे देश भी मजबूत होगा इस तरह सब लोगों को जरूरी चीजें मिलनी चाहिए। अन्न, वस्त्र, घर, स्वास्थ्य और पढ़ाई का प्रबन्ध होना चाहिए। यह प्रबन्ध सरकार की मदद से नहीं, असल में जनता अपने हाथ से कर ले, तो ठीक होगा।

कुल मिलाकर ग्रामीण विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य विकास योजनाओं ने ग्रामवासियों के आर्थिक, शैक्षिक तथा सामाजिक स्तर में बढ़ोतरी की है। उनके सपनों में रंग भरे हैं। उनकी जीवन परिस्थितियों में सुधार किया है पर यह देखने में आया है कि जितना धन योजनाओं के संदर्भ में खर्च किया जाता है, उतना देश के आम आदमी तक नहीं पहुंचता। यह बात स्वयं दिवंगत और पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी तक ने स्वीकार करते हुए एक अवसर पर कहा था—'विकास की योजनाओं में जहां सरकार की ओर से एक रुपया खर्च किया जाता है वहां आम आदमी तक पहुंचते-पहुंचते वह रुपया केवल 15 पैसे भर रह जाता है।" इसी तथ्य को वर्तमान प्रधानमंत्री ने भी स्वीकार किया है और स्वीकार करते हुए चुनौती भरे शब्दों में कहा कि वे आम आदमी तक पूरे रुपये का रुपया पहुंचाने का प्रयास करेंगे। लेकिन क्या उनके साथ-साथ समूचे राष्ट्र में रहने वाले भारतीय उस चुनौती को स्वीकार करेंगे?

आज बढ़ते हुए पूंजीवादी दबाव के कारण गांव और शहर के रिश्ते बड़ी तेजी के साथ बदल रहे हैं। वे आत्मीय कम तथा व्यापारिक अधिक हो गए हैं। नैतिक मूल्यों के स्थान पर भौतिकता बढ़ी है। यही कारण है कि गांव के लोग धीरे-धीरे शहरों की तरफ रेंगने लगे हैं। शहर महानगरों में परिवर्तित होते जा रहे हैं और महानगर भीड़ के सैलाब में उतरते चले जा रहे हैं।

बहुत से साथी यह सुझाव देते हैं कि गांव में अगर सुविधाएं इकट्ठा कर दी जाएं तो गांव से लोगों का जाना रुक सकता है पर गांवों का शहरीकरण भी तो नहीं किया जा सकता। हर गांव की अपनी परम्परा तथा संस्कृति है। ग्राम्य जीवन की सीमाएं भी हैं। गांवों का विकास अवश्य ही होना चाहिए। वह विकास उसी स्थिति में हो सकता है जब हम सभी मिलकर साथ देंगे यानि गांव-पंचायत से लेकर उस क्षेत्र के विधायक और सांसद तक, बी. डी. ओ. से लेकर जिलाधीश तक। विकास के हर पहलू से गांवों को हमें आत्म-निर्भर बनाना होगा। गांव कोई ईंट-गारे का बड़ा मकान नहीं जिसकी तुरंत मरम्मत कर दी जाए। गांव तो सृजन की एक धारा है। जिसमें अगर गति रहेगी तो सृजन होता रहेगा वरना प्रगति के सभी रास्ते बंद होते चले जाएंगे। ग्रामीण-विकास का अर्थ पूरे राष्ट्र का विकास है। एक भी गांव में अगर विकास की गति रुक गई है या धीमी हो गई है तो उसका परिणाम किसी न किसी रूप में राष्ट्र को ही भुगतना पड़ता है।

तत्कालीन प्रधानमंत्री चौधरी चरणसिंह ने कहा था,—"हमारा लक्ष्य होगा कि गांव में छोटे-छोटे रोजगार कायम किए जाएं। हमारी बहू-बेटियां, जो आज सड़कों पर पत्थर कूटती हैं, इनके बाप दादे क्या करते थे, मालूम करो। वे आजादी से पूर्व कोई न कोई रोजगार, कोई न कोई दस्तकारी करते थे। वे दस्ताकारियां अंग्रेजों के जमाने में खत्म हो गईं और हमारी भी इस सिलसिले में गफलत रही है।"

यह गफलत अब हम सभी को दूर करनी होगी। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए सरकार के पास योजनाओं की कमी नहीं है। अगर कमी है तो ईमानदारी से कार्य करने वालों की। आजादी के बाद से देश में अनगिनत योजनाएं बनी हैं। उन पर कार्य भी हुआ है, पर जरूरत है उन पर व्यवस्थित ढंग से कार्य करने की।

15 मई, 1989 को तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने पंचायती राज से सम्बन्धित 64वां संविधान संशोधन विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया था। इस अवसर पर अपने भाषण के दौरान उन्होंने स्वीकार किया कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का प्रयोग सफलता से क्रियान्वित किया गया है। इसमें 30 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए तथा अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए उनकी आबादी के अनुपात में सीटों के आरक्षण का प्रावधान है। कुल मिलाकर 64वां संशोधन ग्रामीण विकास की ओर संकेत करता है। पंचायती राज की शुरू से ही आवश्यकता रही है। जरूरत है उसे अधिक से अधिक मजबूत बनाना। पर इनके साथ-साथ ग्रामीण विकास के लिए पुलिस व्यवस्था और न्याय व्यवस्था को सुसंगठित करने की आवश्यकता है। संविधान में प्रतिष्ठित मूल अधिकार भारतीय जनता के लोकतांत्रिक संघर्ष के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं। भूमि सुधार कानून में बहुत-सी खामियां रह जाती हैं, जो भूमि हदबंदी से अधिक भूमि के अधिग्रहण को संभव नहीं होने देते। भूमि अधिकार से सम्बन्धित मुकदमेबाजी, गरीबों को कानून के अंतर्गत अपना अधिकार प्राप्त करने से रोकती है, क्योंकि उनके पास अदालती कार्रवाई के लिए कोई साधन नहीं होते। संविधान की गारंटी के बावजूद दलित आदिवासियों की जमीन सामंतों के कब्जे में पहुंचती रही है। वैसे सरकार की ओर से गरीब, दलित-पिछड़ों के लिए मुफ्त कानूनी सेवा कभी की आरंभ कर दी गई है, पर न्याय तलाश करने में दलित-आदिवासी को फिर भी कठिनाई महसूस होती है। पुलिस के बंदोबस्त में और अधिक सुधार की जरूरत है।

विकास के हर पहलू से गांवों को हमें आत्म-निर्भर बनाना होगा। गांव कोई ईंट-गारे का बड़ा मकान नहीं जिसकी तुरंत मरम्मत कर दी जाए। गांव तो सृजन की एक धारा है। जिसमें अगर गति रहेगी तो सृजन होता रहेगा वरना प्रगति के सभी रास्ते बंद होते चले जाएंगे। ग्रामीण-विकास का अर्थ पूरे राष्ट्र का विकास है। एक भी गांव में अगर विकास की गति रुक गई है या धीमी हो गई है तो उसका परिणाम किसी न किसी रूप में राष्ट्र को ही भुगतना पड़ता है।

अंततः कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास परस्पर सहयोग से ही हो सकता है। केवल ढेर सारी योजनाओं से कुछ होने वाला नहीं है, जब तक उन पर ईमानदारी से अमल न हो।

बी-जी-5-ए/30-बी,
पश्चिम विहार,
नई दिल्ली-63

ग्रामीण विकास की समस्याएं

डा. विश्वमित्र उपाध्याय

मुगल शासन काल तक भारत में किसान अपनी जमीन का प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वामी था। बादशाहों ने भी अपने किले बनाने या व्यक्तिगत उपयोग के लिए जमीनें खरीदीं, न कि उस पर जबरदस्ती कब्जा किया। अंग्रेजों ने जब मुगल साम्राज्य के अवशेषों पर अपने साम्राज्य की स्थापना की तो भूमि की आय से सरकारी खजाना भरने की नीति अपनाई और उन्होंने भूमि व्यवस्था को परिवर्तित कर दिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने प्रारंभ से ही भू-राजस्व में लगातार कमरतोड़ वृद्धि करने की नीति अपनाई। ब्रिटिश शासन काल में जमींदारों का एक ऐसा वर्ग खड़ा कर दिया गया जो किसानों की आर्थिक दशा और प्राकृतिक कोप की परवाह न करके उनसे जबरदस्ती भू-राजस्व वसूलता था।

लेखक ने अपने इस लेख में यह बताया है कि किस प्रकार स्वाधीनता आंदोलनों के दौरान देशभक्त नेताओं ने किसानों की दशा सुधारने के लिए आंदोलन चलाए, बिचौलियों को समाप्त करने की मांग की और सरकारी जमीन को भूमिहीनों में वितरित कराने के लिए आंदोलन किए तथा जेल गए। अब भी कहीं-कहीं जमीन का वास्तविक मालिक जोतने वाला नहीं है। यदि गांवों और किसानों की दशा सुधारनी है तो ब्रिटिश शासन के समय से चली आ रही इन गड़बड़ियों को दूर करना होगा तथा किसानों को जमीन के साथ-साथ खेती-बाड़ी करने के लिए आवश्यक आर्थिक मदद भी देनी होगी।

भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या अब भी गांवों में बसती है। स्वाधीनता के पश्चात् हमारे देश के शहरों में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों में अनेक बड़े-बड़े उद्योग खड़े हो गए हैं, अनेक शैक्षणिक व सांस्कृतिक संस्थान कार्य कर रहे हैं परन्तु आज भी भारत की अर्थव्यवस्था, व्यापार तथा आम जन-जीवन पर कृषि और ग्रामोद्योग का बहुत प्रभाव पड़ता है। आज भी सकल ग्रामीण उत्पादों पर ही हमारी अर्थव्यवस्था की प्रगति निर्भर है। ऐसी स्थिति में हम गांवों के आर्थिक-सामाजिक विकास और किसानों तथा ग्रामीण उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों के हितों की उपेक्षा नहीं कर सकते। गांवों की जनता को ध्यान में रख कर हमें राष्ट्रीय योजनाएं बनानी होंगी तथा ग्रामीण जनता की चौतरफा प्रगति को ही अपने चिन्तन व चिन्ता का केन्द्र बिन्दु बनाना होगा।

ब्रिटिश शासन काल में किसानों का निरन्तर निर्मम शोषण किया जाता रहा। लार्ड कार्नवालिस के समय से ही अंग्रेजों ने भारत की भूमि व्यवस्था तथा कृषि जन्य अर्थव्यवस्था में अनेक दूरगामी परिवर्तन किए। उन्नीसवीं सदी के अंत तक भारत ब्रिटिश उत्पादकों का बड़ा बाजार, कच्चे माल और खाद्यान्नों का एक बड़ा स्रोत और ब्रिटिश पूंजी के निवेश का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया था। अंग्रेजों ने भारत की कृषिजन्य अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव पैदा किया, परन्तु इसका लक्ष्य उत्पादन को बढ़ाकर भारतीय कृषि का सुधार या उससे सम्बद्ध लोगों की सुख-सुविधा और सम्पन्नता सुनिश्चित करना नहीं था। इसका उद्देश्य कृषि से उपलब्ध सम्पूर्ण राजस्व को स्वयं प्राप्त करना और भारतीय कृषि को ऐसी स्थिति में ला देना था जिससे वह विवश होकर उपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में एक दबी हुई और निश्चित भूमिका निभा सके।

ब्रिटिश शासन काल से पहले भारत में जो परम्परागत भूमि व्यवस्था थी उसमें जमीन पर किसानों का अधिकार था और किसान सरकार को फसल का केवल एक निश्चित भाग दे देता था। भारत की धरती पर किसानों और जनजातियों का स्वामित्व था। इसमें जमीन ग्रामीण समाज, कबीला या गांव में बसे बिरादरी के अन्य लोगों की मिल्कियत थी, जमीन कभी राजा की सम्पत्ति नहीं समझी गई। चाहे सामंती व्यवस्था हो या मध्यकालीन शाही योजना, जमीन पर किसानों को छोड़कर कभी किसी अन्य का स्वामित्व नहीं रहा।

'राजा का हिस्सा' अथवा राजा को दी जाने वाली मात्रा हिन्दु राजाओं के शासनकाल में छठे भाग से लेकर बारहवें भाग तक हुआ करती थी। युद्ध काल में यह राशि उपज की चौथाई की जा सकती थी। मनु ने अपनी स्मृति में लिखा था, "जिस प्रकार जोंक, बछड़ी और मधुमक्खी अपना आहार ग्रहण करती है, उसी प्रकार राजा को अपने राज्य से मामूली कर ग्रहण करना चाहिए। राजा को मवेशियों और स्वर्ण मुद्रा की बढ़ी हुई राशि का पांचवां हिस्सा तथा फसल का आठवां, छठा या बारहवां अंश प्राप्त करना चाहिए।" 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार

मुगल शासन में बादशाह या रैयत के बीच कोई बिचौलिया नहीं था। मुगल भू-राजस्व व्यवस्था के केन्द्र में रैयत ही थी। मुगल शासन काल तक भारत में किसान ही अपनी जमीन का प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वामी था। अकबर, शाहजहां, औरंगजेब और आलमगीर द्वितीय ने अपने व्यक्तिगत उपयोग या किले बनाने के लिए जमीन खरीदी थी, न कि उस पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया था।

अंग्रेजों ने जब मुगल साम्राज्य के अवशेषों पर अपने साम्राज्य की स्थापना की तब उन्होंने भूमि की आय से सरकारी कोष को समृद्ध करने की पुरानी पद्धति भी अपना ली और इसके साथ-साथ उन्होंने इस प्रणाली का स्वरूप बदल दिया। ऐसा करके उन्होंने भारत की भूमि व्यवस्था को रूपांतरित कर दिया जिस समय उन्होंने शासन संभाला उस समय भारत का पुराना शासन प्रबंध अस्त-व्यस्त हो चुका था और वह पतन की दिशा में बढ़ रहा था। फिर भी गांव की सामूहिक व्यवस्था और भूमि के साथ उसका परम्परागत सम्बंध उस समय तक टूटा नहीं था। नजराने के रूप में किसान द्वारा राज्य को जो कुछ देना था वह वार्षिक उपज का एक भाग ही होता था। उस समय तक उपज चाहे कम हो या अधिक, प्रतिवर्ष एक निश्चित जोत के आधार पर निश्चित भू-राजस्व देने की प्रणाली शुरू नहीं हुई थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने प्रारम्भ से ही भू-राजस्व में लगातार कमरतोड़ वृद्धि करने की नीति अपनाई। बंगाल में मुगल शासकों के प्रतिनिधियों के शासन के अंतिम वर्ष अर्थात सन् 1764-65 में वहां भू-राजस्व के रूप में 8,18,000 पौंड की राशि वसूल की गई परन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा बंगाल का वित्तीय प्रशासन अपने हाथ में लिए जाने के लिए पहले वर्ष अर्थात सन् 1765-66 में यह राशि बढ़ा कर 14,70,000 पौंड कर दी गई। सन् 1793 में जब बंगाल में स्थाई बंदोबस्त लागू किया गया तो यह राशि 30,91,000 पौंड हो चुकी थी।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इंग्लैंड के विकासमान उद्योगों में तैयार कच्चा माल भारत में ऊंचे मूल्यों पर बिकवाने के लिए यहां के बुनकरों तथा दस्तकारों को कंगाल कर दिया। यही नहीं बल्कि गांवों की परम्परागत पंचायत व्यवस्था भी छिन्न-भिन्न कर दी। इससे गांवों की खुशहाली व स्वायत्तता ज़ाती रही। भारत की इस लूट से प्राप्त धन को ब्रिटिश उद्योगों में लगाया गया। वास्तव में यह धन ब्रिटिश उद्योगों को बहुराष्ट्रीय उद्योगों के रूप में रूपांतरित करने में बहुत सहायक हुआ।

कम्पनी शासन में भूमि व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन किया गया। इस दिशा में पहला कदम भू-राजस्व निर्धारण की प्रणाली और भूमि के स्वामित्व का पंजीकरण था, जिसमें ब्रिटेन की आर्थिक और कानूनी धारणाओं ने भारत की परम्परागत आर्थिक संस्थाओं और धारणाओं को हटा कर उनका स्थान ले लिया। पहले, परम्परा के अनुसार वर्ष भर की उपज का अंश 'राजा का भाग' होता था जो संयुक्त स्वामित्व वाले किसानों या गांव का स्वयं प्रबंध करने वाले ग्रामीण समुदाय द्वारा नजराने या कर के रूप में शासक को दिया जाता था। 'राजा का भाग' भी वार्षिक उपज के घटने-बढ़ने के साथ घटता-बढ़ता रहता था। अंग्रेजों ने इस परम्परा को समाप्त कर भू-राजस्व के रूप में एक निश्चित राशि लेनी शुरू कर दी। यह राशि भूमि के हिसाब से तय कर दी जाती थी। वर्ष में फसल कम हुई या अधिक, यह निर्धारित राशि देनी ही पड़ती थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन् 1794 में एक नियम बना कर यह व्यवस्था की कि रैयत के लिए जमींदारों से कृषि भूमि का पट्टा लेना आवश्यक है। इस पट्टे में भू-राजस्व की दरें निश्चित रहती थीं। इस कानून द्वारा रैयत को भूमि के वास्तविक मालिक के बजाय भू-राजस्व देने वाला काश्तकार बना दिया गया।

इस रूपांतरण से अंग्रेज विजेताओं ने वस्तुतः भूमि पर पूरा अधिकार कर लिया और किसानों को ऐसे काश्तकारों का दर्जा दे दिया, जिन्हें लगान का भुगतान न करने पर उनकी जमीन से बेदखल किया जा सके या उस जमीन को अंग्रेजों द्वारा मनोनीत किए गए जमींदार के नाम लिखा जा सके। महत्वपूर्ण बात यह थी कि ये बिचौलिये जमींदार सरकार की इच्छा से ही जमीन के मालिक थे। लगान न देने पर उन्हें भी जमीन से बेदखल किया जा सकता था।

इस प्रकार ब्रिटिश शासन काल में जमींदारों का एक ऐसा वर्ग खड़ा कर दिया गया जो किसानों की आर्थिक दशा तथा बाढ़ व सूखे की परवाह न करके उनको मार-पीट कर भू-राजस्व वसूल करता था। ये जमींदार काफी समृद्ध हो गए। ये सरकार के हमेशा समर्थक व जनता के विरोधी बने रहे।

भारत के स्वाधीनता आंदोलन के नेताओं ने अंग्रेजों द्वारा लादी गई इस शोषक व्यवस्था को समाप्त करने की मांग की। उन्होंने यह संकल्प किया कि देश की स्वाधीनता के बाद यह शोषक व्यवस्था समाप्त कर दी जाएगी और किसानों से जो जमीनें कर न देने के कारण छीन ली गई हैं उन्हें वापस दिया जाएगा। इसके लिए भूमि सुधार का संकल्प किया गया। किसानों से कहा गया कि बड़े सामंतों, बड़े भू-स्वामियों तथा सरकार के कब्जे में जो लाखों एकड़ भूमि पड़ी हुई है उसे किसानों में बांटा जाएगा।

स्वाधीनता आंदोलन के प्रारम्भ से ही हमारे राष्ट्रीय नेताओं दादा भाई नौरोजी, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल और सुभाष

चन्द्र बोस आदि ने किसानों पर बढ़ती हुई मालगुजारी के विरुद्ध आंदोलन किए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, कम्युनिस्ट पार्टी तथा कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने भूमि सुधार करके किसानों को जमीन देने तथा परम्परागत पंचायत व्यवस्था को पुनर्जीवित करने की मांग की। वास्तव में हमारा राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन ग्रामोन्मुख था और किसानों की दशा सुधारने के लिए चिंतित था। सच्चाई तो यह है कि किसानों के शामिल होने तथा उनकी कुर्बानी के बाद ही हमारा स्वाधीनता आंदोलन व्यापक व असरदार बना था। हमारे स्वाधीनता सेनानियों ने भारत की कृषक जनता, खेत मजदूरों तथा कारीगरों की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति और आत्म-निर्भरता का सपना देखा था।

हमें भारत की समूची अर्थव्यवस्था में मूलगामी परिवर्तन करना होगा। आज आवश्यकता यह है कि हम कृषि क्षेत्र की उपलब्धियों तथा कमजोरियों और असफलताओं पर गम्भीरतापूर्वक पुनर्विचार करें और उन खामियों को दूर करें जिनके कारण गरीब किसानों और खेत मजदूरों की दशा नहीं सुधरी है। वे आज भी गरीबी, बेरोजगारी, निरक्षरता तथा असह्य बीमारियों के बोझ ढो रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमें गांवों की दशा सुधारने के लिए ठोस व प्रभावी कार्यक्रम बनाने होंगे और कृषि क्षेत्र पर अधिक धन खर्च करना होगा।

स्वाधीनता के बाद किसानों की दशा सुधारने के लिए कुछ ठोस प्रयास किए गए। अनेक राज्यों में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया। स्वर्गीय प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने पंचायत राज व्यवस्था को पुनर्जीवित करवाया और गांवों में सामुदायिक विकास केन्द्रों की स्थापना की गई। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में गांवों के सामुदायिक विकास तथा ग्रामीण क्षेत्र में बिजली, पानी, आवास, शिक्षा, ग्रामोद्योग के लिए करोड़ों रुपयों की राशि के प्रावधान किए गए। इससे गांवों में कुछ सुधार हुआ और भारत अनाज के मामले में आत्मनिर्भर बन गया। हम इन उपलब्धियों पर संतोष प्रकट कर सकते हैं।

स्वर्गीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 15 अक्तूबर 1989 को अलीगढ़ में आम सभा को संबोधित करते हुए पंचायती राज और नगर पालिका विधेयकों के बारे में चिंता व्यक्त करते हुए कहा था कि "ये विधेयक आवश्यक है क्योंकि सरकारी योजनाओं के लाभ आम आदमी तक नहीं पहुंचते। योजनाओं के कुल मूल्य का केवल 15 प्रतिशत भाग ही वास्तविक लाभार्थियों तक पहुंच पाता है और शेष राशि लालफीताशाही के कारण बर्बाद हो जाती है।"

वास्तविकता यह है कि सरकारी खजाने से गांवों पर धन खर्च किया गया, भूमि सुधार कानून बनाए भी गए, पंचायतें बनी परन्तु छोटे किसान व खेत मजदूर वंचित व विपन्न ही रहे। उन्हें कृषि के लिए अपेक्षित भूमि नहीं मिली और ग्राम पंचायतें तथा सामुदायिक विकास केन्द्र तथा न्याय पंचायतें दलगत ग्रामीण राजनीति का अखाड़ा बनकर रह गईं। हां ठेकेदारों, बड़े भू-स्वामियों, सस्ते राजनेताओं तथा भ्रष्ट अधिकारियों का एक सम्पन्न वर्ग अवश्य बन गया। निःसंदेह इसमें गांधी और नेहरू का 'ग्रामीण स्वराज्य' का सपना अभी पूरा नहीं हुआ।

हमें भारत की समूची अर्थव्यवस्था में मूलगामी परिवर्तन करना होगा। आज आवश्यकता यह है कि हम कृषि क्षेत्र की उपलब्धियों तथा कमजोरियों और असफलताओं पर गम्भीरतापूर्वक पुनर्विचार करें और उन खामियों को दूर करें जिनके कारण गरीब किसानों और खेत मजदूरों की दशा नहीं सुधरी है। वे आज भी गरीबी, बेरोजगारी, निरक्षरता तथा असह्य बीमारियों के बोझ ढो रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमें गांवों की दशा सुधारने के लिए ठोस व प्रभावी कार्यक्रम बनाने होंगे और कृषि क्षेत्र पर अधिक धन खर्च करना होगा।

यह प्रसन्नता की बात है कि प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव ने भी स्वर्गीय श्री राजीव गांधी की तरह ही चिंता प्रकट करते हुए 22 जून 1991 को अपने पहले राष्ट्रीय प्रसारण में कहा था कि "देहात के गरीबों पर विशेष ध्यान हमेशा सरकार देती आई है और आज और अधिक देना चाहती है। जमीन पर जो दबाव है आज मतलब जमीन पर या खेती पर आजीविका पाने वाले लोगों की जो एक बड़ी संख्या है उसे कम करने की आवश्यकता है, और उसके लिए रोजगार के साधन भी मुहैया करने हैं। उद्योग वहां चलाने हैं और जो भी खर्च इस पर किया जाएगा उसका पूरा-पूरा लाभ जिनको मिलना चाहिए, जिनके लिए खर्च किया जा रहा है उनको अवश्य मिले, बीच में कहीं इधर-उधर जाया न हो। इसको सुनिश्चित करना है और ये हम अवश्य करेंगे।"

कृषक जनता को नई सरकार से बहुत आशाएं हैं। वह चाहती है कि ग्रामीण क्षेत्रों पर हावी शोषक तत्व व मुनाफाखोर बिचौलिए समाप्त किए जाएं। इसके लिए यह आवश्यक है कि नई कृषि नीति तैयार की जाए। इस कृषि नीति व नए ग्रामीण-विकास कार्यक्रम में सर्वाधिक महत्व वास्तविक भूमि सुधार को दिया जाए और बड़े भू-स्वामियों व सरकार के पास पड़ी अतिरिक्त कृषि योग्य भूमि खेत मजदूरों व वास्तविक किसानों को दी जाए। इन लोगों को नए क्षेत्रों में कृषि कार्य के लिए धन तथा उन्नत किस्म के बीजों, उर्वरक आदि की व्यवस्था की जाए। यदि ऐसा किया गया तो बहुत कम समय में

भारत में वास्तविक ग्रामीण विकास हो जाएगा और गरीब ग्रामीण जनता के घरों में प्रकाश तथा हृदय में आशा की किरणें फूट पड़ेंगी।

स्वर्गीय राजीव गांधी ने पंचायत व्यवस्था को मजबूत करने तथा असरदार बनाने पर जोर दिया था। हमारी पंचायतें दलगत तथा जातीय राजनीति के शिकंजों में कसी हुई हैं। उन्हें सही अर्थों में जनतांत्रिक बनाने के लिए सरकार व जनता के स्तरों पर नवजागरण अभियान चलाना होगा। योजनाओं की निर्माण पद्धति तथा उनके स्वरूप में आमूल परिवर्तन करके पंचायतों को धन एकत्र करने तथा उसे खर्च करने का अधिकार देना होगा।

जवाहर लाल नेहरू ने कहा था–''पंचायतों व ग्रामीण समुदाय को अपने कार्यक्रम स्वयं बनाने चाहिए। अब हम केवल ऊपर से कार्य नहीं कर सकते क्योंकि हमें लाखों लोगों का सहयोग लेकर उन्हें संगठित करना होगा और उन्हें बड़ी परियोजनाओं का सहभागी व स्वामी बनाना होगा।''

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को ईमानदार व निष्ठावान अधिकारियों व कर्मचारियों की मदद से ही पूरा किया जा सकता है परन्तु अब तक का अनुभव यह है कि जिला तथा खंड स्तर पर ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में कार्यरत लोग या तो पूरी निष्ठा से काम नहीं करते या उन्हें ग्रामीण परिस्थितियों की सही जानकारी नहीं होती।

हमें ग्रामीण जनता को सही मायनों में योजनाएं बनाने व उन्हें क्रियान्वित करने की प्रक्रियाओं में मुख्य भूमिका देनी होगी। यदि निष्ठापूर्वक ऐसा किया गया और पंचायतों के हाथों में सीधे धन दिया गया तो पंद्रह प्रतिशत वाली चिंताजनक स्थिति बदल जाएगी। फिर 85 प्रतिशत धन ग्रामीण विकास पर व्यय होने लगेगा।

ग्रामीण विकास के लिए गांवों में बेरोजगारी की समस्या को हल करना जरूरी है। स्वर्गीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने गांवों की बेरोजगारी दूर करने के लिए जवाहर रोजगार योजना प्रारम्भ की थी। इस योजना के अंतर्गत गरीबी रेखा के नीचे रह रहे 440 लाख ग्रामीण परिवारों को सबसे पहले रोजगार उपलब्ध कराने का संकल्प किया गया था। इसके लिए प्रारम्भ में 21 अरब रुपये की राशि निर्धारित की गई थी। वास्तव में यह बहुत अच्छी योजना है। इस मद में अधिक धन तथा साधन जुटाने होंगे और इनका विस्तार करना होगा।

महात्मा गांधी ने ग्रामोद्योगों के विकास के लिए ठोस कार्यक्रम चलाए थे। उससे आज भी लाखों व्यक्तियों को रोजगार मिला हुआ है। ग्रामोद्योगों का फैलाव तथा विकास करने और उन्हें लाभप्रद बनाने के लिए नए सिरे से ठोस प्रयास करने होंगे। हम नई टेक्नॉलोजी तथा विज्ञान के साधनों को ग्रामोद्योगों में लगा कर ग्रामीण जनता को स्वावलंबी व सुखी बना सकते हैं। ग्रामीण अंचलों में बिजली उत्पादन की कम लागत वाली छोटी-छोटी परियोजनाओं का जाल बिछाकर ग्रामोद्योगों को बढ़ावा दिया जा सकता है।

हमारे गांवों में शिक्षा सुविधाएं अब भी पर्याप्त नहीं हैं। अनेक प्राथमिक विद्यालयों की इमारतें भी नहीं हैं। छात्रों को बैठने के लिए कुर्सियां तो दूर टाट भी नहीं हैं। एक ओर का यह दर्दनाक दृश्य और दूसरी ओर महानगरों में फैलते बहुमंजिली इमारतों तथा पब्लिक स्कूलों के जाल और ठाट-बाट तथा अपव्यय के रंगीन परिदृश्य। क्या इस स्थिति में आमूल परिवर्तन करने का साहस हम कर सकेंगे यदि हमारा ऐसा संकल्प है तो साधनों को भी विकेन्द्रित करना होगा और उन्हें गांवों की ओर मोड़ना होगा। हमें ग्रामीण-चिकित्सा व्यवस्था में भी व्यापक सुधार लाना होगा।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को ईमानदार व निष्ठावान अधिकारियों व कर्मचारियों की मदद से ही पूरा किया जा सकता है परन्तु अब तक का अनुभव यह है कि जिला तथा खंड स्तर पर ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में कार्यरत लोग या तो पूरी निष्ठा से काम नहीं करते या उन्हें ग्रामीण परिस्थितियों की सही जानकारी नहीं होती। कुछ अधिकारी ग्रामीण क्षेत्रों की कठिनाइयों के कारण वहां काम करना नहीं चाहते और अपने तबादले करवाने पर अधिक ध्यान देते हैं। अतएव यह भी आवश्यक है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को लागू करने के तंत्र में परिवर्तन करके उसे सुचारु व उत्तरदायी बनाया जाए।

यह सब करते हुए इस बात का ध्यान रखना होगा कि हमारे प्यारे गांवों का पर्यावरण न बिगड़े और उनकी परम्परागत लोक-संस्कृति, लोक-जीवन, लोक-साहित्य तथा लोक-कलाओं को सुरक्षित रखा जाए और उनके विकास के मार्ग में खड़े अवरोध दूर किए जाएं। यदि हम गांवों के सहज, स्वाभाविक तथा अलमस्त लोक जीवन को अक्षुण्य बनाए रखने में सफल होंगे और श्रमजीवी किसानों, खेत मजदूरों तथा दस्तकारों की भूख व गरीबी को मिटाने के लिए नए संकल्प व साहस के साथ आगे बढ़ेंगे तो गांधी, नेहरू, सुभाष और भगत सिंह के सपने पूरे हो जाएंगे फिर हम नए भारत में रहेंगे।

**बी-55, गुलमोहर पार्क
नई दिल्ली-110049**

अप्रासंगिक रविवारीय ड्राइविंग...

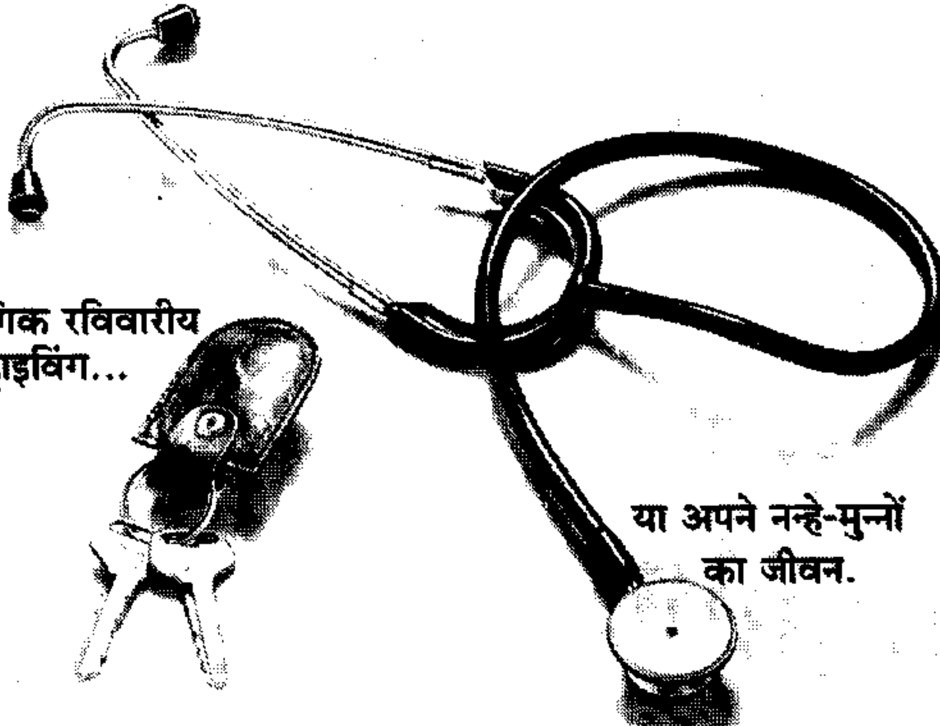

या अपने नन्हे-मुन्नों का जीवन.

फैसला आपके हाथ में.

निरापद सी लगनेवाली मौज मस्ती वाली ड्राइविंग दरअसल हमारे बच्चों के भविष्य के लिये घातक है. देखिए ये कुछ चौंकानेवाले तथ्य...

इस साल देश को सिर्फ ईंधन आयात पर ही 10,000 करोड़ रूपए से अधिक खर्च करने पड़ेंगे जो सातवीं योजना (1985-90) के दौरान स्वास्थ्य और परिवार कल्याण पर खर्च की गई राशि से डेढ़ गुना से भी अधिक है.

अलावा इसके, पेट्रोलियम आयात पर बहुमूल्य विदेशी मुद्रा खर्च करना बहुत महँगा पड़ रहा है. सच पूछिये तो यही समय है हमारी अपनी प्राथमिकताओं को चुनने का. निश्चय ही, सप्ताहांत की ड्राइविंग से अधिक महत्वपूर्ण है अपने बच्चों का भविष्य सँवारना. ईंधन का संयमपूर्ण और सही उपयोग ही आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है.

ज़रा सोचिए...

शुरू में, सप्ताह में अगर एक दिन हम अपना वाहन न चलाएँ तो हमारा यह नन्हा सा त्याग ही हमारे देश को करोड़ों रूपयों की ईंधन की बचत करा देगा.

इसलिए, अत्यावश्यक होने पर ही वाहन चलाएँ. कम दूरी चलकर तय करें. ईंधन बचत का इससे बेहतर तरीका और क्या हो सकता है भला! यही नहीं, धेला भर भी खर्च किए बगैर हम अपना वजन भी घटा सकते हैं. यानी "हर्र लगे न फिटकरी, रंग चोखा आए". ड्राइविंग करते वक्त भी हम अधिक माइलेज ले सकते हैं, अगर हम वाहन ठीक तरह से रखें और ढंग से चलाएँ.

टैक्सी शेयर, कार-पूल, बस और ट्रेन से सफर... यानी ईंधन खपत घटाने के आसान और व्यावहारिक तरीके.

वास्तव में ईंधन बचत की आदत घर से ही शुरू की जा सकती है. तीली जलाने के बाद ही रसोई गैस ऑन करें; लौ भी धीमी रखें.

यदि आपके व्यवसाय में पेट्रोलियम उत्पाद का उपयोग होता हो तो ऊर्जा-सक्षम तकनीक, उपकरण प्रचालन और अनुरक्षण का प्रयोग करें और समय समय पर ऊर्जा लेखा जोखा भी रखें.

ईंधन संकट पर विजय पाने के लिए हमारे देश को, हमारे इस नन्हे से त्याग की ज़रूरत है. लेकिन क्यों करें हम ऐसा कहे जाने का इंतज़ार? आइए, मिलकर काम करें. राष्ट्र की यह पुकार इसकी अपनी आर्थिक स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता के साथ-साथ हमारे अपने हित में भी तो है!

इंडियन ऑयल

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड

Sista s-100-218/90 HN I.

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में जवाबदेही

सुबह सिंह यादव

लेखक के अनुसार ग्रामीण व्यक्तियों के लिए उपयुक्त सुविधाओं का अभाव पाया जाता है। सरकार को यदि गांवों में इन सुविधाओं को पूर्णरूप से लागू करना है तो यह अति आवश्यक है कि इन लोगों के रहन-सहन एवं उनकी भाषा से वे अधिकारी परिचित हों जिस कार्य क्षेत्र में ये अधिकारी कार्य कर रहे हैं तभी वे उन लोगों को अपेक्षित सुविधाओं को उनके मनचाहे रूप में दिलवा सकते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो गलतियां करने की संभावना बढ़ जाती है। सरकार ग्रामीण सामाजिक न्याय की ओर प्रगतिशील हो एवं उनका दृष्टिकोण मानवीय आधार पर हो। इसके लिए सरकार को चाहिए कि अधिकारियों का स्थाई कैडर बनाया जाए ताकि गांव में रह रहे गरीबी की रेखा से नीचे लोगों की अपेक्षाओं को सुचारू रूप से लागू कर सकें। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि जो गांव दूरस्थ क्षेत्र में पड़ते हैं उनके लिए अधिकारियों की तकनीक एवं परिवहन की समस्याओं को भी हल किया जाए ताकि वे अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकें। जहां तक संभव हो ग्रामीण पृष्ठभूमि एवं अभिकरण वाले अधिकारी को ही वहां लाना चाहिए ताकि सामाजिक जीवन संवेदनशीलता से ऊपर उठ सके।

1970 के दशक में ग्रामीण भारत के त्वरित एवं सम्यक् विकास हेतु विकास की पृथक रणनीति तथा अन्य सम्बद्ध पहलुओं के व्यापक परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण अंचल के परिवर्तित सामाजिकार्थिक पर्यावरण, भौतिक साधन सघनता, जनप्रतिनिधियों की सहभागिता, आधारिक संरचना, कार्यक्रमों के प्रबंध और पुनर्निवेश पर अभिवृद्धित ध्यान केन्द्रित करने के न्यूनाधिक प्रयास हुए, लेकिन इस दशक से ही विभिन्न गरीबी उन्मूलक तथा रोजगार सृजक सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों पर प्रचारात्मक या मूल्यांकन अथवा समीक्षात्मक साहित्य की विपुलता में प्रतिबिम्बित होते ग्रामीण प्रगति के समानान्तर ग्रामीण विकास साहित्य की गरीबी इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि इन सरकारी कार्यक्रमों मे संलग्न अधिकारियों व व्यक्तियों की जवाबदेहता पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया। इतने महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में केवल आंकड़ा संजाल व गुणावगुण जैसी परम्परागत शैली के आधार पर कोई ठोस परिणाम प्राप्त नहीं किए जा सकते हैं। हमें इन कार्यक्रमों की विफलता की खोज जवाबदेहता के ढांचे में करनी होगी।

विद्यमान व्यवस्था

यदि प्रभावी परिचालनात्मकता के दृष्टिकोण से देखा जाए तो विदित होता है कि देश में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के समन्वय, प्रबोधन तथा मूल्यांकन के लिए जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों की स्थापना की गई है तथापि अब तक के साक्ष्यों से पता चलता है कि इन कार्यों के दक्ष निर्वाह में सफल नहीं हो पाए, चाहे इसका कारण अभिकरणों से परियोजना अधिकारियों का सामान्य प्रशासन से आने के कारण विलगाव अथवा उदासीनता ही क्यों न हो। वस्तुत: यह बड़ा ज्वलंत प्रश्न है कि योजनाबद्ध विकास के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन पर बड़ी मात्रा में धनराशि आबंटित करने के बाद भी इनका वांछित परिणाम सामने नहीं आया। उदाहरण के तौर पर यदि हम केवल समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को लें तो पता चलता है कि सातवीं योजना में 5372.53 करोड़ रुपये का ऋण वितरित हुआ तथा 181.78 लाख परिवारों को सहायता प्रदान की गई, लेकिन इसके बावजूद भी अपेक्षित मात्रा में सामुदायिक उत्पादक परिसम्पत्ति का सृजन नहीं हुआ। ये सब तथ्य इस बात के द्योतक हैं कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को लागू करने वाले लोग इन विफलताओं के लिए काफी हद तक उत्तरदायी हैं चूंकि वर्तमान प्रशासकीय ढांचे में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिससे इन लोगों के कार्यों का समुचित मूल्यांकन किया जा सके। अत: अभी तक इनकी जवाबदेहता निर्धारित नहीं हो सकी। शायद यही कारण था कि पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री राजीव गांधी ने क्षुब्ध होकर कहा था कि

"योजनाओं के कुल मूल्य का केवल 15 प्रतिशत ही लाभार्थियों तक पहुंच पाता है और शेष राशि लालफीताशाही के कारण बर्बाद हो जाता है।"

परिवर्तन आवश्यक

अब प्रश्न यह है कि ग्रामीण विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए परिवर्तन की आवश्यकता क्यों प्रतीत हो रही है। इन प्रश्नों का सम्बंध मूलतः ग्रामीण विकास प्रशासन की विकेन्द्रित संरचना से अधिक है। इस संरचना में जिला व खण्ड इकाइयां महत्वपूर्ण हैं जहां पर लोग या तो हृदय के अन्तःस्थल से कार्य के प्रति समर्पित नहीं होते या उन्हें ग्रामीण जनजीवन की अभीष्ट जानकारी नहीं होती। अधिकांश लोग शिक्षा, स्वास्थ्य व शहरी जीवन की प्रगतिशील प्रवृत्तियों के बहाने अधिक सुविधाजनक स्थान को ही अपना कार्य क्षेत्र बनाने के लिए व्यग्र रहते हैं और काम करने में खुद ही बाधक हो जाते हैं। उपरोक्त परिस्थितियों के कारण ही ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को लागू करने में हम किस तरह तंत्र को सुचारु एवं उत्तरदायी बना सकते हैं ताकि जिसके लिए धनराशि खर्च की जा रही है, उसको इसका पूरा-पूरा लाभ मिले।

ग्रामीण विकास का प्रशासकीय ढांचा

देश में एक ऐसा प्रशासकीय प्रारूप विद्यमान है जिसमें क्षेत्र एजेंसियों तथा जिला मुख्यालयों की इकाइयों के मध्य सन्निकट कार्यमूलक संबंध है तथा ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सभी महत्वपूर्ण पहल केन्द्र से होती है और इसके बाद क्रियान्वयन हेतु नीचे के स्तरों पर निर्देशित कर दी जाती है तो भी कार्यों को विकेन्द्रित करने के प्रयास हुए हैं और पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए एजेंसियां अपने स्तर पर कार्यक्रम बना सकती हैं। यद्यपि राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर ग्रामीण विकास का व्यापक ढांचा है लेकिन हमारे विवेचन की विषय वस्तु के रूप में जिला एवं खण्ड स्तरीय ग्रामीण विकास प्रशासन अधिक प्रासंगिक है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की विधिवत शुरुआत के बाद प्रत्येक जिले में 'जिला ग्रामीण विकास अभिकरण' की स्थापना हुई जिसका अध्यक्ष जिलाधीश होता है। उन जिलों में जहां जिला परिषद् का मुख्य कार्यकारी अधिकारी जिलाधीश के समकक्ष पद का होता है, जिला ग्रामीण विकास अभिकरण का अध्यक्ष होगा। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की स्थापना 'रजिस्ट्रेशन आफ सोसायटी एक्ट' के अंतर्गत पंजीकृत सोसायटी के रूप में की जाती है। इसके शासकीय निकाय में जिला कलेक्टर/उपायुक्त (अध्यक्ष), उस जिले के सांसद व विधायक, केन्द्रीय सहकारी बैंक का मुखिया, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का अध्यक्ष, जिला परिषद् का अध्यक्ष अथवा उसका प्रतिनिधि, अग्रणी बैंक अधिकारी, जिला उद्योग केन्द्र का महाप्रबंधक, जिला परिवार कल्याण का प्रभारी अधिकारी, परियोजना अधिकारी, अनुसूचित जाति, वित्त निगम में क्षेत्रीय/जिला अधिकारी, जिला दुग्ध संघ के प्रतिनिधि, कमजोर वर्ग के दो प्रतिनिधि, एक महिला प्रतिनिधि आदि होते हैं। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण का परियोजना निदेशक इसका सदस्य सचिव होता है।

जवाबदेहता को निर्धारित करने के लिए जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के कार्यों एवं कर्मचारी प्रारूप को देखना समान रूप से महत्वपूर्ण है। इसके 6 प्रमुख कार्य हैं :

1. जिला स्तरीय तथा खण्ड स्तरीय एजेंसियों को आधारभूत अंचलों, कार्यक्रम की आवश्यकताओं तथा उनको सौंपे गए कार्य के बारे में सूचित रखना।
2. सर्वेक्षण, परिप्रेक्ष्य योजनाओं, खण्ड की वार्षिक योजनाओं को कार्यान्वित करना, निगरानी रखना तथा अंत में जिला योजना तैयार करना।
3. कार्यक्रम का मूल्यांकन तथा प्रबोधन करना ताकि इसकी प्रभावात्मकता सुनिश्चित हो सके।
4. अन्तः क्षेत्र एवं अन्तः विभागीय व सहयोग प्राप्त करना।
5. कार्यक्रम के अंतर्गत प्राप्त की गई उपलब्धियों का प्रचार करना तथा चालू किए गए कार्यक्रमों के बारे में जानकारी देने के साथ-साथ लोगों में इनके बारे में चेतना जागृत करना।
6. निर्धारित तरीके से राज्य सरकार को सावधिक विवरणियां भेजना।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों के स्टाफ का प्रारूप निम्न प्रकार है :

अध्यक्ष (जिलाधीश/उपायुक्त/जिला मजिस्ट्रेट)

परियोजना अधिकारी

सहायक परियोजना अधिकारी (कृषि)	सहायक परियोजना अधिकारी (पशुपालन)	सहायक परियोजना अधिकारी (प्रबोधन)	सहायक परियोजना अधिकारी (महिला)	सहायक परियोजना अधिकारी

अर्थशास्त्री या सांख्यिकीविद	साख नियोजन अधिकारी	ग्रामीण उद्योग अधिकारी	कार्यालय प्रबंधक (व्यय)
	लेखा स्टाफ		लिपिक स्टाफ
	लेखा अधिकारी (1)		प्रधान लिपिक (1)
	लेखापाल (3)		
अवर लिपिक (4)	आशुलिपिक (1)	चालक (1+2)	चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी (4)

मूल्यांकन अध्ययनों में यह पाया गया कि जिन 'जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों' को परियोजना निर्माण का कार्य सौंपा गया, वे व्यवहार्य परियोजना बनाने में पर्याप्त विशेषज्ञता हासिल नहीं कर पाए चूंकि यह एक निर्णायक क्षेत्र है। अतः इस कारण पूरा कार्यक्रम चौपट हो गया। इसके अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र प्रबोधन का है जो इन अभिकरणों में अधिक तकनीक व विशिष्ट अधिकारियों के दिए बिना संभव नहीं है।

खण्ड स्तर पर प्रशासकीय ढांचा

खण्ड स्तरीय मशीनरी गरीब लोगों के अभिचिन्हन, उनके लिए बैंक योग्य योजनाएं बनाने तथा क्रियान्वयन के प्रबोधन के लिए उत्तरदायी हैं। सभी प्रमुख ग्रामीण विकास कार्यक्रम खण्ड विकास प्रशासन के माध्यम से चलाए जाते हैं, इसलिए इस स्तर पर मशीनरी को चुस्त करना होगा। खण्ड स्तरीय प्रशासकीय ढांचे में, मूल योजना के अनुसार एक खण्ड स्तरीय अधिकारी, आठ विस्तार अधिकारी जिसमें प्रत्येक कृषि, पशुपालन, सहकारिता, पंचायत, ग्रामीण उद्योग, इंजीनियरिंग, सामाजिक शिक्षा तथा स्त्री-बच्चों के कार्यक्रम से हों। इसके अतिरिक्त दस ग्राम सेवक, दो ग्राम सेविका, एक प्रगति सहायक, एक भंडार प्रभारी सह लेखापाल, एक वरिष्ठ लिपिक, एक खंजाची, एक टंकक, एक चालक तथा चार चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी होते हैं। 1981 में इस प्रशासकीय ढांचे की समीक्षा की गई और पाई गई कमियों के तदनुरूप कुछ परिवर्तन हुए जिनमें प्रशिक्षण व भ्रमण (T & V) उल्लेखनीय है।

जवाबदेहता का अभाव

उपरोक्त वर्णित कार्यों व इस हेतु नियत कर्मचारियों के तिरछे विश्लेषण से यह तो निर्विवाद सिद्ध हुआ कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में इन व्यक्तियों की संलग्नता अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुंच पाई। इससे जहां एक ओर राजकीय कोष से भारी मात्रा में धनराशि प्रवाहित की गई, वहां दूसरी ओर उसका परिस्त्रवण प्रभाव (Trickledown effect) क्षीण दिखाई दिया जो न केवल सार्वजनिक व्यय के मितव्ययता सिद्धांत के विरुद्ध है, अपितु 'सामाजिक न्याय युक्त विकास' की मूल भावना को भी आघात पहुंचाता है। यह सत्य है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में उन लोगों को नहीं लगाया गया है जो स्थानीय भौतिक साधनों व संस्कृति से अधिक सुपरिचित हैं, यहां वे लोग कार्य कर रहे हैं जिनकी पृष्ठभूमि एक शहरी संस्कृति से है तथा जिन्हें ग्रामीण जीवन से स्वाभाविक लगाव नहीं है। इन लोगों को ग्रामीण परिस्थितियों से परिचित होने में जितना समय लगता है, उस समय तक ये दूसरे स्थान पर चले जाते हैं।

नीचे के स्तर पर ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता का कार्य बहुत जटिल हो गया है क्योंकि गांव के स्तर पर एक सुव्यवस्थित व समन्वित आयोजन का आज भी अभाव है। अधिकांश पंचायतें अपनी योजनाएं ही तैयार नहीं करती तथा जो भी योजनाएं तैयार होती हैं, वे जिला परिषद् के मार्गदर्शी सिद्धान्तों पर होती हैं जिनमें स्थानीय प्राथमिकताओं, आवश्यकताओं व संभाव्यता का तत्व शामिल नहीं होता, ऐसी स्थिति में ये अधिकारी आनन-फानन में लक्ष्य उन्मुख (Target Oriented) योजना के अनुरूप कार्य करते हैं जिसका कोई व्यवहारिक लाभ नहीं मिल पाता।

जवाबदेहता के अभाव के कारण

प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि इन कार्यक्रमों में संलग्न व्यक्तियों के लिए उपयुक्त सुविधाओं का अभाव पाया जाता है—चाहे इनके कार्य क्षेत्र में स्कूल हों या चिकित्सालय अथवा अन्य सम्बद्ध सुविधाएं, इसलिए इनका अधिकाधिक ध्यान यहां से स्थानांतरण करवाने की ओर ही रहता है। लेकिन अब सरकार गांवों में इन सुविधाओं का जाल बिछाने जा रही है। फिर भी इन सुविधाओं के नाम पर बहाना क्यों लिया जा रहा है सच तो यह है कि इन लोगों की काम करके सीखने की गति बहुत धीमी रही है, इसलिए गरीबी के चंगुल में जितने लोग निकले हैं, उतने ही निर्धन हैं जितने पहले थे। यहां तक कि कुछ लोगों के रहन-सहन के स्तर में तो और भी गिरावट आई है। यह भी देखने में आया है कि ग्रामीण विकास में संलग्न इन लोगों की रुचि शीघ्र से शीघ्र आंकड़े जमा करके उन्हें उच्चाधिकारियों को देने तथा मनचाहे रूप में प्रचारित करने में रही है, जनता की स्थिति में क्या सुधार हुआ है इस पर ध्यान नहीं दिया गया। सरकारी तंत्र द्वारा दिए गए आंकड़ों को भी कभी-कभी संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है। जानकारी का अभाव अथवा इसके अविश्वसनीय होने के कारण संलग्न लोगों की अकुशलता के कई उदाहरण सामने आए हैं। दुख का विषय यह है कि ये कमियां गांव के स्तर पर अधिक दिखाई देती हैं क्योंकि छोटे क्षेत्रों में बड़ी संख्या के नियम लागू होने का क्षेत्र कम होता है। अतः गलतियां करने की संभावना भी कम हो जाती है।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में अधिक निर्धनता के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान दिया जाता है, लेकिन संलग्न लोगों की गरीबी और ग्रामीण विकास के प्रति रवैये में काफी कमियां हैं। यही दृष्टिकोण की बुनियादी कमी रही हैं। अधिकांश नीति-निर्माताओं, अधिकारियों व शहरी लोगों के मस्तिष्क में यह बात घर कर गई है कि गांवों में रहने वाले अधिकांश लोग विवेकशून्य हैं, अंधविश्वासी हैं तथा वे अपने हित के प्रति भी

उदासीन हैं। ग्रामीण विकास के माध्यम से काम संपन्न करने तथा आंकड़े एकत्रित करने में यह बात स्पष्टतः झलकती है। उच्च वर्गीय पूर्वाग्रह ही इस दृष्टिकोण के मूल में होता है। वस्तुतः ये सब ऐसे बंद दिमाग की देन हैं जो ग्रामीण जीवन को या तो बहुत अल्प या बिल्कुल नहीं समझता है। फिर हम इन लोगों के इस रवैये से कौन से विकास की आशा कर सकते हैं, चूंकि विकास कार्यक्रमों में संलग्न ये व्यक्ति गांव के लोगों से अपनापन कायम करने में असफल रहे हैं। इसलिए जो जानकारी सामने आती है, वह भी सतही है। इन दशाओं में ग्रामीण विकास की तकनीकों को शामिल करना कठिन हो जाएगा।

यदि जवाबदेहता के इस कारक को कड़ाई से लागू नहीं किया गया तो कार्यक्रमों के ठोस परिणाम सामने नहीं आ सकते और राष्ट्र द्वारा इन कार्यक्रमों में लगाई गई विशाल पूंजी का अपव्यय हो जाएगा। लेकिन यह भी ध्यान में रखना होगा कि इसे कुछ चरणों में लागू किया जाए तथा प्रत्येक अवस्था में इसके परिणामों की समीक्षा की जाए ताकि उसके उत्साहवर्धक परिणाम को अधिक परिमार्जित करके लागू किया जा सके और यदि कोई कमी है तो उसमें तदनुरूप सुधार लाया जा सके।

जवाबदेहता की तकनीक

सरकारी कार्यक्रम, सामाजिक न्याय की ओर प्रगतिशील कदम होने के साथ-साथ मानवीय कल्याण के धरातल को भी स्पर्श करते हैं। इस दृष्टिकोण से जवाबदेहता निर्धारित करने की 7 तकनीक हो सकती हैं :

1. ग्रामीण विकास का स्थाई केडर बनाकर।
2. कार्यक्रमों की संख्या घटाकर, उनमें अधिक सुदृढ़ समन्वय स्थापित करके।
3. कार्यक्रम में संलग्न अधिकारियों की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट में कार्यक्रम की उपलब्धि को अधिक वजन देकर उसको प्रोन्नति से सह संबंधित करके।
4. जिला स्तर से गांव स्तर तक के कार्यक्रमों में शक्तियों व निष्पादन का स्पष्ट बंटवारा करके।
5. सभी अधिकारियों को समयबद्ध कार्यक्रम में समुचित इन्पुटों द्वारा उचित परिणाम का पैकेज देना।
6. साख की पूर्ति के उपरान्त पर्यवेक्षण करके तथा
7. भ्रष्ट कर्मचारियों को दंडित एवं ईमानदार व कर्तव्य परायण कर्मचारियों को अभिप्रेरित करके।

उपरोक्त सूची को एक बोधोन्मुख सूची तो नहीं कहा जा सकता लेकिन आरंभिक स्तर पर यह एक उपचारात्मक कदम सिद्ध हो सकता है। ऐसा इसलिए आवश्यक है कि अभी तक इस दिशा में किसी भी प्रकार के प्रयासों का अभाव रहा है और दूसरी ओर इन कार्यक्रमों की परस्पर व्यापकता में वृद्धि होती चली गई जिससे समस्या का स्वरूप दिनोंदिन जटिल होता चला गया। उपरोक्त कुछ तकनीकों का औचित्य हम निम्न आधार पर सिद्ध कर सकते हैं :

(अ) परियोजना अधिकारियों का स्थाई कैडर बनाने से ग्रामीण विकास विशेषज्ञों अथवा विज्ञान विशेषज्ञों की नियुक्ति हो सकेगी। इन लोगों को विकास कार्यों के प्रबंध का ज्ञान होता है और रुचि भी होती है। इससे ये लोग सामान्य प्रशासन को दोषी भी नहीं ठहरा सकते। इनके कार्य को सुलभ बनाने हेतु ग्रामीण स्तर पर विभिन्न कार्यक्रमों की निगरानी, मूल्यांकन तथा नवीनतम तकनीक व ज्ञान के प्रसार हेतु एक स्वतंत्र पद का सृजन कर देना चाहिए। इन इन्पुटों के दिए होने पर अब कार्यक्रमों के लाभ हितग्राहियों तक पहुंचाने का उत्तरदायित्व इस कैडर का होगा।

(ब) प्रत्येक वर्ष के बजट में पूर्ववर्ती कार्यक्रमों को यथावत स्वीकार करके तथा वित्त मंत्री द्वारा अपना नवोन्मेष दृष्टिकोण स्थापित करने, दृष्टिकोण से कुछ अतिरिक्त कार्यक्रम जोड़ने के फलस्वरूप देश में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की लम्बी श्रृंखला बनती जा रही है जिसमें किसी एक अधिकारी या व्यक्ति विशेष पर जिम्मेदारी को थोपना जटिल बन गया है। प्रायः लोग एक-दूसरे पर उत्तरदायित्व का विवर्तन करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि कार्यक्रमों की संख्या कम की जाए तथा उन्हें 'जिला ग्रामीण विकास अभिकरण' अथवा खण्ड स्तर पर कार्यरत लोगों को बांट दिया जाए।

(स) इस बात का पूरा ध्यान रखा जाए कि कोई भी कार्यक्रम लक्ष्य परक उपागम न बने क्योंकि लक्ष्य परक उपागम बनने से दूरस्थ गांव विकास की मुख्य धारा से अलग-थलग पड़ जाएंगे तथा देश के विभिन्न भागों में विकास की विषमता बढ़ जाएगी। इससे भी बढ़कर बात यह होगी कि लक्ष्य पूरे करने की आड़ में ये लोग अपनी जिम्मेदारी से बचना चाहेंगे जिससे ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार नहीं होगा।

(द) साख का दुरुपयोग रोकने के लिए साख की पूर्ति के उपरान्त का पर्यवेक्षण भी इसलिए महत्वपूर्ण दिखाई देता है ताकि निमित्त कार्य के लिए दिए जाने वाले ऋण में उसका उपयोग हो। यदि उसका उपयोग ठीक से नहीं

हुआ है तो इसका अर्थ यह हुआ कि इन अधिकारियों ने तकनीकी रूप से संभाव्य तथा आर्थिक रूप से व्यवहार्य (Technically feasible and economically viable) परियोजनाएं नहीं बनाईं। इसके लिए संबंधित व्यक्ति को प्रत्यक्षतः दोषी ठहराया जा सकता है।

(य) लक्ष्य प्राप्ति के स्थान पर रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा उत्पादन एवं उत्पादकता में बढ़ावा देने के अधिकाधिक प्रयास हों ताकि स्थाई परिसम्पत्तियों का सृजन करके इनका सकल घरेलू उत्पादन में योगदान बढ़ाया जा सके।

(र) जहां तक संभव हो ग्रामीण पृष्ठभूमि एवं अभिरुचि वाले ऐसे अधिकारियों की संलग्नता को इन ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में बढ़ाया जाए, जिन्हें स्थानीय स्तर पर भाषा परिस्थितियों आदि में निर्णय लेने में किसी तरह की समस्या का सामना करने में कठिनाई न हो। इससे ये अपने उत्तरदायित्वों का बखूबी से निर्वाह कर पाएंगे तथा इस प्रकार का कोई बहाना भी न बनाने पाएंगे कि वे यहां की भाषा नहीं समझते, इसलिए गांव वालों से प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं हो पाता।

(ल) इस बात को अधिकारियों के स्तर पर सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रशासनिक व्यय में मितव्ययता बरती जाए, कहीं ऐसा न हो कि विकास कार्यक्रमों की अधिकांश राशि गरीब व्यक्तियों को लाभ पहुंचाने में काम ही न आए। प्रशासन के लम्बे-चौड़े स्तर में प्रायः यह राशि खर्च हो जाती है और गरीब व्यक्ति तक पहुंचते-पहुंचते यह राशि इतनी कम होती है कि उसका प्रयोग किसी उत्पादक कार्य के लिए होना असंभव हो जाता है। फिजूलखर्ची पर रोक लगाने के लिए 'नियंत्रण योग्य खर्चों' पर रोक लगाई जाए।

(व) भारतीय ग्रामीण जीवन में सामाजिक जीवन बहुत संवेदनशील रहा है। अतः ये लोग जहां उपर्युक्त कार्यक्रमों में अति उत्साह से विकास में संलग्न अधिकारियों को पूरा सहयोग देते हैं, वहां अकुशल लोगों के विरुद्ध भावनात्मक रूप से कार्यवाही चाहते हैं। अतः इन लोगों की वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट में इनके कार्य निष्पादन का उल्लेख करके इसे इनकी उन्नति से जोड़ा जाए।

(श) जिला प्रशासन को सशक्त करके स्थानीय आयोजन को ग्रामीण विकास का आधार बनाने पर बल दिया जाए। अब जबकि आठवीं योजना को अंतिम रूप दिया जा रहा है, इस विषय का महत्व, जवाबदेहता तय करने के दृष्टिकोण से बढ़ जाता है। 11 व 12 जून, 1990 को नई दिल्ली में हुए मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में पंचायत राज्य संस्थाओं को मजबूत करने के निर्णय का अनुमोदन होना इस बात का पर्याप्त सूचक है कि हम जवाबदेहता के प्रति कितने सजग हैं। वस्तुतः यह बहुत ही महत्वपूर्ण सुधार है जो कारगर सिद्ध हो सकता है। जनता और सरकारी अधिकारियों के मध्य बेहतर वैचारिक आदान-प्रदान निर्धन वर्गों को संगठित करना तथा उन्हें उचित प्रतिनिधित्व देने की प्रक्रिया में ही ऐसा महसूस होगा जैसी विकास प्रक्रिया में भागीदार लोगों ने स्वयं ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से अपनी जवाबदेहता निर्धारित कर ली हो।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का पूरा लाभ हितग्राहियों को उसी दशा में मिल सकता जब उनके लिए निश्चित की गई राशि बिना किसी रिसाव के उन तक पहुंच जाती है। अब तक स्थिति विपरीत रही है, रिसाव अधिक रहा है और लक्ष्य समूह तक पहुंचने वाली राशि कम। अतः ऐसी विद्रूप स्थिति को समाप्त करके लाभार्थियों को वास्तविक लाभ पहुंचाने का हमारा अभीष्ट लक्ष्य जवाबदेहता को निर्धारित करके ही प्राप्त किया जा सकता है। यह कार्य अविलम्ब करना होगा।

मूल्यांकन

अब अंतिम विश्लेषण में पूर्वोक्त जवाबदेहता के मूल्यांकन का प्रश्न अहम् बन जाता है, विशेषकर उस स्थिति में जब हम यह मानते हैं कि आने वाले समय में इस विषय पर गहनता से परिचर्चाएं होंगी। इसका मूल्यांकन करने का प्रमुख मापदंड लागत है अर्थात जवाबदेहता निर्धारित करने के पश्चात् एक निश्चित समयावधि (जो छः महीने अथवा एक वर्ष हो सकती है) में कार्यक्रम के परिचालन की क्या लागत आई है और फलस्वरूप कितने मूल्य की स्थाई उत्पादक परिसम्पत्ति का सृजन हुआ है। दूसरे शब्दों में सामाजिक लागत व सामाजिक लाभ कितना है। यदि सामाजिक लाभ अधिक आया है तो इसका अर्थ यह हुआ जवाबदेहता के तत्व ने अपना प्रभाव दिखाया है और समेकित कार्यक्रम अधिक अच्छे ढंग से निर्मित हुए हैं। इस समेकित प्रक्रिया में यदि एक ही काम दो जगह नहीं हुआ है और न्यूनतम लागत पर अधिकतम सफलता मिली है तो निश्चित रूप से यह अनुकरणीय कदम होगा।

ग्रामीण कार्यक्रमों में अपनाई गई तकनीक इस तथ्य की पुष्टि करती है कि इसमें संलग्न व्यक्तियों द्वारा आवश्यकता पड़ने पर ग्रामीण व्यक्तियों का छोटी-छोटी क्रियाओं में भागीदारी शामिल करने से उनकी जवाबदेहता पर दबाव कम हो जाता है। इस व्यवस्था में मॉडल तैयार करने का काम किया जाता है। ये मॉडल मिट्टी या रंग से बिना बड़ी लागत के तैयार हो सकते हैं। इन नक्शों का क्षेत्र गांवों, खेती-खलिहान, जलाशयों, वनों या मिट्टी आदि से संबंधित हो सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर ये अधिकारी गांवों में भ्रमण कर सकते हैं ताकि स्थल अध्ययन की पद्धति से उनका कार्य अधिक आसान हो सकता है। कहने का आशय यह है कि इन सब तरीकों से जो कुछ प्रारंभिक आंकड़े सम्मिलित होंगे, उनके द्वारा अन्य द्वितीयक आंकड़ों का भी आसानी से परीक्षण हो जाएगा। ऐसी आरंभिक सफलता के बाद वह स्थिति आ जाएगी जब कार्यक्रमों की जवाबदेहता के परिणाम स्वतः ही सामने आ जाएंगे।

यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि इस विचाराधीन विषय पर अब तक बहुत कम लिखे जाने के कारण इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया लेकिन यह इतना महत्वपूर्ण विषय है कि समस्त ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की मूल भावनाएं इसी घटक से स्पष्ट होती है, अंतिम परिणाम की ओर उन्मुख होती है। यदि जवाबदेहता के इस कारक को कड़ाई से लागू नहीं किया गया तो कार्यक्रमों के ठोस परिणाम सामने नहीं आ सकते और राष्ट्र द्वारा इन कार्यक्रमों में लगाई गई विशाल पूंजी का अपव्यय हो जाएगा। लेकिन यह भी ध्यान में रखना होगा कि इसे कुछ चरणों में लागू किया गया तथा प्रत्येक अवस्था में इसके परिणामों की समीक्षा की जाए ताकि उसके उत्साहवर्धक परिणाम को अधिक परिमार्जित करके लागू किया जा सके और यदि कोई कमी है तो उसमें तदनुरूप सुधार लाया जा सके।

उपर्युक्त विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का पूरा लाभ हितग्राहियों को उसी दशा में मिल सकता जब उनके लिए निश्चित की गई राशि बिना किसी रिसाव के उन तक पहुंच जाती है। अब तक स्थिति विपरीत रही है, रिसाव अधिक रहा है और लक्ष्य समूह तक पहुंचने वाली राशि कम। अतः ऐसी विद्रूप स्थिति को समाप्त करके लाभार्थियों को वास्तविक लाभ पहुंचाने का हमारा अभीष्ट लक्ष्य को जवाबदेहता निर्धारित करके ही प्राप्त किया जा सकता है। यह कार्य अविलम्ब करना होगा अन्यथा आर्थिक संकट से ग्रस्त भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय साधनों के अपव्यय के गंभीर परिणाम सामने आएंगे। हमारे नीति निर्माताओं के लिए यह एक महान् चुनौती है जिसे उन्हें 'न्याययुक्त विकास' के आंचल में सुलझाना होगा।

आयोजना अधिकारी
बैंक ऑफ बड़ौदा
राजस्थान अंचल, जयपुर (राजस्थान)

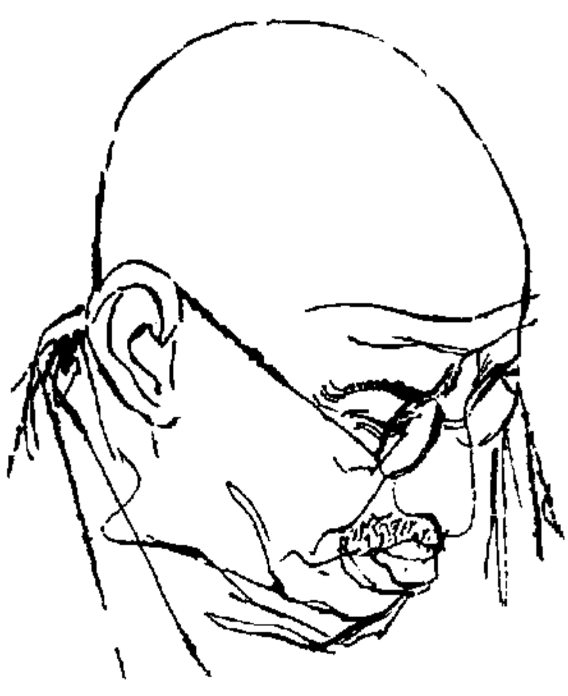

सर्वे भवन्तु सुखिनः

ग्रामीण विकास के बुनियादी पहलू

डा. नारायण दत्त पालीवाल

इस लेख के अनुसार ग्रामीण विकास के लिए सरकार द्वारा बनाई गई विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएं ज्यादातर शहरोन्मुखी ही हैं। ये सभी योजनाएं ग्रामोन्मुखी होनी चाहिए क्योंकि हमारे ग्राम प्रधान देश में लगभग 23 करोड़ लोग गरीबी की सीमा रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं। ग्रामीण विकास के मार्ग में आने वाली समस्याओं का कारण है विकास के नाम पर जो योजनाएं बनती हैं उन्हें गहराई से समझकर क्रियान्वित नहीं किया जाता। लेखक का मत है कि ये विकास कार्यक्रम व्यवस्थित नहीं होते हैं। इन योजनाओं के लिए स्वीकृत बजट कार्यक्रमों पर खर्च न होकर सरकारी तंत्र पर खर्च होता है। जो अधिकारी इन विकास कार्यक्रमों में लगे हैं वे काम के नाम पर केवल खानापूर्ति ही करते हैं। विकास कार्यक्रमों के अनुकूलतम एवं अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है कि अधिकारियों की जवाबदेही निश्चित की जाए और उन्हें कुशल एवं विशेषज्ञ परामर्श उपलब्ध कराए जाएं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ग्रामीण विकास के लिए ग्रामीण लोगों में जागरुकता एवं चेतना का संचार होना चाहिए। उनमें ये चेतना तभी आएगी जब उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसी बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं अन्यथा ग्रामीण विकास के नाम पर बनी सभी योजनाएं बेबुनियाद और व्यर्थ होंगी।

भारत की विकास योजनाओं और कार्यक्रमों की चर्चा करते समय ग्रामीण विकास के संदर्भ में सोचे बिना न तो हमारी अर्थव्यवस्था पर और न ही पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियों पर कोई सार्थक बहस हो सकती है। भारत गांवों का देश है। लाखों गांवों में देश की दो तिहाई से भी अधिक जनसंख्या रहती है। ऐसी स्थिति में हमारी विकास योजनाओं को ग्रामोन्मुखी दृष्टिकोण अपनाकर ढाला जाना चाहिए परन्तु होता यह है कि ग्राम-प्रधान और कृषि-प्रधान देश की हमारी योजनाओं और कार्यक्रमों को शहरों के लिए अधिक और गांवों के लिए कम रूझान से तैयार किया जाता है। यही कारण है कि वहां की अर्थव्यवस्था दिशाहीन और विकास की स्थिति अव्यस्थित हो जाती है। जिसका परिणाम होता है अभाव, पिछड़ापन, गरीबी और साधनों की कमी। यह जन्म देता है पलायन को और ग्रामीण क्षेत्र की जनसंख्या धीरे-धीरे शहरों की भीड़ का कारण बन जाती है। जो वहां रहते हैं वे गरीबी की रेखा से नीचे का अभावग्रस्त जीवन बिताते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में लगभग 23 करोड़ से अधिक लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं।

एक समय था जब हमारे गांव आत्मनिर्भर थे। अर्थव्यवस्था की सशक्त इकाई के रूप में मजबूत थे। आवश्यकताएं अवश्य तब कम थी और लोग अपनी आवश्यकता के लिए अधिकतर वस्तुओं का उत्पादन वहीं कर लेते थे। खेती में भी अनाज, तिलहन और दलहन, यहां तक कि सामान्य मसाले भी जरूरत के अनुसार गांवों में ही पैदा कर लेते थे। कपड़े के लिए मामूली मात्रा में कपास तक उगा लेते थे। भेड़ पालकर ऊन संबंधी आवश्यकता पूरी कर लेते थे। घर में बुना हुआ कपड़ा पहन लेते थे। मिट्टी और लकड़ी के बरतन बना लेते थे। बहुत कम चीजों के लिए शहरों की ओर देखते थे। इस प्रकार अपनी परम्परागत पद्धतियों और साधनों की सहायता से हमारे ग्रामीण क्षेत्र समय के साथ विकास की मंथर गति से आगे बढ़ते रहे। समस्याओं से घिरी, अभावों, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी और आधुनिक प्रगति से पिछड़ी ग्रामीण जनता के लिए स्वतंत्र भारत की विकास योजनाएं आशा की किरण लेकर आईं।

देश में जब अपना शासन हुआ तो सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के साथ-साथ शहरी और ग्रामीण विकास की अनेक योजनाएं तैयार कीं। शहरी क्षेत्रों में तो इन योजनाओं से लाभ हुआ परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में प्रगति की रफ्तार अपेक्षित रूप में न हो सकी। यों सरकारी स्तर पर ग्रामीण विकास के लिए विभिन्न मदों में बजट प्रावधान किया गया। विकास के लिए उत्तरदायी एजेंसियां बनाई गईं। कार्यक्रमों को लागू करने की दिशा में सरकारी मशीनरी की व्यवस्था भी की गई। अनेक प्रकार के अनुदान, सरकारी ऋण, विकास-पत्र आदि भी जारी किए गए। समन्वित ग्रामीण विकास योजनाएं तैयार की गईं। शिक्षा, यातायात, कृषि, उद्योग और स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी सुधार व विकास का प्रयास किया गया परन्तु यह लाभ पूरी तरह से उस क्षेत्र या शक्ति तक न पहुंच सका था। परिणाम यह हुआ कि न तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था का वह पारंपरिक स्वरूप ही कायम रह

सका और न विज्ञान और तकनीकी उन्नति के इस युग की विकास योजनाओं का पूरा लाभ ही गांवों को मिल सका। यहां ग्राम-विकास के विभिन्न पहलुओं और उससे जुड़ी हुई समस्याओं का संक्षिप्त विवेचन करने का प्रयास किया जा रहा है। जिन विभिन्न स्तरों पर योजनाएं बनीं और उनके कार्यान्वयन का कार्य हुआ वे इस प्रकार हैं—

गांव-स्तर

गांवों में ग्राम सभा, ग्राम पंचायत, वन-पंचायत, न्याय पंचायत आदि संस्थाएं गांवों के सुधार, कल्याण और विकास योजनाओं से संबद्ध हैं, जहां ग्राम प्रधान, सभापति, पंच, सरपंच, ग्राम-सेवक और सेविकाएं कल्याण कार्यक्रमों से जुड़े हैं। इनकी सहायता से गांव के द्वार पर पहुंची विकास योजनाओं, सुविधाओं और स्वीकृत बजट का लाभ गांवों को मिलता है। कार्यान्वयन की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण स्तर है। देश भर में लगभग 2.20 लाख ग्राम पंचायतें तथा 4.5 हजार पंचायत समितियां हैं। ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रम चलाने के लिए ये बुनियादी संस्थाएं हैं। इन्हें स्थानीय कमियों की जानकारी होती है और समाधान में रुचि भी।

प्रायः यह देखा गया है कि विकास एजेंसियां एक समन्वित एवं चरणबद्ध कार्यक्रम का सहारा नहीं लेती हैं। इसके पीछे क्षेत्रीय दबाव, राजनीतिक दांवपेंच तथा स्पष्ट नीति की कमी भी हो सकती है। विशेषज्ञ सलाह तथा योजनाओं और कार्यक्रमों की प्राथमिकता निर्धारित कर बजट व्यवस्था के अनुरूप हल खोजना न्यायसंगत प्रतीत होता है। मशीनरी या तंत्र पर खर्च अधिक व योजनाओं पर कम होता है।

खण्ड स्तर

दूसरा स्तर विकास-खण्ड का है, जहां खण्ड विकास अधिकारी तथा अन्य संबद्ध कर्मचारी क्षेत्र विशेष की विकास योजनाओं से संबद्ध है। ये स्थानीय एवं क्षेत्रीय समस्याओं का सर्वेक्षण कर सकते हैं, कठिनाइयों का अध्ययन कर परिस्थिति के अनुकूल समाधान सुझा सकते हैं। विकास कार्यक्रमों की प्राथमिकता भी खण्ड-स्तर पर निर्धारित हो सकती है। यह एक प्रकार से रीढ़ है।

जिला स्तर

जिले के स्तर पर जिला बोर्ड, सार्वजनिक निर्माण विभाग, जिला स्वास्थ्य विभाग, शिक्षा विभाग आदि संबद्ध हैं, जहां कलेक्टर, उपायुक्त अथवा जिलाधीश, अन्य जिला अधिकारी, तहसीलदार, पेशकार, पटवारी आदि अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं। लगभग 350 से भी अधिक जिला परिषदें ग्रामीण विकास योजनाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। यह एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेंसी है।

राज्य स्तर

राज्य स्तर पर ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाएं मंत्रालयों, राजकीय विभागों तथा अन्य सरकारी एजेंसियों से संबद्ध होती हैं। विधान सभाएं एवं विधान परिषदें अपनी भूमिका निभाती हैं। नीतियां निर्धारित होती हैं। योजनाओं की रूपरेखा बनती है और कार्यान्वयन संबंधी निर्देश राज्य स्तर पर जारी होते हैं। क्षेत्रीय जन-प्रतिनिधियों की भूमिका भी इसी दृष्टि से महत्व रखती है। कार्यान्वयन और प्रोत्साहन के साथ-साथ अनुदान एवं बजट व्यवस्था इस स्तर पर महत्वपूर्ण हैं।

राष्ट्रीय स्तर

इसका सीधा संबंध केन्द्र सरकार से है। अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य में बनी योजनाएं यहां से निर्धारित होती हैं। लक्ष्य तय किए जाते हैं। नीति परक मार्गदर्शन दिया जाता है। नीतिगत निर्णय लिए जाते हैं। योजना आयोग के माध्यम से बजट व्यवस्था का नियतन होता है। मूल्यांकन भी इसी स्तर पर होता है। लक्ष्यों और उपलब्धियों का विवेचन होता है। राष्ट्रीय स्तर पर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, भूमि सुधार, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम सूखाग्रस्त और मरुभूमि विकास कार्यक्रम, जल आपूर्ति, ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम आदि चलाए जा रहे हैं। प्रधानमंत्री से लेकर विभिन्न विभागों के मंत्री एवं योजना आयोग के उपाध्यक्ष सहित वित्त मंत्रालय और विभिन्न वित्तीय एजेंसियां कार्य से संबद्ध होती हैं। योजना कार्यक्रमों, नई योजनाओं का प्रारंभ, चालू योजनाओं की स्थिति सभी पर सार्वजनिक विकास के संदर्भ में विचार होता है।

समस्याएं

उपर्युक्त सभी स्तरों पर विकास की योजनाओं और कार्यक्रमों की रूपरेखा अपने-अपने कार्य क्षेत्र एवं निर्धारित कर्तव्यों के अनुसार बनती हैं। योजना बना लेना और बात है परन्तु वास्तविक विकास एवं जन सामान्य की आवश्यकताओं के अनुरूप उन्हें गहराई से समझकर क्रियान्वित करना दूसरी बात है। इस दिशा में प्रमुख कठिनाइयां अथवा कमियां इस प्रकार हैं—

धन की कमी

हर स्तर पर समस्याओं के हल के लिए विकास योजनाएं उस सीमा तक क्रियान्वित नहीं की जा सकी हैं जैसी की जानी चाहिए

थी। स्वतंत्रता के चालीस वर्ष बाद भी जब हम आठवीं पंचवर्षीय योजना के द्वार पर खड़े हैं, हमारी स्थिति संतोषजनक नहीं है। वित्तीय अभाव है। पर्याप्त बजट व्यवस्था नहीं हो पाती। फिर हमारा अधिक बजट शहरी क्षेत्रों के विकास तथा अन्य मदों पर खर्च हो जाता है। ग्रामीण क्षेत्र के लिए की गई बजट व्यवस्था कभी-कभी ऊंट के मुंह में जीरा सिद्ध हो जाती है। सात योजनाएं पूरी हो गई हैं पर ग्राम-विकास की स्थिति लगभग वैसी ही है। ऐसा नहीं है कि कुछ हो ही नहीं रहा। सरकार वित्तीय व्यवस्था भी कर रही है और योजनाओं को भी कार्य रूप दे रही है, परन्तु निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या एक बड़ी समस्या है।

चरणबद्ध कार्यक्रम का अभाव

प्रायः यह देखा गया है कि विकास एजेंसियां एक समन्वित एवं चरणबद्ध कार्यक्रम का सहारा नहीं लेती हैं। इसके पीछे क्षेत्रीय दबाव, राजनीतिक दांवपेंच तथा स्पष्ट नीति की कमी भी हो सकती है। विशेषज्ञ सलाह तथा योजनाओं और कार्यक्रमों की प्राथमिकता निर्धारित कर बजट व्यवस्था के अनुरूप हल खोजना न्यायसंगत प्रतीत होता है। मशीनरी या तंत्र पर खर्च अधिक व योजनाओं पर कम होता है।

अधिकारियों की उदासीनता

विकास के लक्ष्य अपूर्ण रहने के पीछे कभी-कभी उन अधिकारियों की उदासीनता भी रहती है जिन्हें यह काम सौंपा गया है। अधिकतर अधिकारी ग्रामीण क्षेत्रों में तैनाती को एक प्रकार की सजा समझते हैं। ऐसे में वे किसी प्रकार तैनाती की अवधि पूरा करने की चिन्ता करते हैं। उन्हें उस क्षेत्र से कोई लगाव नहीं होता। योजनाओं के कार्यान्वियन को भी वे उदास मन से अथवा बेगार टालने की तरह लेते हैं और किसी प्रकार कागजी खाना पूरी कर लेते हैं। यदि अधिकारियों को उचित सुविधाएं दी जाएं, सेवा शर्तें उदार रखी जाएं, उनकी जवाबदेही निश्चित की जाए तथा प्रशिक्षण आदि द्वारा उन्हें विशेषज्ञ परामर्श तथा कुशलता बढ़ाने का अवसर मिले तो अधिक अच्छा परिणाम निकल सकता है। उनमें जनहित, सेवानिष्ठा और त्याग की भावना जगाना भी आवश्यक है। कभी-कभी तो उन्हें स्थानीय समस्याओं की समझ भी नहीं हो पाती। स्थानान्तरों की श्रृंखला में विकास कार्य रुके रह जाते हैं और स्वीकृत बजट या तो खर्च नहीं हो पाता या फिर उसका सही उपयोग नहीं होता है। कभी-कभी क्षेत्रीय जनता भी क्षेत्रवाद एवं राजनीति के कारण विकास योजनाओं के सही लक्ष्य प्राप्त करने की दिशा में उदासीन रहती है और सहयोग नहीं करती। जनप्रतिनिधि भी इस व्यवस्था में आपसी खींचतान के कारण अधिक कारगर नहीं हो पाते। विकास कार्यों, विकास संबंधी सरकारी नीतियों, स्वीकृत धन राशि तथा सरकारी तौर पर दी जा रही सुविधाओं के प्रति जन-सामान्य की अनभिज्ञता भी एक कारण है। जनता में जागरुकता का यह अभाव योजनाओं को प्रभावित करता है। कुछ न हो, हमें क्या लेना है, वाली बात चरितार्थ हो जाती है।

यातायात एवं संचार माध्यमों की कमी

किसी भी क्षेत्र के विकास में आने जाने के साधनों और संचार माध्यमों की कमी बड़ी बाधक होती है। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद कच्ची सड़क, मोटर रोड आदि बढ़ी हैं और अनेक ग्रामीण क्षेत्र उद्योग, व्यापार, यातायात तथा संचार की दृष्टि से विकास की दौड़ में आगे भी आए हैं फिर भी अभी भारी कमी है। सार्वजनिक निर्माण विभाग, जिला बोर्ड, सीमा सड़क विभाग आदि ने काफी काम किया है। सड़क निर्माण के क्षेत्र में सातवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक 1500 जनसंख्या वाले सभी और 1000 से 1500 के बीच वाले 50 प्रतिशत गांवों को सड़कों से जोड़ने का लक्ष्य अब पूरा कर दिया गया है। संचार माध्यम भी बढ़े हैं। दूरदर्शन गांवों तक भी पहुंचा है परन्तु अनेक गांव आज भी डाक तार की सुविधा से वंचित हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में कुल 1,28,829 डाकघर थे। काफी गांव टेलीफोन सेवा से जुड़ गए हैं।

जल संसाधन संबंधी कठिनाई

अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल नहीं मिलता। परम्परागत कुएं या बावड़ियां भी सर्वत्र नहीं हैं। कई मील चलकर पानी लाना पड़ता है। रेगिस्तानी तथा पर्वतीय क्षेत्रों में पीने के पानी का बड़ा संकट रहता है। सरकार द्वारा सभी गांवों को पेयजल पहुंचाने की योजना के अंतर्गत सातवीं योजना के दौरान एक लाख से भी ऊपर गांवों को आरंभ में ही पेयजल पहुंचा दिया गया था। इसी तरह से सिंचाई के साधनों की कमी है। खेती के लिए वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है। विकास एजेंसियों ने कुछ राहत अवश्य दी है। नलकूपों, नहरों तथा अन्य तरीकों का विकास हुआ है परन्तु बहुत ही कम मात्रा में समस्या का समाधान हुआ है।

चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव

ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्य बीमारियों के इलाज तथा महामारी के समय चिकित्सा व्यवस्था का अभाव है। लोग घरेलू इलाज करते हैं, नीम हकीमों के पास जाते हैं, वैद्यों की सहायता लेते हैं। यहां तक कि अंध-विश्वास में फंसकर तंत्र-मंत्र और झाड़-फूंक करने वालों के चंगुल में फंस जाते हैं। कहीं-कहीं सरकारी

अस्पताल और औषधालय होते हैं पर वहां भी साधन नहीं। डाक्टर तो गांवों में जाते ही नहीं। दवाएं मिलती नहीं। महिलाओं के मामले में और भी बुरी हालत है। गर्भवती महिलाओं की देखरेख की व्यवस्था प्रशिक्षित डाक्टरों या परिचारिकाओं द्वारा हो, यह भी नहीं हो पाता। बच्चे भी बीमारी में भगवान के भरोसे रहते हैं। आजकल प्रचलित विभिन्न प्रकार के टीके लगाने की पूरी व्यवस्था नहीं होती। जब लोगों की यह दशा है तो मवेशियों के इलाज की व्यवस्था की कल्पना की जा सकती है। कुछ अपवाद होंगे पर अधिकतर ग्रामीण क्षेत्र इस मामले में उपेक्षित ही रहते हैं। जहां व्यवस्था है भी या सरकारी सुविधा है, वहां भी भ्रष्टाचार तथा कुप्रबंध से जनता लाभान्वित नहीं हो पाती।

शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ापन

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा व्यवस्था दयनीय है। विद्यालय या तो हैं ही नहीं या हालत इतनी खराब कि न इमारत न खेल का मैदान, न शिक्षकों की पूरी व्यवस्था और न ही खेलकूद या अन्य सुविधाएं। उच्च शिक्षा के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में कालेजों और विश्वविद्यालयों की संख्या नगण्य होती है। अध्यापक भी गांव के स्कूल में नहीं जाना चाहते हैं। शिक्षा का स्तर बहुत नीचा। न पुस्तकालय न पाठ्यक्रम की सुविधाएं। छात्रावास तो न के बराबर हैं। सरकार विद्यालयों को अनुदान देती है, मान्यता देती है और अपने प्रबंध के अंतर्गत भी ले लेती है, परन्तु स्तर में सुधार नहीं हो पाता। अनुदान अथवा आर्थिक सहायता पर्याप्त नहीं हो पाती। छात्र कल्याण और अध्यापक कल्याण के लिए भी सुविधाएं नहीं होती। साज-सामान पुस्तकालय सुविधा और विज्ञान के लिए साज-सामान व उपकरण दुर्लभ होते हैं। विज्ञान, वाणिज्य और तकनीकी शिक्षा का भी अभाव रहता है। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों की बड़ी कमी है। अभी भी देश में लगभग 64 प्रतिशत लोग अशिक्षित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार से हमें विकास योजनाओं को सही परिप्रेक्ष्य में समझने और उसमें सहयोग देने वाले लोग सुलभ हो सकते हैं। अतः सरकार को इस दिशा में सुधार करना चाहिए और शिक्षा की दिशा में अधिक खर्च करना चाहिए। हमारे विश्वविद्यालयों, कालेजों और विद्यालयों में अधिकतर किताबी शिक्षा पर जोर होता है। व्यावसायिक शिक्षा नहीं के बराबर होती है। इसीलिए लोग शहरों की ओर आते हैं। खर्चीली शिक्षा होने के कारण अधिकांश साधनहीन और गरीब छात्र लाभ नहीं उठा पाते और इच्छा तथा योग्यता होते हुए भी शिक्षा से वंचित रह जाते हैं।

कृषि संबंधी कठिनाइयां

ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी लोग खेती के परम्परागत तरीकों पर निर्भर हैं। विज्ञान ने जो नए साधन उपलब्ध कराए हैं धनाभाव के कारण उसका लाभ सभी को नहीं मिलता। फसलें भी अदल बदलकर नहीं उगाई जाती हैं। न पर्याप्त उन्नत खाद मिलती है न उन्नत बीज। सिंचाई का लाभ भी पर्याप्त नहीं। कृषि क्षेत्र में विस्तार संबंधी अनुसंधानों का लाभ भी ग्रामीण क्षेत्रों को पूरी तरह नहीं मिलता। बागवानी और फल उत्पादन के क्षेत्र में भी कठिनाइयां विद्यमान हैं। कृषि सहकारी समितियों की भी पूरी सुविधा उपलब्ध नहीं होती। ट्रेक्टर मिल जाए तो अहोभाग्य अथवा सत्रहवीं शताब्दी में जो हल था वही आज भी काम आ रहा है। उर्वरक और कीटनाशक की सुविधा भी सीमित है। गहन कृषि योजनाएं हों या कृषि विस्तार सेवाएं ग्रामीण क्षेत्र इनका पूरा लाभ नहीं उठा पाते। जानकारी भी पूरी नहीं होती। वैसे देश भर में लगभग 35000 कृषि ऋण समितियां गांवों में कार्य कर रही हैं, जिनमें से लगभग आधी उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण का कार्य भी करती हैं।

पारस्परिक तालमेल का अभाव

ग्रामीण क्षेत्रों में विकास योजनाओं के कार्यान्वयन में सबसे अधिक बाधक है विभिन्न एजेंसियों के बीच समन्वय की कमी। जहां किसी कार्य का उत्तरदायित्व विभिन्न एजेंसियों में बंट जाता है और ऐसी संस्थाओं की बहुतायत होती है वहां पर एक की जवाबदेही न होने के कारण कर्तव्यों का सही निर्वहन नहीं हो पाता। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के मामले में भी यही बात लागू होती है। विभिन्न एजेंसियों में अनुदान या बजट राशि बंट जाने से कभी-कभी प्राथमिकता वाली मदों पर पहले खर्च नहीं हो पाता और दुरुपयोग की भी गुंजाइश रहती है। अधिकारियों में भी आपस में तालमेल नहीं रहता है। जनता के बीच उदासीनता के कारण जागरुकता का अभाव रहता है और सरकारी एजेंसियों को सहयोग नहीं मिल पाता।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए एक विषय विशेषज्ञ के रूप में नहीं वरन् एक आम आदमी के रूप में यहां कुछ उपायों की चर्चा की जा रही है।

बजट एवं अनुदान का उपयोग

ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए नियत की गई पूरी राशि खर्च की जानी चाहिए परन्तु प्राथमिकता तथा अनिवार्यता वाली मदें भी तय की जानी चाहिए। राशि के पूरी तरह और सही रूप में खर्च करने की जिम्मेदारी एजेंसी विशेष और अधिकारी विशेष पर होनी चाहिए। बजट प्रावधान से पहले योजनाओं और कार्यक्रमों का पूर्ण एवं सही आकलन तथा राशि के उपयोग के बाद उपलब्धि और कार्यान्वयन का मूल्यांकन

किया जाना चाहिए। संबंधित अधिकारियों को संरक्षण, प्रशिक्षण एवं प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और ग्रामीण क्षेत्र में भेजे जाने पर उनकी सेवा शर्त उदार की जानी चाहिए तथा विशेष सुविधाएं दी जानी चाहिए। इसके लिए उन्हें जनता, स्वयं सेवी संस्थाओं और अन्य एजेंसियों का सहयोग भी चाहिए। विकास शिविर आयोजित करके तथा प्रचार-प्रसार के माध्यमों की सहायता से सरकार भी सहायता कर सकती है।

लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन

ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योग जहां रोजगार के अवसर जुटाते हैं वहीं गांवों की समृद्धि भी उन पर निर्भर है। पुराने समय में तो छोटे-छोटे घरेलू उद्योग गांव में लोगों को आर्थिक आधार प्रदान करते थे। कुम्हार, बढ़ई, राज, तेली, लोहार, चर्मकार, जुलाहे, बुनकर, कृषि-मजदूर, ठठेरे, मिस्त्री, दर्जी, इमारती कारीगर तथा अन्य कामगर गांवों में ही काम करके जीवन यापन का साधन खोज लेते थे। अब गांवों में भी इनका अभाव होता जा रहा है। शहरों का आकर्षण तथा गांवों का शहरों की ओर रूझान बढ़ गया है। आज कोई भी खुशी से गांव में रहकर इन छोटे-मोटे रोजगारों तक सीमित नहीं रहना चाहता। इनसे गुजारा होना भी कठिन है। ग्रामीण और लघु उद्योगों द्वारा कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग 49 प्रतिशत उत्पादन किया जाता है। अतः इन घरेलू उद्योग धंधों को प्रोत्साहन देकर इनका आर्थिक आधार मजबूत करना आवश्यक है। इन्हें यदि कच्चा माल सस्ता मिले तो बचत हो सकती है। इस प्रकार के उद्योग प्रारंभ करने के लिए सरकार द्वारा सस्ते ब्याज पर ऋण की सुविधा बैंकों के माध्यम से तो दी गई है परन्तु और अधिक उदार आर्थिक सहायता इन्हें बढ़ावा देगी। सरकारी संस्थाएं, खण्ड विकास कार्यालय तथा राष्ट्रीयकृत बैंक इस दिशा में अधिक सहयोग कर सकते हैं। गांवों में कुछ नए उद्योग भी चलाए जा सकते हैं जिनमें प्लास्टिक का सामान, धागों का उद्योग, चमड़े की वस्तुएं, चटाई, दरियां बनाने का काम, मौजे, दस्ताने और लकड़ी की छोटी-मोटी उपयोगी वस्तुएं बनाने का काम, मिट्टी के तरह-तरह के बर्तन और सजावटी सामान आदि हो सकता है। इनके लिए न अधिक धन चाहिए न अधिक कच्चा माल और न बड़ी मशीनें और बड़ा स्थान। कच्चे माल के लिए या प्रारंभिक साज-समान के लिए सरकार की विकास योजनाओं में अनुदान एवं सहायता की व्यवस्था की जा सकती है। इन परम्परागत कुटीर उद्योगों में नए साधनों का उपयोग उत्पादन बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। विशेषज्ञों को अध्ययन एवं अनुसंधान द्वारा इनके विकास की संभावनाओं का पता लगाकर कुछ परियोजनाएं तैयार करनी चाहिए और इस कार्य में सरकार अनुसंधान कार्य में रुचि रखने वालों को आर्थिक सहयोग या वृत्ति दे सकती है। इनसे गांव की अर्थव्यवस्था का आधार मजबूत होगा और विकास का मार्ग प्रशस्त होगा।

सुविधाओं का लाभ उठाया जाए

विकास कार्यक्रमों तथा जनता के स्तर को ऊंचा करने के लिए बनाई गई योजनाओं और सुविधाओं का पूरा लाभ उठाया जाना चाहिए। पत्र-पत्रिकाओं में, शिविरों में, सरकारी कर्मचारियों के माध्यम से समाज कल्याण, हरिजन उत्थान तथा जनसामान्य को दी जा रही सुविधाओं, विकास कार्यों, रोजगार के अवसरों आदि की जानकारी जन-जन तक पहुंचाकर लोगों को जागरूक किया जाए। इससे विकास कार्यों में उनकी भागीदारी बढ़ेगी और प्रजातंत्र के सिद्धांत के अनुरूप वे सरकारी योजनाओं की सफलता के लिए प्रयास करेंगे। सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए अधिकारियों, विकास एजेंसियों और जनता में परस्पर सहयोग अपेक्षित है।

उपलब्ध संसाधनों का सही उपयोग और भावी संभावनाओं की खोज इस दिशा में वरदान सिद्ध होगी। इसका दायित्व केवल सरकार पर ही नहीं है सभी संबंधित व्यक्तियों, एजेंसियों, जनप्रतिनिधियों और संबद्ध अधिकारियों, कर्मचारियों तथा संस्थाओं पर भी है। सभी के समन्वित प्रयत्नों से हमारे ग्रामीण क्षेत्र विकास की दौड़ में नए आयाम जोड़ते हुए कीर्तिमान स्थापित कर सकते हैं।

वैज्ञानिक उन्नति का लाभ गांव तक

यातायात, परिवहन, संचार आदि के साथ-साथ स्वास्थ्य चिकित्सा, उद्योग, प्रौद्योगिकी, कृषि विकास आदि के क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसंधान से जो आधुनिक साधन, औजार, उपकरण या अन्य तकनीकी सुविधाएं मिली हैं उनका लाभ गांवों के लिए बनाई गई योजनाओं को मिलना चाहिए। परम्परागत तौर-तरीकों के साथ-साथ आधुनिक तौर तरीकों का लाभ भी मिलना चहिए। दूरदर्शन नेटवर्क तथा आधुनिक कम्प्यूटर-तकनीक का लाभ भी मिलना चाहिए। डाक-तार सुविधाओं का जाल, संचार साधनों का भरपूर प्रयोग, कृषि की आधुनिकतम तकनीक, औद्योगिक क्षेत्र में वैज्ञानिक उन्नति का लाभ, जल संसाधनों का उपयोग, बिजली की समुचित व्यवस्था गांवों की कायापलट देगी।

शिक्षा के क्षेत्र में विकास

ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए शिक्षा को रोजगारोन्मुख स्वरूप देना होगा। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, व्यावसायिक

शिक्षण संस्थान, तकनीकी विद्यालय, तथा उच्च शिक्षा व्यवस्था के साथ-साथ कृषि विद्यालयों की स्थापना लाभकारी होगी। छात्रों को शारीरिक व मानसिक शिक्षा देने की व्यवस्था गांधी जी के सिद्धांतों के अनुकूल होनी चाहिए। शिक्षा अनुदान, छात्रवृत्ति, मेधावी छात्रों की पहचान, रेडियो, दूरदर्शन, कम्प्यूटर संबंधी प्रशिक्षण, छात्रों के शिविर, समाज सेवा कार्यक्रम, अध्ययन शिविर आदि विकास के अनुकूल वातावरण बनाने में अध्यापकों और छात्रों का सहयोग विकास के नए आयोजनों में सहायक होगा।

उपसंहार

ग्रामीण विकास के क्षेत्र में ग्रामीण विद्युतीकरण, सूचना-कम्प्यूटरीकरण, जांच शिविर, प्रशिक्षण शिविर, मूल्यांकन अभियान और सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण भी आवश्यक है। दस्तकारी, हथकरघा, हस्तशिल्प, घरेलू उद्योग तथा छोटे-मोटे धंधे भी महत्व रखते हैं। उदार लाइसेंस व्यवस्था, ऋण व्यवस्था अनुदान आदि सहायक सिद्ध होंगे। संस्थाओं का आपसी तालमेल ग्रामीण भूमिका एवं ग्राम विकास में रुचि रखने वाले अधिकारी, आवास, स्वास्थ्य, पर्यावरण, साक्षरता, प्रौढ़-शिक्षा, ऊर्जा के गैर-परम्परागत संसाधनों का प्रयोग, कृषि उपज एवं उत्पादन बढ़ाने की नवीन प्रणालियां, उद्योग-धंधों एवं कृषि के माध्यम से रोजगार के अवसर, बागवानी, गोबर गैस, उपयुक्त स्थानों पर सुलभ शौचालय व्यवस्था, आदि विकास की गति बढ़ा सकते हैं। मुर्गी पालन, फल संरक्षण, मवेशी विकास, परिवार कल्याण कार्यक्रम, स्वास्थ्य केन्द्र एवं महिला एवं बाल कल्याण शिशु केन्द्र योजनाएं गांवों के जीवन स्तर में सुधार ला सकते हैं। उपलब्ध संसाधनों का सही उपयोग और भावी संभावनाओं की खोज इस दिशा में वरदान सिद्ध होगी। इसका दायित्व केवल सरकार पर ही नहीं है सभी संबंधित व्यक्तियों, एजेंसियों, जनप्रतिनिधियों और संबद्ध अधिकारियों, कर्मचारियों तथा संस्थाओं पर भी है। सभी के समन्वित प्रयत्नों से हमारे ग्रामीण क्षेत्र विकास की दौड़ में नए आयाम जोड़ते हुए कीर्तिमान स्थापित कर सकते हैं। हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि सुनियोजित ग्रामीण विकास हमारी अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं और पक्षों की मजबूती की आधारशिला है।

एच-19/60, सेक्टर-7,
रोहिणी-110085

कब तक ?

आदमी-आदमी का मल ढोता रहेगा

आइये गंगा और यमुना को प्रदूषण से मुक्त कर लें तथा मैला ढोने की अमानवीय, अस्वास्थ्यकर एवं घृणित कुप्रथा का उन्मूलन कर पूज्य बापू के सपनों को साकार करें।

हमारे साथ मिलकर अपने कमाऊ शौचालय को जल प्रवाहित शौचालय में बदल कर भंगी मुक्ति योजना को साकार करें तथा गंगोत्री से गंगा सागर तक गंगा को एक जैसी स्वच्छ करें।

अपने घरों के शुष्क शौचालय को जलधोत शौचालय में परिवर्तन/निर्माण हेतु कृपया सचिव, सुलभ इंटरनेशनल, 12, अमरनाथ झा मार्ग, इलाहाबाद से सम्पर्क करें।

अवधेश कुमार पाठक
उपाध्यक्ष,
सुलभ इंटरनेशनल
उ. प्र. राज्य शाखा
लखनऊ

पी० के० अग्रवाल
क्षेत्रीय निदेशक
गंगा प्रदूषण, इलाहाबाद

प्रभुनाथ मिश्रा
मुख्य नगर अधिकारी एवं उपाध्यक्ष
नगर महापालिका एवं विकास
प्राधिकरण इलाहाबाद

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम
उपलब्धियां और संभावनाएं

डा. श्याम शर्मा

किसी भी देश का विकास उसकी अर्थव्यवस्था पर निर्भर करता है। हमारे देश में छह लाख गांव है। भारत की अर्थव्यवस्था तभी सुदृढ़ हो सकती है, जब ग्रामीण अर्थव्यवस्था को और अधिक विकसित किया जाए। इसके लिए यह आवश्यक है कि गांवों में कमजोर वर्ग के लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए रोजगार के अधिक अवसर प्रदान किए जाएं। लेखक की स्पष्ट मान्यता है कि गांवों में गरीबी को दूर किए बिना देश का आर्थिक विकास असंभव है। आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की आवश्यकता पर बल देते हुए लेखक ने ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के पहलुओं पर प्रस्तुत लेख में विस्तार से प्रकाश डाला है। ग्रामीण विकास की दिशा में अब तक के हमारे प्रयासों, उपलब्धियों और संभावनाओं का उल्लेख करते हुए इस बात की ओर संकेत किया गया है कि विकास योजनाएं ग्रामीण क्षेत्र में काफी उपयोगी सिद्ध हुई हैं लेकिन जनसंख्या पर नियंत्रण किए बिना हम अपने लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं कर सकते। इसके अलावा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के प्रति विशेष ध्यान दिया जाना अपेक्षित है। लेखक का विचार है कि ग्रामीण विकास और रोजगार कार्यक्रमों को अधिक सफल बनाने के लिए उन लोगों को भी इनमें शामिल किया जाना चाहिए, जिनके लिए ये कार्यक्रम बनाए गए हैं तभी परिवर्तन की हमारी विकास यात्रा पूरी हो सकती है।

आधुनिक भारत के निर्माताओं ने इस देश की संस्कृति और सभ्यता को बनाए रखते हुए 'आम आदमी' के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए विशाल पैमाने पर कई कल्याणकारी योजनाओं को आरम्भ किया। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं का मूल उद्देश्य भारत को आत्मनिर्भर बनाना और गरीबी को कम करना रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'आर्थिक विकास' और 'सामाजिक न्याय की ओर विशेष ध्यान दिया गया। ग्रामीण विकास हमारी योजनाओं का आधार रहा है, क्योंकि भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है। इस समय हमारे देश में छह लाख गांव हैं, जिनमें 22 करोड़ से भी अधिक लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। इन गरीब परिवारों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाए बिना हमारी विकास योजनाएं अधूरी रह जाएंगी। योजना विकास की प्रक्रिया को समझते हुए भारत के निर्माता और पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल ने कहा था, "भारत गरीब इसलिए है क्योंकि उसके गांव निर्धन हैं अगर गांव धनी हो जाएं तो देश भी अमीर हो जाएगा। इसलिए भारत की प्रमुख समस्या गांवों से गरीबी समाप्त करने की है। इसलिए हम जो भी योजनाएं तैयार करें, उसकी सफलता की कसौटी यह होगी कि हमारे लाखों देशवासियों, जो मात्र अपनी जीविका पूरी कर पाते हैं, उन्हें उससे कितनी राहत मिलती है, यानि हमारे अधिकांश देशवासियों की भलाई और प्रगति होती है। अन्य सभी लाभ इस मुख्य दृष्टिकोण के अधीन होने चाहिए। हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि हम हर एक ऐसे व्यक्ति को रोजगार एवं कार्य की गारंटी दे सकें जो मेहनत करने के लिए तैयार हैं और हाथ से काम करने को बुरा नहीं समझता।"

योजनाओं का प्रयोजन

आजादी के बाद हमारे लिए यह आवश्यक हो गया कि हमारी भावी नीतियां ज्यादा मजबूती के साथ गरीबी को कम करने और काम के अवसर बढ़ाने और आम आदमी को सुविधा उपलब्ध कराने की तरफ केन्द्रित की जाएं। इस दिशा में हमने पहली पंचवर्षीय योजना से लेकर सातवीं पंचवर्षीय योजना तक की सप्तपदी यात्रा के दौरान निर्धन वर्ग के लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए नए-नए अवसर प्रदान किए हैं। इन अवसरों से उनकी प्रगति के नए द्वार खुलने लगे हैं।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

विगत वर्षों में इस दिशा में सामाजिक न्याय और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं। सरकार ने कमजोर वर्ग के उत्थान के लिए जिन कल्याणकारी योजनाओं को अपना अभिन्न अंग बनाया है वे हैं—1. समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, 2. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, 3. ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, 4. ट्राइसेम योजना, 5. ग्रामीण महिला व बाल विकास कार्यक्रम, 6. सामूहिक बीमा योजना और 7. जवाहर रोजगार योजना।

इन योजनाओं में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण कार्यक्रम के रूप में स्वीकार किया गया है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम पिछले एक दशक से देश के सभी विकास खंडों में सफलता के साथ क्रियान्वित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम से ग्रामीण इलाकों में रहने वाले निर्धन परिवारों की आर्थिक स्थिति में सुधार की प्रक्रिया आरम्भ होने लगी और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन आने लगा। इस परिवर्तन से ग्रामीण जनजीवन में एक नए विश्वास और उत्साह का भाव पैदा हुआ है।

कार्यक्रम की प्रासंगिकता

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम सबसे पहले वर्ष 1976-77 में देश के 20 चयनित जिलों में प्रयोग के रूप में आरम्भ किया गया और बाद में 1978-79 में इसे 2300 विकास खंडों में लागू किया। इसके अच्छे परिणाम जब आने लगे तो इसे 1978-79 में 2600 विकास खंडों में लागू कर दिया गया। महात्मा गांधी के जन्म दिवस दो अक्तूबर 1980 को इसे सभी विकास खंडों में क्रियान्वित किए जाने का निर्णय लिया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण इलाकों में कुछे चुने हुए परिवारों को इस योग्य बनाना है कि वे गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सकें। निर्धनता को कम करने में रोजगार कार्यक्रम का महत्व सातवीं योजना में अपनाए गए दृष्टिकोण से भी परिलक्षित होता है जिसमें खाद्यान्न, कार्य और उत्पादन पर जोर दिया गया है। अप्रैल 1989 में यह निर्णय लिया गया था कि अत्यधिक गरीबी और बेरोजगारी वाले पिछड़े जिलों में गहन मजदूरी रोजगार कार्यक्रम की एक नई योजना 'जवाहर रोजगार' के नाम से शुरू की गई। अभी भी समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम देश के विभिन्न भागों में अनवरत रूप से आज भी कल्याणकारी कार्यक्रमों का अभिन्न अंग बना हुआ है। इस कार्यक्रम की प्रासंगिकता को समझते हुए इस कार्यक्रम में कई उपयोजनाओं को इसके अन्तर्गत शामिल किया गया।

उत्पादकता परिसम्पत्तियां और निवेश की सुविधा

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत निर्धारित वर्ग के लोगों को उत्पादक परिसम्पत्तियां और निवेश की सुविधा उपलब्ध कराई गई। ये परिसम्पत्तियां वित्तीय सहायता के माध्यम से दी गई। यह वित्तीय सहायता-सरकार द्वारा दी गई सब्सिडी और वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिए गए सावधि ऋणों के रूप में होती है। सब्सिडी की पद्धति के अनुसार छोटे किसानों को 25 प्रतिशत सीमान्त किसानों को और कृषि मजदूरों को $33\frac{1}{3}$ प्रतिशत और जनजातीय परिवारों को 50 प्रतिशत सब्सिडी दी जा सकती है। इस राशि की सीमा सामान्य क्षेत्रों में तीन हजार रुपये, सूखाग्रस्त और रेगिस्तानी क्षेत्रों में चार हजार रुपये और जनजातीय इलाकों में पांच हजार रुपये है। इस योजना से लाभान्वित होने वालों में छोटे और सीमान्त किसान, कृषि मजदूर और दस्तकार शामिल हैं, जिनकी वार्षिक आय 6400 रुपये हो। अनुसूचित जातियों और जन जातियों के परिवारों को सहायता से वंचित न होना पड़े, इसके लिए इस कार्यक्रम में ये व्यवस्था की गई है कि जिन परिवारों को सहायता दी जाए उनमें कम से कम तीस प्रतिशत परिवार इन वर्गों के होने चाहिए। विकास की इस प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए यह निर्णय लिया गया कि सहायता प्राप्त करने वालों में कम से कम तीस प्रतिशत महिलाएं हों। सातवीं योजना में दो करोड़ परिवारों की सहायता का लक्ष्य रखा गया था। राज्य योजना राशि को मिलाकर कुल 2358.81 करोड़ रुपये इस कार्य के लिए निर्धारित किए गए। कार्यक्रम के अंतर्गत महिलाओं को दी जाने वाली सहायता में लगातार वृद्धि हुई है। 1985-86 में यह 9.89 प्रतिशत थी जो दिसम्बर 1989 तक बढ़कर 25 प्रतिशत हो गई। सातवीं योजना के आरम्भ में गरीबी का अनुपात 36.9 प्रतिशत था, जिसे 1989-90 तक 25.8 प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य रखा गया, इसके पहले 1973-74 में यह अनुपात 48 प्रतिशत था। ऐसा अनुमान है कि वर्ष 1994 के अंत तक यह 10 प्रतिशत तक रह जाएगा।

ये लोग चाहते हुए भी अपना जीवनस्तर सुधार नहीं पाते। इनका जीवन स्तर तभी ऊपर उठ सकता है, जब जन जागृति आए और जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण किया जाए। ग्रामीण जनों को साक्षर बनाया जाए। तभी समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की यात्रा सफल हो सकती है।

सामाजिक सुरक्षा

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लाभार्थियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए 1 अप्रैल 1988 को सामूहिक जीवन बीमा योजना आरम्भ की गई। इस योजना से प्रतिवर्ष 30-40 लाख लोग लाभ उठा सकते हैं। गरीबी की रेखा के नीचे जीने वाले परिवार के किसी सदस्य की दुखद मृत्यु हो जाती है, तो परिवार के सामने बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। विशेष रूप से धन के अभाव में उनका जीना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में उन परिवारों को सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है। अब निर्धन परिवार के लोग बीमा योजना से प्राप्त धन लेकर अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे।

परिवार ऋण योजना

ग्रामीण विकास को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय ग्रामीण

विकास विभाग ने देश के चालीस जिलों में परिवार ऋण योजना की एक प्रायोगिक परियोजना आरंभ की। इसमें चयनित ऐसे हर जिले के 200 गरीब परिवारों को 1991-92 में लाभ मिलेगा। परिवार ऋण योजना एक ऐसा प्रयास होगा, जिसमें ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लाभग्राही परिवार के प्रत्येक सदस्य की क्षमता का पता लगाने के बाद उसकी आमदनी बढ़ाने वाली गतिविधियों शुरू करने के लिए सहायता देने की योजना बनाई जाएगी।

भूमिहीनों के लिए नया अवसर

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत परिसम्पत्तियों की खरीद की व्यवस्था में परिवर्तन किया गया है। वर्ष 1991-92 से लाभग्राही समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त सहायता का उपयोग भूमि की खरीद के लिए भी कर सकेंगे। इस संदर्भ में यह भी निर्देश दिया गया है कि खरीद की जाने वाली भूमि लाभग्राही की मनपसंद की होनी चाहिए। अधिकारी का यह दायित्व होगा कि वह खरीदी गई भूमि और उसके मूल्य की जांच करे। इस परिवर्तन से भूमिहीन बंधुआ मजदूरों को और छोटे किसानों को लाभ मिलेगा। गांवों में अतिरिक्त भूमि को भूमिहीन कृषि मजदूरों को वितरित करने और चकबन्दी के मामले में अब तक हुई ढिलाई सरकार के लिए चिन्ता का विषय रहा है। अतः भूमि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए 66वें संविधान संशोधन विधेयक 1990 की नौवीं अनुसूची में भूमि संबंधी कानून शामिल किए गए हैं। इसका उद्‌देश्य यह रहा है कि इनमें से किसी कार्यक्रम को अदालत में चुनौती न दी जा सके।

महिला और बाल विकास योजना

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास योजना 1982-83 में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की उपयोजना के रूप में आरंभ की गई। महिलाओं को विकास की धारा में शामिल करने के लिए विशेष ध्यान दिया गया है। इसका उद्‌देश्य रोजगार, दक्षता प्रशिक्षण, ऋण तथा अन्य सहायक सेवाओं में महिलाओं की पहुंच में वृद्धि करना तथा उनके स्तर को सुधारने का रहा है। प्रत्येक समूह को कच्चा माल और शिशु की देखभाल के लिए 15,000 रुपये देने का प्रावधान रखा गया है। 31 मार्च 1991 तक यह कार्यक्रम 187 जिलों में चलाया गया था। 1991-92 में यह कार्यक्रम 50 और जिलों में चलाया जाएगा। आठवीं योजना के अन्त तक इस कार्यक्रम को सभी जिलों में चलाए जाने का प्रस्ताव है। सातवीं योजना के दौरान समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत लाभ प्राप्त महिलाओं की संख्या 34.33 लाख थी। यह सहायता प्राप्त परिवारों का 18.89 प्रतिशत है। 1990-91 के दौरान सहायता प्राप्त महिलाओं की संख्या 6.84 लाख थी। इस योजना से महिलाओं के विकास के लिए नए कदम उठाए गए। अधिक से अधिक महिलाओं ने इस कार्य में अपनी रुचि को दर्शाया और उन्हें प्रशिक्षण देकर स्वावलंबी बनाने में महत्वपूर्ण कार्य हुआ।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को और अधिक प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए इस कार्यक्रम के तहत अन्य जिन उपयोजनाओं को शामिल किया गया उनमें 'ट्राइसेम योजना' ग्रामीण युवा वर्ग को प्रशिक्षित करने तथा उन्हें आत्म निर्भर बनाने की दिशा में सफल हुई है। इस योजना का प्रयोजन गांवों में उन परिवारों के युवकों को जिनकी आयु 18-35 वर्ष की है, उन्हें तकनीकी कौशल विकसित करने का अवसर प्रदान करना है ताकि युवक अपना कोई आर्थिक विकास का कार्य कर व्यवसाय कर सकें। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला तथा बाल विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत महिला ग्रुपों को प्रशिक्षण करने का कार्य भी कुछ क्षेत्रों में 'ट्राइसेम' की ओर से किया जा रहा है।

उपलब्धियां

सातवीं योजना में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की भूमिका के दो पहलू थे। पहला छठी पंचवर्षीय योजना में मिली सफलताओं को और अधिक मजबूत बनाया जाए, विशेषरूप से उन परिवारों को पूरक सहायता दी जाए जो किसी कारण से लाभ से वंचित रह गए थे और गरीबी की रेखा से ऊपर उठ नहीं पाए। दूसरा पहलू यह था कि नए लाभ उठाने वालों को इस प्रकार से सहायता पहुंचाती रहे कि वे पहली बार में ही सहायता प्राप्त करके अपने जीवन स्तर को ऊपर उठा सकें। इस प्रकार की सहायता से अत्यधिक गरीब परिवार के लोगों को राहत पहुंचेगी। सातवीं योजना के दौरान 180 लाख परिवारों को सहायता दी गई। इसमें कुल 8,852.35 करोड़ रुपये व्यय किए गए, जबकि छठी योजना में 4,762.78 रुपये का विनियोग कर 165 लाख परिवारों को सहायता दी गई थी। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि छठी योजना में सहायता प्राप्त परिवारों की संख्या 165 लाख थी इसमें सातवीं योजना में 15 लाख परिवारों की वृद्धि हुई। यह वृद्धि ग्रामीण विकास की सफलता की सूचक कही जा सकती है।

ग्रामीण विकास विभाग की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार इस वर्ष सरकार ग्रामीण विकास योजनाओं के विकसित कार्य निष्पादन पर विशेष ज़ोर देगी। गरीबी दूर करने के प्रमुख कार्यक्रमों के रूप में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और जवाहर रोजगार योजना को जारी रखेगी। इस योजना के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर अधिक मात्रा में उपलब्ध कराए जाएंगे। इसके लिए सरकार ने निर्णय लिया है कि लक्ष्य समूहों को निवेश के लिए आवश्यक धन और उत्पादकता बढ़ाने के लिए जरूरी सुविधाएं उपलब्ध कराई

जाए। पिछले वर्ष इस योजना के अन्तर्गत लगभग 49 प्रतिशत सहायता अनुसूचित जातियों तथा जन जातियों के लोगों को दी गई। चालू वर्ष के दौरान इस योजना के तहत हर परिवार को 6378 रुपये निवेश करने के लिए दिए गए हैं। जबकि वर्ष 1986-87 में यह रकम चार हजार दौ सौ सौलह रुपये सालाना थी। पिछले वर्ष इस कार्यक्रम पर कुल निवेश 1970 करोड़ रुपये से ज्यादा रहा। जवाहर रोजगार योजना के तहत 20 प्रतिशत धनराशि अनुसूचित जाति तथा जनजातियों और बंधुआ मजदूरों के लिए उपलब्ध कराई गई। यह रकम 10 लाख कुएं तैयार करने की योजना के अन्तर्गत दी गई। समाज के कमजोर वर्ग के लोगों के लिए एक लाख बाइस हजार एक सौ मकान बनाने के लिए इंदिरा आवास योजना बनाई गई इसके लिए एक अरब सत्तावन करोड़ रुपये निर्धारित किए गए। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1991-92 में साढ़े बाइस लाख परिवारों को सहायता पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया है। इस दौरान ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण के तहत सवा चार लाख युवकों प्रशिक्षित किया जाएगा।

इन तमाम कार्यक्रमों और सुधारों के बावजूद भी हमारे देश में पिछड़ापन पूरी तरह से दूर नहीं हो सका। उपेक्षित और दलित वर्ग अपने जीवन स्तर को पूरी तरह से ऊपर उठाने में असमर्थ रहा। गांवों में अभावों की जिन्दगी बसर करने वालों की संख्या में वृद्धि होती रही। निर्धन परिवार में रहने वाले लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिलता, रहने के लिए मकान नहीं होता, तन ढकने को कपड़ा नहीं होता। इसके अलावा जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति भी ये लोग पूरी नहीं कर पाते। ऐसे उपेक्षित और कमजोर वर्ग के लोग समाज के अभिन्न अंग होते हुए भी सामाजिक न्याय से वंचित रह जाते हैं। आर्थिक तंगी और रोजगार के अभाव के कारण ये लोग चाहते हुए भी अपना जीवनस्तर सुधार नहीं पाते। इनका जीवन स्तर तभी ऊपर उठ सकता है, जब जन जागृति आए और जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण किया जाए। ग्रामीण जनों को साक्षर बनाया जाए। तभी समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की यात्रा अपने लक्ष्यों को पाने में सफल हो सकती है। हमारी सारी योजनाओं की सार्थकता इस बात में निहित है कि हम गरीबों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करें। हालांकि विगत वर्षों में योजनाबद्ध विकास से ग्रामीण क्षेत्रों में सुधार आया है। हमारे गांव अब पुराने गांव नहीं रहे, जो आजादी के पूर्व पिछड़े और सुख सुविधाओं की परिधि से दूर थे। आजादी के बाद हमारे गांवों में नया परिवर्तन आया है। गांव के लोगों में आत्मनिर्भरता की भावनाएं जागृत हुई है और उत्साह का नया संचार हुआ है। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार हुआ है। पीने के पानी की समस्या दूर होने लगी है। बिजली और औद्योगिक विकास ने गति पकड़ी तथा इसका फैलाव गांवों तक बढ़ने लगा। खेती की पैदावार में वृद्धि हुई और किसान अधिक फैलाव गांवों तक बढ़ने लगा। खेती की पैदावार में वृद्धि हुई और किसान अधिक से अधिक वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करने लगे। ज्ञान का विस्तार होने से योजनाओं को ग्रामोन्मुखी बनाया गया और गांवों में सुख सुविधाओं का विस्तार करने का प्रयास किया गया। ये प्रयास और अधिक सार्थकता ग्रहण करते यदि जनसंख्या की वृद्धि उसी अनुपात में नहीं हो पाती।

संभावनाएं

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की उपलब्धियां विकास की संभावनाओं के नए-नए द्वार खोलने लगी है। आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन से ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार आने लगा है। सामाजिक न्याय की परिकल्पना साकार रूप लेने लगी। महत्वाकांक्षी ग्रामीण विकास योजनाओं से रोजगारी की वृद्धि की संभावनाएं बढ़ने लगी। विकास योजना की सफलताएं इस बात पर निर्भर करती है कि हम इन योजनाओं में उन लोगों को शामिल करें, जिनके लिए ये योजनाएं बनाई गई हैं। उनकी सही भागीदारी और पुनः मूल्यांकन के बिना हमारी योजनाएं राहत कार्यक्रम बन कर रह जाएगी। इसलिए यह आवश्यक होगा कि हम अपनी विकास योजनाओं को जिला स्तर और पंचायत, ग्राम पंचायतों के स्तर पर चलाएं। इससे विकास की गति और अधिक सक्षम होगी। कृषि विकास के साथ-साथ गैर कृषि कार्यक्रमों पर भी अधिक ध्यान देना होगा ताकि श्रम की महत्ता को प्रमाणित किया जा सके। यह तभी संभव हो पाएगा जब हमारे गांव आत्मनिर्भर बनें। हमें यह मानना होगा कि हमारे गांवों में बहुत बड़ी जन शक्ति विद्यमान है। ग्रामीण जनों में श्रम के प्रति गहरी आस्था है, किन्तु काम के अभाव में वे अपनी श्रम शक्ति का उपयोग पूरी तरह से नहीं कर पाते। इसके अलावा गरीब लोगों के विकास के लिए जो परियोजनाएं चलाई जाती हैं, उनकी पूरी जानकारी के अभाव में वे लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं। यदि हमें सही मायने में कमजोर वर्ग का विकास करना है और उन्हें सामाजिक न्याय दिलाना है तो समुचित आर्थिक परिस्थितियां और रोजगार के नए अवसर पैदा करने होंगे। गांवों में शिक्षा, स्वास्थ्य, साफ पानी, रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताएं पूरी करनी होंगी, ताकि निर्धन परिवारों का जीवन स्तर ऊपर उठ सके। इस दिशा में अब तक की परियोजनाओं और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की उपलब्धियों के जो आंकड़े उभर कर सामने आए हैं वे हमारी प्रगति के परिचायक तो हैं किन्तु रोजगार देने के प्रयास जनसंख्या की वृद्धि के कारण प्रभावहीन हो जाते हैं।

हमारे आंकड़े बताते हैं कि हमारे देश में 40 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे रहती है। इस 40 प्रतिशत आबादी में प्रतिवर्ष एक करोड़ 70 लाख अर्थात् 60 प्रतिशत की जनसंख्या के कारण वृद्धि हो जाती है। परिणामस्वरूप सभी को रोजगार देने की कल्पना साकार नहीं हो पाती। यही कारण है कि हमारे देश में प्रति व्यक्ति की आय बहुत कम है। जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण पाने से ही प्रति व्यक्ति की आय में वृद्धि संभव हो सकती है। इसके बावजूद योजनाबद्ध तरीके से हम विकास के पथ पर अग्रसर हुए हैं और दृढ़ इच्छा शक्ति का परिचय दिया है। यही कारण है कि गरीबों की भलाई के लिए अब तक की योजनाएं उनके लिए वरदान सिद्ध हुई हैं। वर्ष 1989-90 के काल खंड पर ही नजर दौड़ाई जाए तो हम पाएंगे कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत ही 19.96 लाख परिवारों को सहायता उपलब्ध कराई गई जबकि वार्षिक लक्ष्य 29.9 लाख परिवारों को सहायता पहुंचाने का था। ग्रामीण विकास के तहत चलाई जा रही परियोजनाओं की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि इन परियोजनाओं में ग्रामीण जन भी शामिल हो। वह भी अपनी जिम्मेदारी समझें। इसके लिए स्वयंसेवी और गैर सरकारी संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन संस्थाओं के सहयोग से परियोजनाओं और जरूरतमंद लोगों को लाभ मिल सकता है। अतः कापार्ट की स्थापना की गई। लोक कार्यक्रम तथा ग्राम टेक्नोलाजी विकास परिषद (कापार्ट) के माध्यम से विकास परियोजनाओं को जनता की भागीदारी से क्रियान्वित करने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं को तकनीकी और वित्तीय सहायता दी जाती है। आवश्यकता इस बात की है कि वित्तीय सहायता का सही उपयोग ईमानदारी के साथ किया जाए। इस बात का मूल्यांकन अपेक्षित है कि जरूरतमंद लोगों को वास्तव में जो सहायता या राहत पहुंचाई गई है, वह उन तक पहुंची भी है या नहीं तथा जिस संदर्भ में उन्हें सहायता पहुंचाई गई उसका उपयोग वे किस प्रकार कर रहे हैं। ग्रामीण विकास की परियोजनाओं में आम आदमी की भागीदारी से वे भी अपनी जिम्मेदारी महसूस करेंगे।

यदि हमें सही मायने में कमजोर वर्ग का विकास करना है और उन्हें सामाजिक न्याय दिलाना है तो समुचित आर्थिक परिस्थितियां और रोजगार के नए अवसर पैदा करने होंगे। गांवों में शिक्षा, स्वास्थ्य, साफ पानी, रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताएं पूरी करनी होंगी, ताकि निर्धन परिवारों का जीवन स्तर ऊपर उठ सके। इस दिशा में अब तक की परियोजनाओं और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की उपलब्धियों के जो आंकड़े उभर कर सामने आए हैं वे हमारी प्रगति के परिचायक तो हैं किन्तु रोजगार देने के प्रयास जनसंख्या की वृद्धि के कारण प्रभावहीन हो जाते हैं।

विकास के बढ़ते चरण

इस प्रकार ग्रामीण विकास की परियोजनाओं और कार्यक्रमों को और अधिक प्रभावी बनाने की दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं ताकि हम इस देश में गरीबी के कलंक को मिटा सकें और लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठा सकें। इसलिए हमारे योजनाकार और हमारी सरकार ग्रामीण विकास पर अब विशेष ध्यान देने लगी है। योजना राशि का आधा भाग ग्रामीण और कृषि क्षेत्रों के विकास पर खर्च करने की बात सोची गई है। आठवीं योजना में समग्र ग्रामीण विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। नवीन आंकड़ों के अनुसार हमारे देश में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वालों की संख्या 23 करोड़ 76 लाख 70 हजार बताई गई है। सरकारी आंकलन के अनुसार गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या वर्ष 1989-90 में घटकर 21 करोड़ 10 लाख रह जानी चाहिए थी। 1984-85 में ये 27 करोड़ 30 लाख लोग गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन करने को विवश थे। इस विवशता की पीड़ा को समझते हुए सरकार ने अगले दस वर्षों में 10 करोड़ लोगों को रोजगार देने का लक्ष्य निर्धारित किया है। इसके अनुसार प्रतिवर्ष एक करोड़ बेरोजगार लोगों को रोजगार देने का संकल्प लिया गया है। इसके अलावा गांवों में पीने के पानी की गंभीर समस्या के निवारण के लिए सरकार ने दो वर्ष की अवधि में दो अरब 50 करोड़ रुपये का विशेष आवंटन किया है। यह आवंटन उन 15 राज्यों में जहां 5182 ऐसे गांव हैं जहां पीने के पानी का एक भी स्रोत नहीं है, खर्च किया जाएगा। इस प्रकार अब तक की ग्रामीण विकास की दिशा में हुई उपलब्धियां हमारे सपनों को साकार करती हुई ग्रामीण परिवेश में संभावनाओं एवं परिवर्तन के नए द्वार खोलती दिखाई देती हैं।

65/88, सेक्टर तीन,
गोल मार्किट, दिल्ली

वन एवं पर्यावरण विभाग, बिहार

1– मनुष्य इस पृथ्वी का सबसे प्रबुद्ध जीव है अतः इसकी रक्षा करना उसका परम कर्त्तव्य है।

2– यह उसका पुनीत कर्त्तव्य है कि इसके उपलब्ध साधनों का उपयोग पूर्ण विवेक से करे।

3– इसके साधनों का उपयोग अतिलोलुपता से नहीं करते हुए इसका संरक्षण आने वाले पीढ़ी के लिये करे।

4– आत्मसंयम जीवन का श्रेष्ठतम मार्ग है, उसकी अवहेलना निःसंदेह घातक होगी।

5– बाढ़ एवं सुरक्षा की विभीषिका अत्यधिक बढ़ जाएगी। पर्यावरण इतना प्रदूषित हो जाएगा कि सृष्टि के विनाश का कारण होगा।

6– इस पृथ्वी की सृष्टि केवल मानव के लिए ही नहीं हुई है। इस पर वन और वन्य जीवों का बराबर अधिकार है।

7– यह कभी न भूलें कि पौधों एवं जीव जन्तुओं का उद्‌भव इस धरा पर पहले हुआ था। उन्होंने ही अनुकूल परिस्थितियां पैदा कीं जिससे मानव का इस धरा पर विकास हुआ। आज भी उनका महत्व अक्षुण्ण बना हुआ है।

8– वृक्ष लगाएं। वन एवं वन्य जन्तुओं की रक्षा करें एवं इस धरा को पारिस्थितिक असन्तुलन से बचाएं।

सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, बिहार द्वारा प्रसारित :
सू० ज० स० वि० 67 स० (सू-57) 1991-92

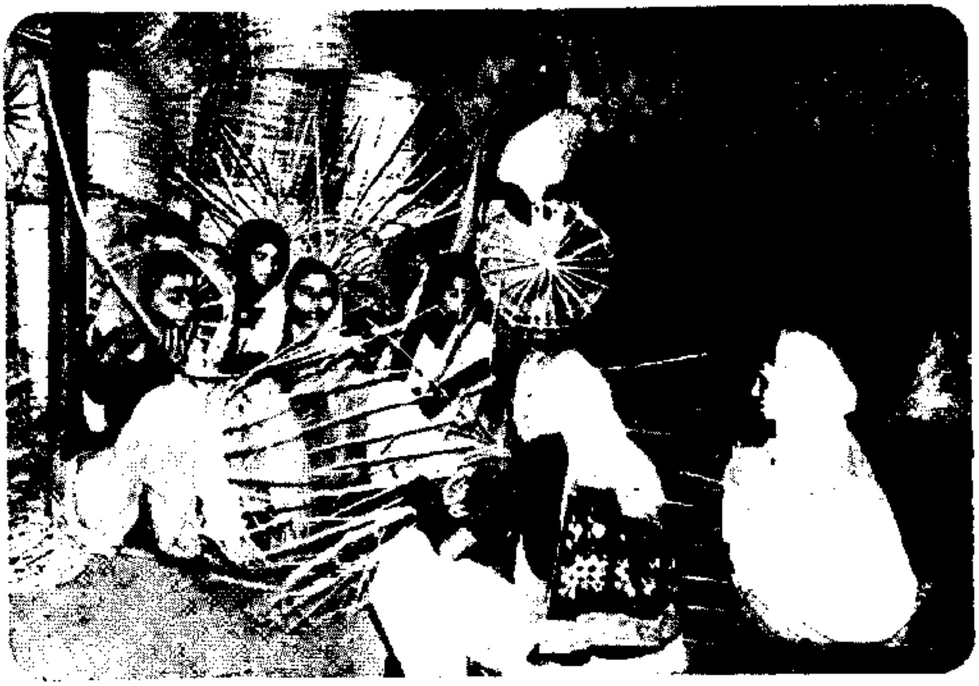

ग्रामीण विकास धीमा क्यों ?

ग्रामीण वि
क्रियान्वित
विभिन्न

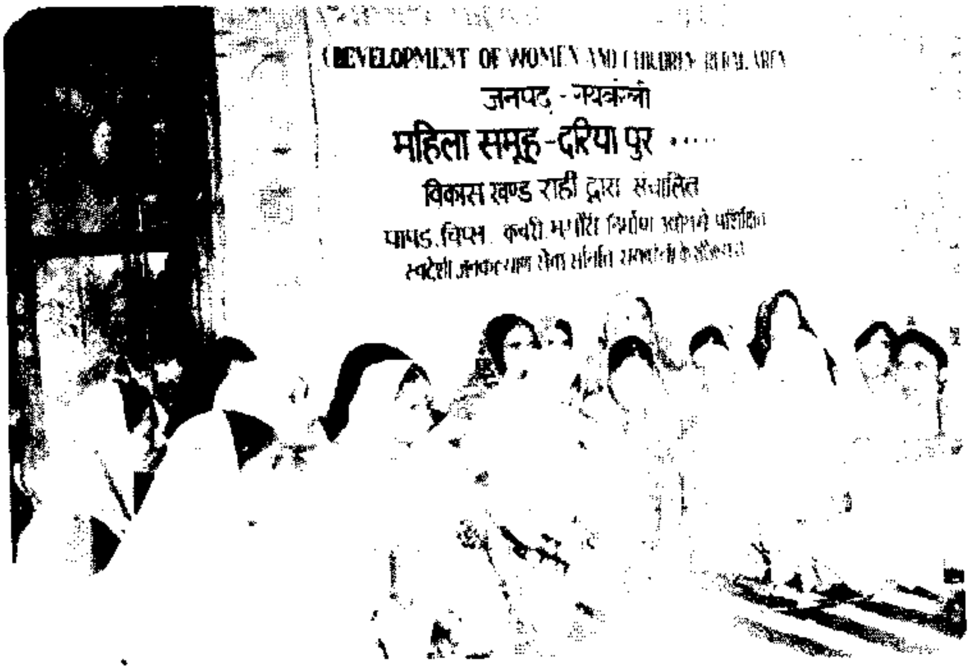

ग्रामीण विक

स के लिए
की जा रही
ोजनाएँ

धीमा क्यों ?

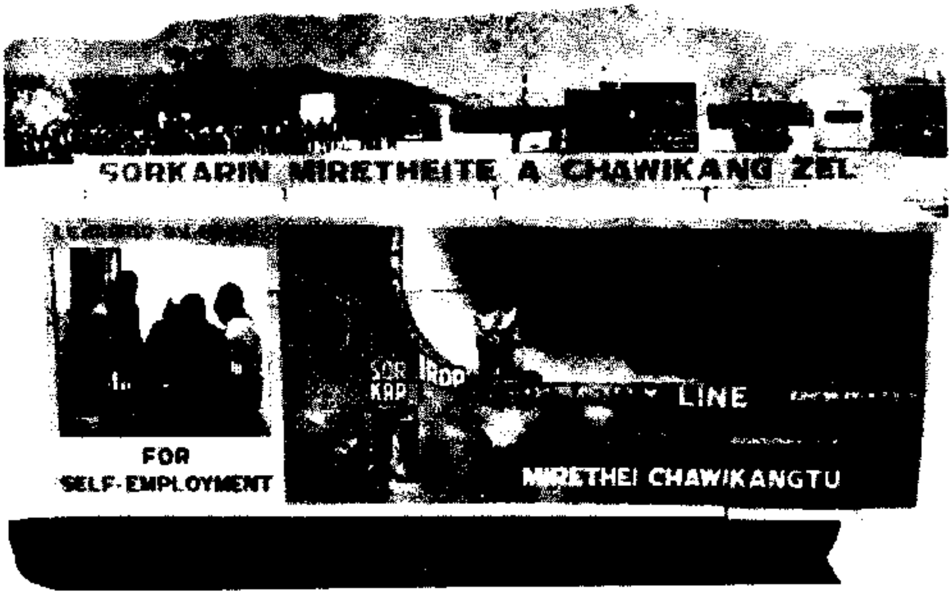

ग्रामीण विकास धीमा क्यों ?

ग्रामीण विकास कार्यक्रम—पुनर्निरीक्षण

दीपक भल्ला

इस लेख में ग्रामीण विकास कार्यक्रम के असंतोषजनक परिणाम तथा उनके कारणों की विस्तार से चर्चा की गई है। लेखक का मत है कि इन कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए खासतौर पर ब्लाक स्तर पर अलग से हर कार्यक्रम के लिए निपुण कार्यकर्ताओं को लगाना चाहिए जो कि युवा पीढ़ी से हों, क्योंकि वह इन कार्यक्रमों को अधिक उत्साह व परिश्रम से चला सकते हैं। उद्देश्यों को भली-भांति तथा सफलता से पूर्ण करने पर उन्हें एक निश्चित राशि इनाम के रूप में देने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। उनका मत है कि ट्राइसेम कार्यक्रम में यह सुनिश्चित किया जाए कि प्रशिक्षण संस्थाओं में योग्य तथा प्रशिक्षित प्रशिक्षकों से प्रशिक्षण दिलाया जाए तथा प्रशिक्षण की आधुनिक तकनीकों व साधनों का प्रयोग किया जाए। यह भी आवश्यक है कि जिस क्षेत्र में लोग कार्यरत हैं वे उन स्थानों की भाषा से भी परिचित हों जिससे उनके कार्य को सुचारु रूप से चलाने में किसी प्रकार बाधा न आए।

गरीबी दूर करने के लिए सरकार की नीति में ग्रामीण विकास पर बल दिया गया। आरम्भिक पंचवर्षीय योजनाओं में सामुदायिक विकास पर जोर दिया गया लेकिन बाद की योजनाओं में क्षेत्र विकास कार्यक्रमों पर जोर दिया जाने लगा। छठी योजना से स्वरोजगार और मजदूरी वाले कार्यक्रम चलाए गए। स्वरोजगार कार्यक्रम में प्रायः पैदा करने वाली परिसम्पत्तियों के निर्माण के लिए ऋण और आर्थिक सहायता प्रदान की गई। मजदूरी वाले रोजगार कार्यक्रमों के मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं की कमी को दूर करना तथा काम की तलाश करने वाले ग्रामीण निर्धन लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना रहा। अनुसूचित जातियों और जनजातियों को विशेष लाभ देने के प्रयास किए गए। इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत इन की बस्तियों में ऐसे मकान बनाने का कार्यक्रम चलाया गया जिनमें पानी और स्वच्छता जैसी सुविधाओं की व्यवस्था हो। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में महिलाओं को लाभ पहुंचाने पर विशेष बल दिया गया। स्वरोजगार तथा मजदूरी वाले कार्यक्रमों के अंतर्गत महिला लाभार्थियों के लिए विशेष लक्ष्य रखे गए और महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम जैसे विशिष्ट प्रोग्राम चलाए गए। ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं के योगदान को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 1986 में कार्पाट की स्थापना की गई जिसके माध्यम से ग्रामीण विकास कार्यों के लिए इन संस्थाओं को धन उपलब्ध करवाया गया।

फरवरी 1989 में जवाहर रोजगार योजना की घोषणा की गई जिसमें पहले से चले आ रहे सभी ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों का विलय कर दिया गया। इस योजना का उद्देश्य गांव में गरीब बेरोजगार लोगों को उनके घर के पास ही रोजगार उपलब्ध कराना है। सूखा-ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम देश के उन भागों में 1973 से लागू है जहां भूमि के कटाव, हरियाली और पानी की कमी जैसे कारणों से पर्यावरण बिगड़ रहा है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य भूमि और जल संसाधनों के समुचित विकास के जरिए क्षेत्र में पर्यावरण संतुलन फिर से कायम करना है। यह कार्यक्रम देश के 615 ब्लाकों में चलाया जा रहा है। मरुभूमि विकास कार्यक्रम 1977-78 में चलाया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य मरुस्थल के आगे बढ़ने की प्रक्रिया पर रोक लगाना और पर्यावरण संतुलन फिर से कायम करना है। यह कार्यक्रम देश के 131 ब्लाकों में चल रहा है। ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार देने के लिए 1979 को एक योजना चलाई जिसे 'ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राइसेम) कहते हैं।

इन सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों के माध्यम से लागू किया जाता है। निचले स्तर पर ब्लाक तथा दूसरे संबंधित विभागों के कर्मचारी इन कार्यक्रमों को चलाते हैं। जिला स्तर पर ग्रामीण विकास एजेन्सियों का मार्ग दर्शन करने के लिए एक प्रबंध संस्था बनाई जाती है। ग्रामीण विकास पर योजनाकार, अब विशेष ध्यान

देने लगे हैं और ग्रामीण क्षेत्रों के लाभ के लिए योजना राशि का आधा हिस्सा ग्रामीण विकास पर खर्च करने का निश्चय किया गया है। यह एक महत्वपूर्ण कदम है पर सरकार को यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि इस राशि का पूरा-पूरा लाभ ग्रामीणों तक पहुंच सके। इस बात से सरकार खुद चिंतित है कि अभी तक चल रही ग्रामीण विकास योजनाओं का लाभ सही ढंग से ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं पहुंच सका। इसके कई कारण हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है :

जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी तथा उसकी कार्य प्रणाली

सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रम जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों के माध्यम से लागू किए जाते हैं। इस एजेन्सी को यह कार्यक्रम चलाने के लिए विभिन्न जिला स्तरीय विकास विभाग तथा निचले स्तर पर ब्लाक के कर्मचारियों पर निर्भर करना पड़ता है। इन विभिन्न विभागों को अपने निदेशालय द्वारा एक सम्पूर्ण कार्यक्रम हर वर्ष दिया जाता है जिसको पूरा करना वह पहले जरूरी समझते हैं, क्योंकि जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी का अध्यक्ष जिला उपायुक्त अथवा और कोई उच्च अधिकारी होता है, इसलिए उसके आदेश का पालन इन विभागों के सम्बंधित अधिकारी कर्मचारी अनचाहे दिल से करते हैं। यहीं से इन कार्यक्रमों को चलाने के लिए दरार पड़नी शुरू हो जाती है। यह दरार न पड़े और विकास कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न हो इसके लिए यह आवश्यक है कि हर विकास कार्यक्रम को चलाने के लिए जिला व ब्लाक स्तर पर उस कार्यक्रम को चलाने के लिए अलग से अधिकारी व कर्मचारी लगाने चाहिए। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि हर विशेष कार्यक्रम के लिए सही अधिकारी/कर्मचारी का चयन हो जो कि उस कार्यक्रम के उद्देश्यों को उत्साहपूर्वक पूरा कर सकें।

अभी तक सरकार इन विभिन्न विकास कार्यक्रमों को चलाने के लिए ब्लाक एवं पंचायत अधिकारी और उसके कर्मचारियों (ग्रामीण स्तरीय कर्मचारी, महिला सेविका इत्यादि) पर निर्भर करती रही है जो कि एक गलत निर्णय है। यहां यह कहना उचित होगा कि इस कार्य प्रणाली से सरकार नए अधिकारियों/कर्मचारियों को लगाने का खर्चा तो बचा सकी परन्तु इन विशेष कार्यक्रमों का उद्देश्य और लाभ ग्रामीणों तक नहीं पहुंचा सकी। यह इसलिए हुआ कि ब्लाक स्तरीय अधिकारियों और कर्मचारियों का ध्येय केवल लक्ष्य पूर्ति रहा है।

उदाहरण के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण परिवारों को आर्थिक सहायता और अनुदान देना ही लक्ष्य रहा। अधिकतर यह देखा गया कि सम्बंधित कार्यकर्ताओं ने यह जानने की कोशिश नहीं की, कि इस आर्थिक सहायता का लाभ ग्रामीणों ने सही कार्यक्रमों में किया कि नहीं। ऐसा ही दूसरे विशेष कार्यक्रमों के चलाने में देखा गया है। इससे यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि सम्बंधित अधिकारी/कर्मचारी इन कार्यक्रमों को सही ढंग से नहीं चलाना चाहते। उनकी कठिनाई यह है कि अपने निदेशालयों से मिले कार्यक्रमों के साथ-साथ इन विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को समझना और उन्हें लागू करना उनके दायरे से बाहर है। इसलिए यहां फिर दोहराया जाता है कि यदि सरकार ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए सम्बंधित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का लाभ ग्रामीणों तक पहुंचाना चाहती है तो उसे विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत अलग से अधिकारी/कर्मचारी लगाने होंगे जो कि उन कार्यक्रमों के उद्देश्यों को भली-भांति समझते हों और उत्साहपूर्वक उन कार्यक्रमों का लाभ ग्रामीणों तक पहुंचाने में रुचि रखते हों।

कार्यकर्ताओं का चयन

इन विकास कार्यक्रमों का लाभ ग्रामीणों तक तभी पहुंच सकता है जबकि विभिन्न कार्यक्रमों के लिए सही कार्यकर्ताओं का चुनाव हो। इसके लिए यह जरूरी है कि इनका चयन करते समय यह देखा जाए कि वह उस कार्यक्रम के विभिन्न तकनीकी

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम गांवों में गरीबी दूर करने का मुख्य कार्यक्रम रहा है इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ चुने हुए परिवारों को इस योग्य बनाना है कि वे गरीबी की रेखा से ऊपर आ जाएं। यह उद्देश्य प्राप्त करने के लिए निर्धारित वर्ग के लोगों को उत्पादक परिसम्पत्तियां और निवेश की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है।

कार्यक्रमों से परिचित हों और ग्रामीणों तक उस कार्यक्रम के उद्देश्यों का लाभ पहुंचाने की क्षमता रखते हों। यहां यह सुझाव दिया जाता है कि इन कार्यकर्ताओं का चुनाव युवा पीढ़ी से हो क्योंकि वह इन कार्यक्रमों को अधिक उत्साह व परिश्रम से चला सकते हैं। इन को मासिक वेतन पर रखा जा सकता है और साथ ही यदि वह उद्देश्यों को भली-भांति पूर्ण करते हैं तो उन्हें एक निश्चित राशि इनाम के रूप में देने की व्यवस्था की जा सकती है। इससे उन्हें कार्यक्रमों को भली-भांति करने का प्रोत्साहन मिलेगा और सरकार के विभिन्न विकास कार्यक्रमों के उद्देश्यों की पूर्ति भी हो सकेगी।

ऋणों एवं अनुदान की पद्धति

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम गांवों में गरीबी दूर करने का मुख्य कार्यक्रम रहा है इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ

चुने हुए परिवारों को इस योग्य बनाना है कि वे गरीबी की रेखा से ऊपर आ जाएं। यह उद्देश्य प्राप्त करने के लिए निर्धारित वर्ग के लोगों को उत्पादक परिसम्पत्तियां और निवेश की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है।

यह परिसम्पत्तियां वित्तीय सहायता के माध्यम से उपलब्ध कराई जाती हैं। यह वित्तीय सहायता सरकार द्वारा दिए गए अनुदान और वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋणों के रूप में होती है। यह सहायता उन ग्रामीण परिवारों को दी जाती है जिनकी वार्षिक आय 4800 रुपये तक है। इससे लाभान्वित होने वालों में छोटे और सीमान्त किसान, कृषि मजदूर तथा ग्रामीण दस्तकार शामिल हैं। इस कार्यक्रम में यह व्यवस्था की गई है कि जिन परिवारों को सहायता दी जाए उनमें से कम से कम 30% परिवार अनुसूचित जातियों और जनजातियों के हों और सहायता प्राप्त करने वालों में कम से कम 30% महिलाएं हों।

सरकार का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम होने के बावजूद इसका लाभ ग्रामीणों ने पूरी तरह नहीं उठाया और इस कार्यक्रम के उद्देश्यों की सही पूर्ति न हो सकी। इसका दोष उन कार्यकर्ताओं पर जाता है जिन्होंने उत्पादक परिसम्पत्तियों का सही ज्ञान ग्रामीणों को नहीं दिया और लक्ष्य पूर्ति के लिए ऋण और अनुदान दिलाने पर ज्यादा बल दिया। यहां यह भी कहना उचित होगा कि ब्लाक कर्मचारियों को उत्पादक परिसम्पत्तियों का पूर्ण ज्ञान ही नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकतर ग्रामीणों में यह धारणा सुदृढ़ हो गई कि यह विकास कार्यक्रम ऋण और अनुदान देने का ही है और उन्होंने सरकार द्वारा दी गई वित्तीय सहायता उत्पादक परिसम्पत्तियों में न लगाकर अपने घरेलू उपयोग में लगा दी। यही एक मुख्य कारण है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का उद्देश्य सही ढंग से पूरा न हो सका। इस कार्यक्रम को सफल बनाना अब सरकार के लिए काफी जटिल होगा।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं तथा बच्चों का विकास कार्यक्रम

यह ग्रामीण महिलाओं तथा बच्चों के विकास का विशेष कार्यक्रम है इसके अंतर्गत महिलाओं को सामूहिक रूप से ठोस आर्थिक काम-काज अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इससे परिवार की सामूहिक आय बढ़ सकेगी जिससे महिलाएं अपने बच्चों को बेहतर पौष्टिक आहार, शिक्षा और कपड़े आदि की आसानी से पूर्ति कर सकेंगी। इस कार्यक्रम का सबसे जटिल काम है समूह बनाना तथा सही उत्पादक रोजगारों का चुनाव करना। इस कार्यक्रम में भी समूह बनाने के लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं और इसकी जिम्मेदारी ग्राम सेविका को दी गई है। आमतौर पर यह देखा गया है कि लक्ष्य पूर्ति के लिए ग्राम सेविकाएं कम समय में समूह बना लेती हैं। जल्दी में समूह बनाने से एक विचारधारा की महिलाओं का समूह नहीं बन पाता और काम-काज शुरू करने से पहले ही समूह बिखरने लगता है। महिलाओं का समूह में भाग लेना उनके पति व बड़े बुजुर्गों पर भी निर्भर करता है क्योंकि कुछ पुरुष महिलाओं को इस कार्यक्रम में शामिल होने के लिए बढ़ावा नहीं देते। कुछ महिलाएं भी सरकारी कार्यक्रमों में अपने आप को शामिल करने में भय महसूस करती हैं। उनके छोटे बच्चों की देखभाल की सुविधा घर में न होने के कारण वह चाहने पर भी समूह की सदस्य नहीं बन पातीं। अनुसूचित जातियों व जनजातियों का समूह बनाना और भी जटिल कार्य है क्योंकि इनमें से काफी महिलाएं दिहाड़ी पर काम करती हैं और वह हर रोज की आमदनी छोड़ने में दिक्कत महसूस करती हैं। कई समूह सही उत्पादक रोजगार का चुनाव करने पर भी सही ढंग से अधिक समय तक न चल सके क्योंकि उनके माल की बिक्री का उचित प्रबंध न हो सका। कुछ समूहों द्वारा बनाया गया माल मार्किट में मिल रहे माल से अच्छा न होने के कारण नहीं बिक पाता। इस कार्यक्रम को सही ढंग से चलाने के लिए यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि समूह सही ढंग से बनाए जाएं। इस बात पर भी बल देना पड़ेगा कि समूह द्वारा बनाया गया माल अच्छी किस्म का हो पर उसकी बिक्री के उचित प्रबंध किए जाएं।

ग्रामीण युवाओं के लिए स्व-रोजगार कार्यक्रम (ट्राइसेम)

इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य गांवों में उन परिवारों के 18-35 वर्ष की आयु के युवकों-युवतियों में तकनीकी कौशल विकसित करना है। यह युवक उन परिवारों से सम्बंध रखते हों जो गरीबी की रेखा से नीचे हैं। इससे वह कुछ हद तक अपना काम-धंधा शुरू करने लायक बन सकें और किसी भी आर्थिक क्षेत्र में नौकरी पा सकें। यह आवश्यक है कि जिन युवकों को प्रशिक्षण दिया जाए उनमें से कम से कम 50 प्रतिशत युवक अनुसूचित जाति/जनजाति के हों तथा कम से कम 40 प्रतिशत महिलाएं हों। इस प्रशिक्षण की अवधि आमतौर पर 6 महीने से अधिक नहीं होनी चाहिए। प्रशिक्षण काल के समय प्रशिक्षण पाने वालों को 250 रुपये प्रति मास जेब खर्च दिया जाता है यदि वह प्रशिक्षण अपने गांव से बाहर लेते हैं और उनके रहने की व्यवस्था की जाती है। यदि रहने की व्यवस्था न की जा सके तो उन्हें 300 रुपये प्रति मास जेब खर्च दिया जाता है।

इस कार्यक्रम की सबसे बड़ी जटिल समस्या सही प्रशिक्षणार्थियों का चुनाव करना है जो कि अपना काम-धंधा

शुरू कर सकते हों क्योंकि यह देखा गया है कि कई युवक-युवतियां इस कार्यक्रम में मासिक जेब खर्च मिलने की वजह से ही शामिल होना चाहते हैं। इसके साथ ही सही प्रशिक्षण देना भी आवश्यक है ताकि यह युवक-युवतियां प्रशिक्षण के माध्यम से प्राप्त ज्ञान तथा कुशलता का उपयोग अपने उद्योग धंधों तथा व्यवसाय में आसानी से कर सकें। यह कार्य इतना आसान नहीं है जितना समझा जाता है क्योंकि अधिकतर प्रशिक्षणर्थी अनुसूचित जाति/जनजातियों से सम्बंध रखते हैं तथा युवतियां भी उन परिवारों से सम्बंध रखती हैं जो कि गरीबी रेखा से नीचे हैं तथा यहां अशिक्षा का बोल-बाला है। ऐसी स्थिति में प्रभावी प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

इन विभिन्न विकास कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए सरकार को कई ठोस कदम उठाने होंगे। इनका लाभ ग्रामीणों तक पहुंचाने के लिए हुए कार्यक्रम में ब्लाक स्तर पर अलग से कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। यह कार्यकर्ता ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाने में निपुण होने चाहिए तथा इन्हें उस कार्यक्रम के विभिन्न तकनीकी पहलुओं का भी ज्ञान होना चाहिए।

यह देखने में आया है कि इस योजना के अंतर्गत दिया जाने वाला प्रशिक्षण अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में मात्र औपचारिकता ही है। प्रशिक्षण प्रदान करने वाली संस्थाओं में प्रशिक्षण की आधुनिक तकनीकों व साधनों का प्रयोग नहीं होता है। अधिकांश स्थानों पर योग्य तथा प्रशिक्षित प्रशिक्षक भी उपलब्ध नहीं हैं। इस कारण योजना के अंतर्गत आने वाले युवक-युवतियों को कार्य का प्रभावी प्रशिक्षण नहीं मिल पाता। जो युवक-युवतियां प्रशिक्षण के बाद अपना काम-धंधा शुरू करना चाहते हैं, उनमें से अधिकतर को बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं से ऋण तथा अनुदान की प्राप्ति में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा जिन उत्पादों का यह निर्माण करते हैं, उनके बेचने में भी गंभीर समस्या है क्योंकि इनके साधन सीमित हैं और विपणन प्रणाली का ज्ञान भी नाम मात्र है।

निष्कर्ष

इन विभिन्न विकास कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए सरकार को कई ठोस कदम उठाने होंगे। इनका लाभ ग्रामीणों तक पहुंचाने के लिए हुए कार्यक्रम में ब्लाक स्तर पर अलग से कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। यह कार्यकर्ता ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाने में निपुण होने चाहिए तथा इन्हें उस कार्यक्रम के विभिन्न तकनीकी पहलुओं का भी ज्ञान होना चाहिए। सरकार को यह बात समझनी चाहिए कि यही एक कार्यक्रम किसी जिला/ब्लाक में असफल हो जाता है तो उसे दुबारा सफल बनाना बड़ा मुश्किल होता है और यदि एक कार्यक्रम असली रूप से सफल हो जाता है तो उसे दूसरे ग्रामीण बड़ी आसानी से बिना सरकारी अनुदान के भी अपनाने लगते हैं। यहां यह उदाहरण दिया जाता है कि किसानों ने विभिन्न कृषि यंत्र जैसे थ्रैशर, चारा काटने व बिजाई की मशीनें आदि अपनाई क्योंकि उन्होंने इन्हें अपनाने योग्य समझा।

इसलिए दुबारा इस बात पर बल दिया जाता है कि चाहे सरकार को इन कार्यक्रमों के लक्ष्यों को कम करना पड़े एवं कम ब्लाकों में काम चलाना पड़े परन्तु इन्हें सही ढंग से चलाने के लिए निपुण कार्यकर्ताओं का चयन करना आवश्यक होगा जो गांव की परिस्थितियों में ग्रामीणों से घुल-मिल कर और गांव में रहकर काम कर सकें। यदि युवा पीढ़ी से निपुण कार्यकर्ता लिए जाते हैं तो वह इन कार्यक्रमों को अधिक उत्साह व परिश्रम से चला सकेंगे। इनको अच्छा मासिक वेतन देकर रखा जा सकता है और यदि वह उद्देश्यों को भली-भांति पूर्ण करते हैं उन्हें एक निश्चित राशि इनाम के रूप में देने की भी व्यवस्था की जा सकती है।

विभिन्न कार्यक्रमों का मूल्यांकन बाहरी प्रसिद्ध संस्थाओं के सहयोग से समय-समय पर होना आवश्यक है। जरूरी नहीं कि ये संस्थाएं सरकारी हों।

ट्राइसेम कार्यक्रम में यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि प्रशिक्षण संस्थाओं में योग्य तथा प्रशिक्षित प्रशिक्षकों से प्रशिक्षण दिलाया जाए तथा प्रशिक्षण की आधुनिक तकनीकों व साधनों का प्रयोग किया जाए।

डवाकरा तथा ट्राइसेम योजना के अंतर्गत प्रशिक्षण प्राप्त युवक-युवतियां जिन उत्पादों का निर्माण करते हैं, उनके विपणन की भी अधिकतर गंभीर समस्या होती है। इसका भी सरकार को हल ढूंढना होगा।

सह प्राध्यापक (विस्तार),
कृषि इंजीनियरी, हरियाणा कृषि विश्व विद्यालय
कृषि ज्ञान केन्द्र, पलवल (फरीदाबाद), हरियाणा

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन की जरूरत

प्रो. जे. पी. यादव

ग्रामीण विकास के लिए बने कार्यक्रमों के कुशल और प्रभावी क्रियान्वयन के बिना गांवों में व्याप्त गरीबी और पिछड़ापन दूर करना असंभव है। प्रस्तुत लेख में जे. पी. यादव ने अब तक शुरू किए गए ग्रामीण विकास कार्यक्रमों और योजनाओं की संक्षिप्त चर्चा करते हुए उन उपायों पर प्रकाश डाला है जिनके जरिए इन कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन किया जा सकता है। प्रोफेसर यादव का कहना है कि सरकार के दृढ़ संकल्प, क्रियान्वयन से जुड़े लोगों की निष्ठा और जनता के पूर्ण सहयोग पर ही ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता निर्भर है। उनका कहना है कि अब समय आ गया है कि धन का 'लागत-लाभ-विश्लेषण' किया जाए। पिछली सभी योजनाओं का मूल्यांकन किया जाना चाहिए और आगे के लिए उन योजनाओं में लोगों की सक्रिय भागीदारी भी सुनिश्चित होनी चाहिए।

गांव हमारे देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। गांवों के विकास के बिना देश का विकास संभव नहीं है। अतः आजादी के बाद सरकार ने गांवों के उत्थान पर विशेष ध्यान दिया है। पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी गई है। पिछले चार दशकों में अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए। 2 अक्तूबर 1952 को 'सामुदायिक योजना' शुरू की गई। इस कार्यक्रम का उद्देश्य गांवों का सर्वांगीण विकास करना था। इस योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, पशुपालन, सिंचाई, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, संचार, सहकारिता, ग्रामीण उद्योग आदि पर विशेष ध्यान दिया गया।

1960-61 में 'रूरल मैन पावर प्रोग्राम' देश के चुने हुए 32 सामुदायिक विकास खण्डों में शुरू किया गया। कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र के बेरोजगारों को रोजगार दिलाना था। पर्वतीय व जनजातीय क्षेत्रों के विकास हेतु 1962 में 'पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम' व 1964 में 'ट्राइबल एरिया डेवलपमेंट कार्यक्रम' शुरू किए गए। 2 अक्तूबर 1963 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम की पूरक योजना के रूप में 'राष्ट्रीय प्रसार योजना' शुरू की गई। 1969 में 'लघु कृषक विकास अभिकरण' तथा 'सीमान्त कृषक व कृषि श्रमिक अभिकरण' स्थापित किए गए। इनका उद्देश्य छोटे किसानों व कृषि श्रमिकों को आय व रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराना था। 2 अक्तूबर 69 से गैर-कुशल श्रमिकों को काम उपलब्ध कराने के लिए गुजरात में 'काम करने का अधिकार' योजना शुरू की गई। साठ के दशक में इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त कृषि के विकास हेतु सघन कार्यक्रम भी शुरू किए गए।

1970 के दशक में लोगों की आय बढ़ाने व रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से अनेक कार्यक्रम हाथ में लिए गए। सूखे की संभावना वाले क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराने के लिए 1970-71 में 'सूखा संभावित-कार्यक्रम' तथा रोजगार-विहीन लोगों को रोजगार देने के लिए 1971 में 'ग्रामीण रोजगार के लिए शीघ्रगामी कार्यक्रम' शुरू किए गए। 1 मई 1972 से महाराष्ट्र में 'रोजगार गारंटी परियोजना' चालू की गई। शीघ्र फल देने वाली श्रम-प्रधान तथा उत्पादक ग्रामीण विकास परियोजनाओं को पोषित करने हेतु केरल के अर्नाकुलम जिले में जुलाई 1973 में 'केरल श्रम बनाम विकास बैंक' योजना शुरू की गई। 1974 में 'न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम' शुरू किया। इसका उद्देश्य सामाजिक महत्व की बुनियादी सुविधाओं तथा ग्रामीण आर्थिक ढांचे के लिए आवश्यक काम करके ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना था। जुलाई 1975 में 20 सूत्री कार्यक्रम शुरू किया गया, 1982 व 1986 में इस कार्यक्रम में कुछ संशोधन किया गया। इसमें ग्रामीणों के कल्याण हेतु अनेक योजनाएं हाथ में ली गई हैं। 2 अक्तूबर 1977 से गांव के निर्धनतम लोगों की पहचान कर उनका उत्थान करने हेतु 'अन्त्योदय' योजना प्रारम्भ की गई। 1977 में 'काम के बदले अनाज कार्यक्रम' शुरू किया गया। इस योजना में गांवों में सार्वजनिक महत्व के निर्माण कार्य हुए। 1977-78 में मरुस्थल

के प्रसार को रोकने व वनों के विस्तार हेतु 'रेगिस्तान विकास कार्यक्रम' प्रारम्भ किया गया।

गांवों के निर्धनतम परिवार को आय बढ़ाने वाली परिसम्पत्तियां, उधार एवं अन्य आदान (Inputs) उपलब्ध करवाकर उन्हें निर्धनता रेखा से ऊपर उठाने के उद्देश्य से 1978-79 में 'समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम' शुरू किया गया। पहले से चल रहे 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम', 'लघु कृषक विकास अभिकरण', 'सीमान्त कृषक व कृषि श्रमिक अभिकरण' तथा 'सूखा संभावित कार्यक्रमों' को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में मिला दिया गया। अगस्त 1979 में 'ग्रामीण युवकों को स्व-रोजगार हेतु प्रशिक्षण' योजना शुरू की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण युवकों की बेकारी समाप्त करने तथा उन्हें स्व-रोजगार हेतु सक्षम बनाने के लिए आवश्यक कौशल तथा तकनीकी जानकारी प्रदान करना है।

अस्सी के दशक में 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार' तथा 'ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी' जैसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम शुरू किए गए। 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम' अक्तूबर 1980 में प्रारंभ किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य गांवों में रोजगार के अवसर बढ़ाना तथा बुनियादी सुविधाएं जुटाने के लिए स्थाई परिसम्पत्तियों का निर्माण करना है। 1983-84 में शुरू किए गए 'ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम' का उद्देश्य प्रत्येक भूमिहीन श्रमिक परिवार के कम से कम एक सदस्य को वर्ष में 100 दिन तक रोजगार उपलब्ध कराना, ग्रामीण आधारभूत ढांचे को सुदृढ़ बनाने के लिए स्थाई परिसम्पत्तियों का निर्माण कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास करना है। 1988-89 से 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम' तथा 'ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम' को मिलाकर 'जवाहर रोजगार योजना' शुरू की गई। इस योजना का उद्देश्य देश भर में ग्रामीण पंचायतों के हाथों में पर्याप्त धनराशि देना है, जिससे वे ग्रामीण गरीबों के हित में अधिक रोजगार योजनाएं चला सकें। इस योजना के माध्यम से प्रत्येक निर्धन ग्रामीण परिवार के कम से कम एक सदस्य को उसके घर के नजदीकी कार्यस्थल पर प्रतिवर्ष 50 से लेकर 100 दिनों तक का रोजगार देना है। इनमें 30 प्रतिशत रोजगार अवसर महिलाओं को दिए जाएंगे। इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त भी अनेक राज्यों ने कुछ कार्यक्रम शुरू किए हैं। राजस्थान में 1 जनवरी 1991 से 'अपना गांव अपना काम' योजना शुरू की गई है। इस योजना के माध्यम से गांवों में सार्वजनिक महत्व के निर्माण कार्य किए जाएंगे। निर्माण कार्यों के लिए 30 प्रतिशत राशि स्थानीय समुदाय, ग्रामीण पंचायत या पंचायत समिति उपलब्ध करायेगी तथा शेष 70 प्रतिशत राशि राज्य सरकार सम्बंधित ग्राम पंचायत समिति को उपलब्ध करायेगी।

योजनाबद्ध विकास के पिछले 4 दशकों में ग्रामीण विकास की इन योजनाओं से ग्रामीण क्षेत्र का मार्ग तो प्रशस्त हुआ है किन्तु विभिन्न योजनाओं पर खर्च की गई विशाल धनराशि की तुलना में जरूरतमंदों को कितना लाभ मिल पाया है? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

ग्रामीण क्षेत्रों के उत्थान के लिए सरकार ने अनेक वित्तीय संस्थाओं की स्थापना की है। 'राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक' (नाबार्ड) ग्रामीण विकास योजनाओं के लिए वित्त पोषण, समन्वय व नियंत्रण का कार्य करना है। पैक्स, केन्द्रीय सहकारी बैंक, शीर्ष सहकारी बैंक, भूमि विकास बैंक आदि संस्थाएं अल्प, मध्य, व दीर्घकालीन कृषि साख उपलब्ध कराते हैं। राष्ट्रीयकृत बैंक प्राथमिक क्षेत्र के लिए अधिक ऋण उपलब्ध कराते हैं। ग्रामीण बैंक ग्रामीणों व दूरदराज में रह रहे लोगों को वित्तीय सुविधा सुलभ करा रहे हैं। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (डी.आर.डी.ए.) द्वारा जिले की विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं का संचालन एवं नियंत्रण किया जाता है। पंचायत राज संस्थाओं (ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद्) को व्यापक अधिकार दिए गए हैं। लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास हेतु अनेक संस्थाएं कार्यरत हैं। 'ग्रामीण विद्युतीकरण निगम' ग्रामीण क्षेत्रों के लिए विद्युत परियोजनाओं को वित्त प्रदान करता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, चिकित्सा, यातायात, संचार सुविधाओं के विस्तार का कार्य किया गया है। इनके अतिरिक्त ग्राम अभिग्रहण योजना, अग्रणी बैंक योजना, बायो-गैस कार्यक्रम, बंधक श्रमिकों की मुक्ति एवं पुनर्वास, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के विकास की योजना आदि योजनाओं के माध्यम से भी ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का प्रयास किया गया है।

योजनाबद्ध विकास के पिछले 4 दशकों में ग्रामीण विकास की इन योजनाओं से ग्रामीण क्षेत्र का मार्ग तो प्रशस्त हुआ है किन्तु विभिन्न योजनाओं पर खर्च की गई विशाल धनराशि की तुलना में जरूरतमंदों को कितना लाभ मिल पाया है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, चिकित्सा, यातायात, संचार आदि के लिए किए गए अनेक प्रयासों के बाद भी अभी बड़ी संख्या में गांव इन आधारभूत सुविधाओं से वंचित हैं। साक्षरता के इतने प्रयासों के बाद भी गांवों में निरक्षरों की बड़ी तादाद है। बहुत से गांव अभी सड़कों से नहीं जुड़ पाए हैं। डॉक्टर बनकर निकलने वाले 80 प्रतिशत लोग शहरों में बस

जाते हैं जहां मात्र 20 प्रतिशत आबादी है। दूसरी ओर प्रति वर्ष 50 लाख व्यक्ति गांवों में उचित चिकित्सा व्यवस्था के अभाव तथा अन्य कारणों से मौत के शिकार हो जाते हैं। गरीबों व बेरोजगारों की विशाल संख्या है। पिछले चार दशक की ग्रामीण विकास की विकास यात्रा के मूल्यांकन से यह तथ्य सामने आता है कि परिमाणात्मक रूप से तो हमारी योजनाओं को सफल कहा जा सकता है किन्तु गुणात्मक रूप से इन्हें विशेष सफल नहीं कहा जा सकता है। विभिन्न कार्यक्रमों का लाभ अभी तक समस्त ग्रामवासियों के स्थान पर बिचौलियों, सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों की जेब में चला जाता है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने 15 अक्तूबर 1989 को अलीगढ़ में आम सभा को सम्बोधित करते हुए पंचायती राज और नगरपालिका विधेयकों के बारे में अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए ठीक ही कहा था—"ये विधेयक आवश्यक है, क्योंकि सरकारी योजनाओं के लाभ आम आदमी तक नहीं पहुंचते। योजनाओं के कुल मूल्य का केवल 15 प्रतिशत भाग ही वास्तविक लाभार्थियों तक पहुंच पाता है और शेष राशि लालफीताशाही के कारण बर्बाद हो जाती है।"

प्रो. राजकृष्ण के अनुसार—"सरकार द्वारा 1 रुपये की सहायता पहुंचाने पर 5 रुपये की लागत आती है। यह काम एकदम खर्चीला होने के साथ-साथ प्रबंध की दृष्टि से पूर्णतया अस्वीकार्य बनता जा रहा है।" इस बात को सभी लोग स्वीकार करते हैं कि जिन लोगों के लिए धनराशि व्यय की जा रही है उन्हें उसका पूरा लाभ नहीं मिल पा रहा है। प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव ने 22 जून 1991 के राष्ट्रीय प्रसारण में गरीबों के कल्याण पर अधिक ध्यान देने को कहा है। साथ ही इस बात को सुनिश्चित करने को कहा है कि जिनके लिए धनराशि खर्च की जा रही है उसका लाभ उनको अवश्य मिले। बीच में इस राशि के इधर-उधर होने की प्रवृत्ति पर रोक लगाने का भी संकेत उन्होंने दिया। इसके लिए योजनाओं के क्रियान्वयन पर अधिक ध्यान देना होगा। अब समय आ गया है कि विभिन्न ग्रामीण विकास योजनाओं का मूल्यांकन कर प्रभावी क्रियान्वयन हेतु 'ग्रामीण विकास की नवीन रणनीति' बनाई जाए, जिसमें निम्न बातों पर विशेष ध्यान दिया जाए—

व्यावहारिक नियोजन

पिछले चार दशक में ग्रामीण विकास की सैकड़ों योजनाएं बनी हैं। एक ही लक्ष्य के लिए समय-समय पर अलग-अलग योजनाएं शुरू की गई हैं। नई-नई योजनाओं की घोषणा की ऐसी होड़ सी लग गई है कि प्रति वर्ष कोई न कोई नई योजना घोषित की जाती है। परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों के लिए इतनी योजनाएं घोषित की जा चुकी हैं कि नीति निर्धारकों एवं वरिष्ठ प्रशासकों को भी सारी योजनाएं भली प्रकार से याद नहीं हैं। उन्हें भी इनकी जानकारी हेतु योजना के बारे में मुद्रित जानकारी का सहारा लेना पड़ता है, ऐसी स्थिति में अनपढ़ एवं भोले-भाले ग्रामीणों से विभिन्न योजनाओं की जानकारी होने की आशा कैसे की जा सकती है। हमारी ग्रामीण विकास योजनाएं सैद्धान्तिक अधिक हैं उनमें व्यावहारिक पहलू की ओर कम ध्यान दिया गया है। थोड़े से समय में ग्रामीण क्षेत्रों का कायाकल्प करने की योजना तो बना ली जाती है किन्तु इस योजना का वही हश्र हो रहा है जो एक ही समय पर एक व्यक्ति द्वारा कई काम एक साथ करने की योजना बना लेने का होता है। ऐसी स्थिति में वह सामान्यत: कोई सा भी काम ठीक तरह से नहीं कर पाता है। ग्रामीण विकास की अनेक योजनाओं के स्थान पर कुछ योजनाएं बनानी चाहिए। एक ही तरह की अनेक योजनाओं को मिलाकर एक करना चाहिए ताकि दोहरापन न हो। योजना का उद्देश्य एवं कार्यविधि सुस्पष्ट होनी चाहिए, जिसे अनपढ़ एवं गांव का सामान्य आदमी आसानी से खुद ही समझ सके। लक्ष्य आधारित योजनाएं बनानी चाहिए, लक्ष्य ऐसे निर्धारित करने चाहिए जो वास्तव में निश्चित समयावधि में पूरे हो सकें।

ग्रामीण विकास योजनाएं जिनके लिए शुरू की गई हैं उनकी विभिन्न कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी नहीं है। इसके परिणामस्वरूप इन कार्यक्रमों में भ्रष्टाचार का बोलबाला है, कुछ प्रभावशाली लोग अपने चहेतों को लाभ दिलवाने में सफल हो जाते हैं तथा जरूरतमंद वंचित रह जाते हैं। गांवों में बड़ी संख्या में लोग अशिक्षित हैं उनमें चेतना का अभाव है। सरकार ने उनके कल्याण के लिए कौन-कौन से कार्यक्रम शुरू किए हैं तथा उनका लाभ कैसे लिया जाए? इन सब बातों से अनभिज्ञ होने तथा विभिन्न योजनाओं की जटिल प्रक्रिया के कारण जन-सहयोग पूर्णरूप से नहीं मिल पाता है।

उचित समन्वय

ग्रामीण विकास की कुछ योजनाएं केन्द्र सरकार द्वारा, कुछ राज्य सरकारों द्वारा व कुछ केन्द्र व राज्य द्वारा संयुक्त रूप से चलाई जा रही हैं। केन्द्र द्वारा चलाई जा रही योजनाओं में भी राज्य प्रशासन का सहयोग लिया जाता है। केन्द्र व राज्य सरकारों तथा क्रियान्वयन से जुड़े विभिन्न विभागों प्रशासनों में उचित तालमेल नहीं होने से कार्यक्रमों का पूरा लाभ ग्रामीण जनता को नहीं मिल पाता है। आपसी खींचतान का खामियाजा गरीब जनता को भुगतना पड़ता है। प्रशासन में एक ओर सरकारी अधिकारी व कर्मचारी (मुख्य सचिव, जिला कलेक्टर, खण्ड विकास अधिकारी, तहसीलदार, ग्राम सेवक, पटवारी,

कृषि पर्यवेक्षक आदि) हैं तथा दूसरी ओर जन प्रतिनिधि (मंत्री, जिला प्रमुख, प्रधान, सरपंच, पंच आदि) होते हैं। दोनों के कार्य व अधिकार क्षेत्र स्पष्ट नहीं होने तथा अहम् भाव के कारण इनमें आपस में टकराव चलता रहता है। इस टकराव व अविश्वास के कारण ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की क्रियान्विति ठीक तरह से नहीं हो पाती हैं। खण्ड स्तर पर विकास अधिकारी व पंचायत समिति के प्रधान के बीच शीत युद्ध के अनेक उदाहरण सामने आए हैं। इस स्थिति में सुधार की जरूरत है। इसके लिए आपसी तालमेल जरूरी है। प्रत्येक स्तर पर प्रशासकीय अधिकारियों, कर्मचारियों व चुने हुए प्रतिनिधियों का कार्यक्षेत्र, अधिकार, कर्त्तव्य आदि स्पष्ट होने चाहिए। नीति निर्धारण में चुने हुए लोगों की तथा उन नीतियों के क्रियान्वयन में सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों की अहम् भूमिका होनी चाहिए। केन्द्र व राज्य सरकारों तथा ग्रामीण विकास से जुड़े विभिन्न विभागों व एजेन्सियों में उचित तालमेल स्थापित करना चाहिए।

जनता की सक्रिय भागीदारी आवश्यक

ग्रामीण विकास योजनाएं जिनके लिए शुरू की गई हैं उनकी विभिन्न कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी नहीं है। इसके परिणामस्वरूप इन कार्यक्रमों में भ्रष्टाचार का बोलबाला है, कुछ प्रभावशाली लोग अपने चहेतों को लाभ दिलवाने में सफल हो जाते हैं तथा जरूरतमंद वंचित रह जाते हैं। गांवों में बड़ी संख्या में लोग अशिक्षित हैं उनमें चेतना का अभाव है। सरकार ने उनके कल्याण के लिए कौन-कौन से कार्यक्रम शुरू किए हैं तथा उनका लाभ कैसे लिया जाए? इन सब बातों से अनभिज्ञ होने तथा विभिन्न योजनाओं की जटिल प्रक्रिया के कारण जन-सहयोग पूर्णरूप से नहीं मिल पाता है। जिस दिन वे लोग जागरूक हो जाएंगे जिनके लिए कल्याणकारी योजनाएं शुरू की गई हैं इन योजनाओं को सही मायने में सफल कहा जा सकेगा। इसके लिए गांवों में शिक्षा प्रसार जरूरी है। विभिन्न ग्राम विकास योजनाओं के व्यापक प्रचार-प्रसार, सरलीकरण तथा ग्रामीणों में जन-जागृति से जनता की सक्रिय भागीदारी सम्भव हो सकेगी।

प्रभावी क्रियान्वयन

हमारी विकास योजनाओं का क्रियान्वयन पक्ष कमजोर है। बड़ी-बड़ी योजनाएं बना तो ली जाती हैं किन्तु वे समय पर पूरी नहीं हो पाती हैं। इससे जनता का इन योजनाओं पर से विश्वास उठ जाता है। योजना आयोग के सदस्य डा. राजकृष्ण का मत था कि ज्यों ही ग्रामीण क्षेत्रों में भारी मात्रा में धन का विनियोजन होगा त्यों ही इस धन के अपव्यय, गलत इस्तेमाल तथा भ्रष्टाचार की समस्या आएगी। उन्होंने आशंका व्यक्त की थी कि यह क्या गारण्टी है कि यह धनराशि इन निर्धन, अशिक्षित तथा असहाय व्यक्तियों तक पहुंच सकेगी और पूर्व की योजनाओं की भांति इसका लाभ भी समाज के बड़े लोग ही हड़प लेंगे। ग्रामीण विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए अनेक प्रयास करने पड़ेंगे। सभी स्तरों पर योजना से जुड़े लोगों को सक्रिय करना पड़ेगा। किसी भी योजना की सफलता के लिए कुशल, योग्य, ईमानदार व समर्पित लोगों की एक टीम तैयार करनी पड़ेगी जो मिल कर जिम्मेदारी को पूरा कर सके।

हमारे देश में जिला प्रशासन/उच्च पदों पर प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं जिनमें से अधिकांश शहरी परिवेश से आते हैं, अतः वे ग्रामीण जीवन से अपरिचित होते हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सेवा करने के इच्छुक नहीं होते। वे अपना स्थानान्तरण/पदस्थापन शहरी क्षेत्रों में करवाने के प्रयास में रहते हैं। यदि मजबूरी में ग्रामीण क्षेत्रों में सेवा करनी भी पड़े तो आधे अधूरे मन से काम करते हैं तथा ग्रामीणों से घुल मिल नहीं पाते तथा उन्हें प्रशासन में अनेक दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। कुछ अधिकारी व कर्मचारी किसी क्षेत्र या योजना के बारे में ठीक से समझ पाएं उससे पूर्व ही उनका स्थानान्तर कर दिया जाता है। नए-नए लोग आकर ग्रामीण विकास विषय में पारंगत होने के लिए प्रशिक्षण लेते हैं तथा सेवाएं कहीं और देते हैं। इस प्रकार बड़ी मात्रा में हो रहे अपव्यय को रोका जाना चाहिए तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से जुड़े लोगों के लिए प्रशिक्षण आदि का माकूल इन्तजाम करना चाहिए। जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के लिए भी प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में ग्रामीण परिवेश के अधिकारियों व कर्मचारियों को रखा जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में बेहतर परिणाम देने वाले लोगों को पुरस्कृत करना चाहिए। इन क्षेत्रों में कार्य कर रहे कर्मचारियों एवं अधिकारियों को आकर्षक वेतन व सुविधाएं देनी चाहिए ताकि योग्य एवं कुशल लोग आकर्षित हो सकें। इतना ही नहीं काम के प्रति उदासीन व कार्यक्रमों की असफलता के लिए जिम्मेदार लोगों को कठोर दण्ड देना चाहिए।

उचित मूल्यांकन

किसी भी योजना की सफलता/असफलता की जांच के लिए उसका उचित मूल्यांकन आवश्यक है। पिछले चार दशकों में ग्रामीण विकास के अनेक नए कार्यक्रम शुरू किए गए, कुछ कार्यक्रमों को बन्द कर दिया गया तथा कुछ में परिवर्तन कर दिया गया। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में भारी भ्रष्टाचार की बात देश के प्रधानमंत्रियों ने भी स्वीकार की है। जितनी बड़ी धनराशि इन कार्यक्रमों पर व्यय की गई उतने अपेक्षित

(शेष पृष्ठ 80 पर)

उत्तम यूरिया में शक्ति का भण्डार
बढ़ाए ताकत, धरती बन जाए दमदार

बीज बोया, पानी सींचा और फसल उगा ली... काश फसल उगाना इतना आसान होता। तभी तो समझदार लोग कहते हैं कि जितनी अच्छी खाद होगी उतनी ही अच्छी फसल उगेगी। इसलिए अक्लमंद किसान, खेतों में यूरिया डालते हैं- और वो भी कोई ऐसा वैसा नहीं, सिर्फ उत्तम यूरिया।

उत्तम यूरिया—साफ़, स्वच्छ और उत्तमता की चमक वाला यूरिया।

जिस में छिपा है खेतों की ताकत का खज़ाना।

उत्तम यूरिया — पैदावार बढ़ाए, हर घर में खुशियाँ लाए।

उत्तम यूरिया

चम्बल फर्टिलाइज़र्स एण्ड कैमिकल्स लिमिटेड

धरती की ताकत

LINTAS (DELHI) CHM 1 356

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की मूल समस्याएं

डा. अभय कुमार

लेखक के मतानुसार इन योजनाओं से गरीब वर्ग के उन लोगों ने फायदा उठाया है, जो पंचायतों के प्रतिनिधियों के निकट हैं या गांव के प्रमुख वर्ग के हैं। इस तरह कहीं-कहीं इनसे गरीब व्यथित और अधिक गरीब तथा धनी और अधिक धनी बना है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन हेतु ग्रामीण विकास प्रशासन पर नए सिरे से ध्यान देने की आवश्यकता है। ग्रामीण प्रशासन जितना अधिक सक्रिय और संवेदनशील होगा, उतनी ही तीव्रता से हमारी विकास योजनाएं सफल हो सकेंगी। इसके साथ-साथ लेखक ने योजनाओं में जन सहभागिता हेतु प्रभावी कार्यवाही करने की आवश्यकता पर भी बल दिया है। लेखक का यह भी मत है कि जवाहर रोजगार योजना भी इस कार्य में अपेक्षा से अधिक सफल हुई है। अतः आवश्यकता इस बात की होनी चाहिए कि इस कार्यक्रम को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए कारगार कदम उठाए जाएं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत केन्द्रीय नियोजन पद्धति के तहत् भारत में कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन, ऊर्जा, विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में काफी प्रगति हुई है। खाद्यान्न के क्षेत्र में तो भारत आत्मनिर्भर हो चुका है। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है लेकिन ग्रामीण विकास के संबंध में हमारी प्रगति संतोषजनक नहीं है। आज भी गांव की पिछड़ी हुई दशा के कारण तथा मनोरंजन, खेलकूद, शिक्षा, आवास, स्वच्छ पेयजल आदि जनसुविधाओं के अभाव में डाक्टर गांव में जाना नहीं चाहते तथा आवास और शहरी सुख-सुविधा की अनुपलब्धता के कारण अध्यापक गांव में रुकना नहीं चाहते तो फिर गांवों का विकास कैसे हो? गांवों में अस्पताल हैं तो डाक्टर नदारद रहते हैं और स्कूल हैं तो शिक्षक नहीं हैं।

भारत में आर्थिक विकास का आधार ग्रामीण क्षेत्र के विकास पर आश्रित है। यहां की लगभग तीन चौथाई जनसंख्या गांवों में रहती है। छः लाख के लगभग गांव हैं। अधिकांश ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय खेती ही है। चौथी योजना में जहां भारत में हरित क्रांति का युग लाने के प्रयास हुए जिससे कृषि क्षेत्र में आशातीत सफलता मिली वहीं देश में बढ़ती हुई जनसंख्या का दबाव कृषि भूमि पर बढ़ता गया है जिससे कृषि जोतों का उपविभाजन और उपखण्डन होने से लाभकारी खेती करने में बाधाएं खड़ी हुई हैं। इसके कारण कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हुई है।

वे क्षेत्र जो शहरी सीमा से बाहर होते हैं उन्हें ग्रामीण क्षेत्र कहा जाता है। ये क्षेत्र नगर निगम, नगर पालिकाओं एवं नोटिफाइड समितियों के सीमा क्षेत्र में नहीं आते। ग्रामीण विकास से अभिप्राय है—"ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले अनेकानेक न्यून आय वर्ग के लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाना और उनके विकास के क्रम को आत्मपोषित बनाना।" यह एक ऐसी व्यूह रचना है जो लोगों के एक विशिष्ट समूह निर्धन ग्रामीणों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन को उन्नत बनाने के लिए बनाई गई। इसमें विकास के लाभों को ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन-यापन की तलाश में लगे निर्धनतम लोगों तक पहुंचाना है। इस तरह ग्रामीण विकास एक त्रिदिशायी कार्यक्रम है—

1. यह एक विधि है जिसके द्वारा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में लोगों को शामिल किया जाता है।
2. यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा परम्परागत ग्रामीण संस्कृति को विज्ञान एवं तकनीक के प्रयोग द्वारा आधुनिक बनाया जाता है।
3. यह एक उद्देश्य है जिसके द्वारा जीवन की गुणवत्ता में सुधार किए जाते हैं।

इस तरह ग्रामीण विकास को गति देने तथा गरीबी एवं बेरोजगारी को दूर करने का उपाय यही नजर आता है कि कृषि क्षेत्र के इतर ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर लोगों को प्रदान करवाए जाएं। यह भी जरूरी है कि अधिक से अधिक लोगों को

रोजगार के अवसर उनके निवास स्थान के आस-पास ही उपलब्ध करवाए जाएं। इस काम में लघु एवं कुटीर उद्योग, परिवहन आदि में असंख्य मात्रा में रोजगार के अवसरों को सृजित करने की अपार संभावनाएं हैं। इससे एक ओर ग्रामीण क्षेत्रों का विकास संभव होगा और वहीं दूसरी ओर गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के जीवन-स्तर को ऊपर उठाया जा सकेगा। निर्धन लोगों को उचित प्रशिक्षण देकर रोजगार दिलाने में काफी मदद मिल सकती है।

पिछले चालीस वर्षों में ग्रामीण विकास योजनाओं को नियोजन में प्रमुखता दी जाती रही है लेकिन यह भी सच है कि नियोजन काल में शहरीकरण को बढ़ावा मिला है जिससे बड़ी संख्या में लोग गांव छोड़कर रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। श्रम शक्ति का एक बड़ा भाग गांवों में ही निवास करता है। राष्ट्रीय आय में ग्रामीण क्षेत्र का हिस्सा लगभग एक तिहाई है। निर्यातित वस्तुओं में एक चौथाई हिस्सा कृषि क्षेत्र का है और कृषि ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय है। भारत

यह भी जरूरी है कि अधिक से अधिक लोगों को रोजगार के अवसर उनके निवास स्थान के आस-पास ही उपलब्ध करवाए जाएं। इस काम में लघु एवं कुटीर उद्योग, परिवहन आदि में असंख्य मात्रा में रोजगार के अवसरों को सृजित करने की अपार संभावनाएं हैं। इससे एक ओर ग्रामीण क्षेत्रों का विकास संभव होगा और वहीं दूसरी ओर गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के जीवन-स्तर को ऊपर उठाया जा सकेगा। निर्धन लोगों को उचित प्रशिक्षण देकर रोजगार दिलाने में काफी मदद मिल सकती है।

में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त आय में ग्रामीण क्षेत्र का योगदान 46 प्रतिशत आंका गया है। ये सब बातें ग्रामीण क्षेत्र की महत्ता को दर्शाती हैं।

ग्रामीण विकास के चरण

भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्र की महत्ता को ध्यान में रखते हुए ही पिछले चार दशकों के नियोजन में विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को शुरू किया गया। कार्यक्रम की दृष्टि से 1947-91 की अवधि को तीन चरणों में बांटा जा सकता है। पहले चरण में सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम में ग्रामीण जीवन का सर्वतोन्मुखी विकास तथा ग्रामीण जीवन के सभी क्षेत्रों में सुधार के लक्ष्य थे। इस कार्यक्रम को आंशिक सफलता ही अर्जित हो सकी। कारण यह था कि इस कार्यक्रम हेतु प्रचुर मात्रा में धन की आवश्यकता होने के बावजूद पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं करवाए जा सके जिससे सीमित साधनों को अनेक क्षेत्रों में बांटने से किसी भी क्षेत्र में वांछनीय परिणाम प्रदर्शित नहीं हो सके। ऐसा अनुमान किया गया कि उपलब्ध साधनों को कृषि विकास कार्यक्रमों पर ही केन्द्रित होना चाहिए था क्योंकि कृषि ही ग्रामीणों की आजीविका का मुख्य स्रोत थी और दूसरे इस समय भारत को कई बार अकाल जैसी परिस्थितियों से जूझना पड़ता था। फलस्वरूप विकास कार्यक्रम के दूसरे चरण में कृषि विकास को प्राथमिकता दी गई। उन्नत किस्म के बीज, उर्वरक और अन्य कृषिगत आदानों के प्रयोग का विस्तार हुआ। इससे कृषि उत्पादन में भारी वृद्धि हुई। देश हरित क्रांति के युग से गुजरा किन्तु इसी के साथ यह भी अनुभव किया गया कि कृषि उत्पादन में पर्याप्त उपलब्धि के बावजूद ग्रामीण गरीबी एवं बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं किया जा सका बल्कि कृषि विकास के साथ ही ऐसे कार्यक्रमों को अपनाने की आवश्यकता हुई जो ग्रामीण क्षेत्र के गरीब लोगों को आर्थिक सहायता प्रदान करने के साथ ही उन्हें अपने पैरों पर खड़े होने के लिए आत्मपोषित करें। अतः ग्रामीण विकास के तीसरे चरण में अपनाए जाने वाले ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में सबसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

कुछ प्रमुख गरीबी एवं बेरोजगारी निवारक कार्यक्रम :

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

सर्वप्रथम यह कार्यक्रम 1978-79 में शुरू हुआ जिसे छठी योजना में शामिल कर लिया गया। प्रारम्भ में यह देश के 2300 विकास खण्डों में लागू हुआ। बाद में 2 अक्तूबर 1980 से इसे देश के सभी 5,011 खण्डों में लागू कर दिया गया। सातवीं योजना के बाद यह अभी भी लागू है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य गरीबों में सबसे गरीब समुदाय की सहायता करना है जिसमें लघु व सीमांत कृषक, कृषि एवं गैर कृषि श्रमिक, ग्रामीण दस्तकार, अनुसूचित जाति व जनजातियां शामिल हैं। वास्तव में वे व्यक्ति जो गरीबी की रेखा के नीचे हैं, इसमें शामिल हैं। इसके लिए उन्हें सम्पत्ति व अन्य संसाधन देकर उनके रोजगार व आय के अवसर बढ़ाना है। सातवीं योजना में इस कार्यक्रम में प्रत्येक परिवार के लिए विनियोग की राशि दस हजार रुपये कर दी गई थी। इस कार्यक्रम में करोड़ों परिवारों को सहायता प्रदान की गई है।

वर्ष 1984-85 में पांच सदस्यों वाले एक ऐसे ग्रामीण परिवार को गरीबी की रेखा के नीचे माना गया जिसकी वार्षिक आय 6400 रुपये से कम थी। इस आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी

का अनुपात 39.9 प्रतिशत था जबकि इस आधार पर सातवीं योजना के प्रारम्भ में 272.7 मिलियन व्यक्ति गरीबी की रेखा के नीचे थे जो कि कुल जनसंख्या का 36.9 प्रतिशत था। इस प्रतिशत को सन् 2000 तक 5 प्रतिशत तक लाने के लिए कार्यक्रम अपनाने की वचनबद्धता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम

1 अप्रैल 1977 से शुरू काम के बदले अनाज कार्यक्रम का नाम बदलकर अक्तूबर 1980 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम रख दिया गया। इस कार्यक्रम में बेरोजगार और अल्प रोजगार वाले व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर उत्पन्न करना और इसके साथ ही निर्धन लोगों को लगातार लाभ पहुंचाने के लिए उत्पादक सामुदायिक सम्पत्ति का सृजन करने और ग्रामीण क्षेत्रों के जीवन-स्तर में सुधार लाने की भी कल्पना की गई। इस कार्यक्रम में केन्द्र तथा राज्यों ने बराबर-बराबर धनराशि लगाई। केन्द्र सरकार ने राशि के अलावा खाद्यान्न भी सुलभ कराए। सातवीं योजना में कुल 144.50 करोड़ श्रम-दिवसों के बराबर रोजगार के नए अवसर सृजित करने का कार्यक्रम तैयार हुआ।

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम

यह योजना 15 अगस्त 1983 से लागू की गई। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण भूमिहीनों के लिए रोजगार के अवसरों में सुधार तथा वृद्धि करना है ताकि प्रत्येक भूमिहीन श्रमिक परिवार के कम से कम एक सदस्य को वर्ष में 100 दिनों का रोजगार मिल सके। इसके अलावा टिकाऊ परिसम्पत्तियों का निर्माण भी करना है जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था का तेजी से विकास होने के साथ ही लोगों के जीवन-स्तर में भी सुधार हो सके। इस कार्यक्रम में सातवीं योजना के प्रथम चार वर्षों में 103 करोड़ दिनों का रोजगार सृजित किया गया।

ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण (ट्राइसेम)

ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण देने के लिए यह कार्यक्रम 15 अगस्त 1979 से शुरू हुआ था। अब यह समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का एक प्रमुख अंग है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले ग्रामीण परिवारों के 18 से 35 वर्ष की आयु के युवाओं को कुछ चुनिन्दा व्यवसायों का प्रशिक्षण देकर कोई काम धन्धा शुरू करने के लिए तैयार किया जाता है। प्रशिक्षण पूरा कर लेने पर प्रशिक्षणार्थी समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत लाभ प्राप्त करने का हकदार हो जाता है। उसे अपना व्यवसाय चलाने के लिए आवेदन करने पर कम ब्याज पर ऋण व सहायता, कच्चा माल व बिक्री आदि की सुविधा मिल सकती है। इस कार्यक्रम में लक्ष्य है कि प्रतिवर्ष प्रत्येक ब्लाक से 40 ग्रामीण युवाओं के हिसाब से कम से कम दो लाख युवकों को तैयार किया जाए। अब तक इस कार्यक्रम में 20 लाख से अधिक ग्रामीण युवा प्रशिक्षण पा चुके हैं।

शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिए स्वरोजगार योजना

वर्ष 1983 में शिक्षित बेरोजगार युवकों के लिए स्वरोजगार योजना भी प्रारंभ की गई जो शिक्षित बेरोजगार युवकों को उद्योग, व्यापार तथा अन्य सेवा संबंधी कार्यों में स्वरोजगार के लिए प्रोत्साहित कर सके। यह योजना सातवीं योजना के बाद अभी भी लागू है। इस योजना में पात्रता हेतु परिवार की आय सीमा दस हजार रुपये वार्षिक है। इसमें 18-35 वर्ष की आयु के उन शिक्षित बेरोजगार युवकों को शामिल किया जाता है जो मैट्रिक या उससे अधिक शिक्षित हैं। इस योजना में जिला उद्योग केन्द्रों की सहायता से बैंकों द्वारा प्रति उद्यमी को 25 हजार रुपये तक मिश्रित ऋण दिया जाता है। इस योजना में प्रतिवर्ष 2.5 लाख शिक्षित बेरोजगार युवकों को स्वरोजगार प्रदान करना है।

जवाहर रोजगार योजना

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के तहत जवाहर रोजगार योजना अप्रैल 1989 से शुरू की गई। इस योजना में पहले से चल रहे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम का विलय कर दिया गया। इस योजना के दो उद्देश्य हैं—1. ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगार व अर्द्ध रोजगार व्यक्तियों के लिए रोजगार के नए अवसर पैदा करना तथा 2. सामुदायिक उत्पादक सम्पत्ति का निर्माण तथा ग्रामीण जीवन में व्यापक सुधार लाना है। योजना में गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले परिवार के किसी एक सदस्य को वर्ष भर में कम से कम 100 दिनों का रोजगार प्रदान कराने की व्यवस्था की गई है। वर्ष 1989-90 में इस योजना पर 2100 करोड़ रुपये व्यय किए जाने थे। इस कार्यक्रम में जिला ग्रामीण विकास एजेंसियो एवं जिला परिषदें इस कार्यक्रम के समन्वय, समीक्षा व प्रबन्ध के लिए उत्तरदायी होंगी। केन्द्र सरकार सीधे ही इन एजेंसियों को धन दे जो प्राप्ति के एक माह के भीतर पंचायतों को धन का वितरण करेगी। जहां निर्वाचित पंचायतें नहीं हैं वहां यह धन ब्लाकों को दिया जाएगा। इस समय देश में 27 करोड़ 10 लाख व्यक्ति गरीबी की रेखा के नीचे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यदि इस योजना का 2100 करोड़ रुपया उनको वितरित किया जाए तो प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में लगभग साढ़े बहत्तर रुपये आते हैं। क्या इससे उनकी निर्धनता कम हो सकेगी?

ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी दूर करने के लिए अनेक योजनाओं पर बड़ी मात्रा में धनराशि निवेशित की गई है किन्तु इनका पूरा लाभ ग्रामीणों को नहीं मिल पाया है। सरकारी आंकड़े गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के बारे में कमी को चाहें जितना भी प्रदर्शित करें यह वास्तविकता है कि गरीबी के स्वरूप में आज भी पर्याप्त परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ रहा है। शायद इन योजनाओं के क्रियान्वयन में कुछ कमी रही है जिसके मूल्यांकन की आज आवश्यकता है ताकि नए सिरे से विचार कर इन नीतियों को संशोधित किया जा सके। ग्रामीण क्षेत्रों में पिछड़ेपन के अनेक कारण हैं जिनमें प्रशासनिक समस्याएं भी अधिक उत्तरदायी रही हैं। यह सही है कि हमारे योजनाबद्ध विकास कार्यक्रमों का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों से सीधा संबंध रखता है। उन्नत कृषि तकनीकें, सिंचाई की सुविधाएं, ग्रामीण विद्युतीकरण, जलापूर्ति, लघु एवं कुटीर उद्योग, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के ऐसे कार्यक्रम हैं जो ग्रामीण विकास के मुख्य आधार हैं। इन सब कार्यक्रमों का क्रियान्वयन गांवों में ग्रामीणों के सहयोग से ही संभव है।

भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री राजीव गांधी ने 15 अक्तूबर 1989 को एक सभा में पंचायती राज और नगर पालिका विधेयकों के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि—''ये विधेयक आवश्यक है क्योंकि सरकारी योजनाओं के लाभ आम आदमी तक नहीं पहुंचते हैं। योजनाओं के कुल मूल्य का 15 प्रतिशत भाग ही वास्तविक लाभार्थियों तक पहुंच पाता है और शेष राशि लालफीताशाही के कारण बर्बाद हो जाती है।'' इसी तरह के विचार प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिंह राव ने भी राष्ट्र के नाम अपने प्रथम संबोधन में व्यक्त किए हैं कि—''देहात के गरीबों पर विशेष ध्यान सरकार देती आई है और आज और अधिक देना चाहती है। जमीन पर जो दबाव है आज मतलब जमीन पर या खेती पर आजीविका पाने वाले लोगों की जो एक बहुत बड़ी संख्या है उसे कम करना है और उनके लिए रोजगार के दूसरे साधन भी मुहैया करने हैं। उद्योग वहां चलाने हैं और जो भी खर्च इस पर किया जाएगा उसका पूरा-पूरा लाभ उनको मिलना चाहिए, जिनके लिए खर्च किया जाता रहा है उनको अवश्य मिले, बीच में कहीं इधर-उधर जाया न हो इसको सुनिश्चित करना है और ये हम अवश्य करेंगे।''

ग्रामीण विकास एवं प्रशासनिक समस्याएं

अभी तक देश में ग्रामीण विकास के जो भी कार्यक्रम बने हैं उनके कार्यान्वयन और प्रबन्ध की जिम्मेदारी प्रशासनिक तंत्र की ही रही है। हालांकि 1959 के बाद पंचायती राज के प्रादुर्भाव से पंचायती राज संस्थाओं को भी विकास कार्यक्रमों में भाग लेने का दायित्व सौंपा गया। कुछ वर्षों के बाद इन संस्थाओं की स्थिति बड़ी नाजुक हो गई। वर्ष 1989 में पुनः इन संस्थाओं की मजबूती हेतु संविधान में संशोधन की आवश्यकता महसूस हुई और जवाहर रोजगार योजना को इन्हीं संस्थाओं के माध्यम से क्रियान्वित किया गया। इस तरह ग्रामीण विकास प्रशासन को दो और भी जिम्मेदारी निभानी होती हैं। एक ओर तो उन्हें अपने विभाग के नियमों को अपनाना होता है दूसरी ओर उन्हें स्थानीय जनप्रतिनिधियों एवं जन आकांक्षाओं के अनुरूप कार्य करने को बाध्य होना पड़ता है।

गांवों के विकास प्रशासन की ढांचा दो स्तरों पर बंटा है—एक में पटवारी, ग्राम सेवक, शिक्षक, ग्राम स्तरीय कार्यकर्ता, चिकित्सक, तहसीलदार, नायब तहसीलदार, एस. डी. एम., विकास अधिकारी, शिक्षा, कृषि, सहकारिता, प्रसार अधिकारी, जिलाधीश आदि विकास कार्यों के लिए उत्तरदायी हैं वहीं दूसरी ओर पंचायती राज संस्थाओं के प्रतिनिधि पंच, सरपंच, प्रधान, ब्लाक प्रमुख, जिला प्रमुख आदि विकास कार्यों में रूचि दिखाते हैं। जिला प्रशासन प्रायः भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों द्वारा चलाया जाता है। इनमें से अधिकांश शहरी क्षेत्रों से आते हैं जिनके अभिभावक शहरी क्षेत्रों में उच्च पदस्थ सेवाओं में संलग्न होते हैं। इन अधिकारियों का गांवों में प्रायः मन कम लगता है। यद्यपि जिला प्रशासन को पर्याप्त अधिकार प्राप्त होते हैं किन्तु उन्हें पूर्ण सूचनाएं प्राप्त नहीं होती। यह बहुत जरूरी है कि निचले स्तर पर लोगों का इनसे संबंध बना रहे। प्रशासकों को व्यवहार तकनीकी में प्रशिक्षण देकर उनमें समूह एवं समन्वय की भावना विकसित की जानी जरूरी है।

ग्रामीण विकास प्रशासन में खण्ड विकास अधिकारी प्रमुख व्यक्ति होता है। उसका कार्य क्षेत्र बहुत स्पष्ट नहीं है। विकास खण्ड को विकास इकाई मान लिया जाता है जबकि गांव मूल इकाई होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न वर्गों में टकराव एवं अविश्वास के बीच खण्ड विकास अधिकारी को कार्य करना होता है। दूसरे पंचायती राज संस्थाओं को भी प्रशासन में हिस्सा बंटाना होता है। योजना के अनुरूप प्राथमिकताओं को निर्धारित करने में जिलाधीश प्रायः योजना समिति के प्रधान होते हैं। इन पर विभिन्न राज्यों में नौकरशाही का दोहरा नियंत्रण पाया जाता है। इसलिए विकेन्द्रीकरण नाममात्र को रह जाता है, शक्तियां एवं उत्तरदायित्व केन्द्रित ही रहते हैं।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में विभिन्न स्तर के अधिकारियों में समन्वय न होना सबसे बड़ी समस्या है।

विकास के लिए तकनीकी अधिकारी एवं प्रशासनिक अधिकारी दोनों के मध्य समन्वय आवश्यक है। जिला स्तर पर जिलाधीश तकनीकी अधिकारियों का जिलाध्यक्ष होता है तथा खण्ड विकास अधिकारी की शक्तियां एवं अधिकार निर्यत्रित रहते हैं जिसके कारण वह कभी-कभी अपने पूरे स्टाफ पर नियंत्रण नहीं रख पाता है और न ही साधनों, आवश्यकताओं, प्राथमिकताओं आदि में समन्वय ही रख पाने में समर्थ हो पाता है। दूसरे, राजनीतिक दबाव, नियोजन में सहभागिता का अभाव, प्रशासनिक पहल का अभाव, कार्यों के बारे में प्रशंसा न मिलना तथा उन्नति में अवसरों के अभाव से भी निराशा होती है। जिलाधीश को तो अधिक अधिकार होने से सहयोग मिल जाता है किन्तु खण्ड विकास अधिकारी को अन्य विभागों से सहयोग नहीं मिल पाता। ग्राम सेवक के पास भी इतनी अधिक जिम्मेदारी होती है कि वह संतोषजनक ढंग से कार्य नहीं कर पाता। ग्राम सेवक और प्रसार अधिकारी द्वारा अच्छा कार्य करने के लिए उचित प्रेरणा व प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है जिसे खण्ड विकास अधिकारी देने में असमर्थ होता है।

विकास खण्ड स्तर पर विकास खण्ड अभिकरण का गठन किया जाए

जिला स्तर पर पूर्व प्रचलित नियोजन विभागों के अतिरिक्त जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की स्थापना हो चुकी है और इस एजेंसी के कार्य संचालन के लिए प्रशासनिक व्यवस्था कर दी गई है जिसमें एक जिला परियोजना अधिकारी, सहायक परियोजना अधिकारी (विषय विशेषज्ञ) तथा आयोजन दल होता है। आयोजन दल में ग्रामीण उद्योग, अर्थशास्त्र, सांख्यिकी तथा ऋण संबंधी विशेषज्ञ होते हैं। इनमें एक सहायक परियोजना अधिकारी (महिला) भी हैं। इसके अतिरिक्त एक सहायक परियोजना अधिकारी (मानिटरिंग), दो अन्वेषक तथा एक सांख्यिकी अन्वेषक भी है जिसका काम विकास खण्ड तथा जिला स्तर पर आर्थिक सर्वेक्षण करना, विश्लेषण करना तथा तथ्यों के आंकड़े योजना बनाने हेतु संकलित करना है। विकास खण्ड स्तर पर विकास खण्ड अभिकरण नहीं बनाया गया है और ये सभी कार्य खण्ड विकास अधिकारी के नेतृत्व में होते हैं। ग्राम सेवकों पर कार्य का अत्यधिक बोझ रहता है जबकि उसको बहुधंधी कार्यकर्ता के स्थान पर कृषि क्षेत्र में ही प्रशिक्षित किया गया है चूंकि ग्रामीण विकास का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र का समन्वित विकास है इसलिए विकास खण्ड स्तर पर भी विकास खण्ड अभिकरण के साथ ही आयोजन दल गठित करने की आवश्यकता है। ग्राम स्तरीय आयोजन में स्थानीय संसाधनों का सर्वेक्षण, आंकड़ों के संकलन तथा योजनाएं आदि बनाने का काम विषय विशेषज्ञों द्वारा ही संपन्न कराया जाना अपेक्षित है।

ग्रामीण विकास एवं पंचायतें

यह सही है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में पंचायतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और भविष्य में भी दस हजार करोड़ रुपये से भी अधिक राशि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर व्यय होनी है। इसलिए इतनी विशाल धनराशि को सही कार्यों पर खर्च करना है तो यह आवश्यक होगा कि भावी योजनाओं में ग्राम पंचायतों के सक्रिय योगदान की अपेक्षा की जाए। पंचायती राज की तीन श्रेणियां हैं—ग्राम स्तर पर पंचायतें, ब्लाक स्तर पर पंचायत समितियां तथा जिला स्तर पर जिला परिषद। आज देश में 2,73,300 ग्राम पंचायतें, 4,525 पंचायत समितियां तथा 330 जिला परिषदें हैं। इनके अंतर्गत देश की ग्रामीण जनसंख्या का 99 प्रतिशत भाग आ जाता है। इन संस्थाओं के निर्वाचित प्रतिनिधि ग्रामीण समुदाय के विकास कार्यक्रमों के निर्माण और क्रियान्वयन में सक्रिय सहयोग देते हैं लेकिन व्यवहार में ये निर्वाचित प्रतिनिधि भी समाज के उच्च वर्ग से ही आते हैं। उनकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण स्तर निम्न होता है और वे अपने मूल उद्देश्यों के प्रति समर्पित भी नहीं होते। अपने निहित स्वार्थों के कारण उन नीतियों को ये लोग कार्यान्वित नहीं होने देते जो उनके लिए जरा-सी भी कष्टदायक होती हैं। ग्रामवासी भी अलग-अलग गुटों में बंधे हैं जिससे पंचायतों के निर्णय बहुधा सर्वमान्य नहीं हो पाते। इन संस्थाओं की अपनी वित्तीय स्थिति काफी कमजोर रहती है। ये सरकारी सहायता तथा अनुदानों को प्राप्त करने में ज्यादा रूचि दिखाती हैं तथा अपने संसाधनों को बढ़ाने में कोई रूचि नहीं दिखाते। कभी-कभी तो राजनेता और प्रशासक निहित स्वार्थों के कारण एक हो जाते हैं और कभी आपस में नाराज भी रहते हैं। प्रायः इन संस्थाओं के प्रतिनिधियों और सरकारी अधिकारियों के बीच तनाव बना रहता है। दोनों ही स्थितियां ग्रामीण विकास में रुकावट पैदा करती हैं। इस तरह जब तक प्रशासकों और राजनीतिक नेतृत्व की गांवों के प्रति पूर्ण प्रतिबद्धता नहीं होगी तब तक हमारे गांवों की मौलिक संरचना में कोई विशेष अंतर आने वाला नहीं है। प्रायः सभी इस बात से सहमत हैं कि भारतीय संदर्भ में पंचायती राज का कोई विकल्प नहीं है। आवश्यकता है इन संस्थाओं को और अधिक अधिकार देकर स्वायत्तशासी बनाने की।

सरकारी सेवकों की नियुक्ति एवं प्रशिक्षण

आज तीन तरह के कर्मचारियों एवं अधिकारियों को ग्रामीण क्षेत्रों में या पर्वतीय क्षेत्रों में नियुक्त किया जाता है—जिनकी नियुक्ति होती है या पदोन्नति होती है इन लोगों की गांवों के

विकास में विशेष रूचि नहीं होती। उन्हें वहां की संस्कृति, समस्याओं का कोई विशेष ज्ञान नहीं होता किन्तु गांवों में रहने पर जब उनको परेशानियां होती हैं तो वे नियुक्ति के थोड़े समय बाद ही अपना स्थानांतरण अन्यत्र कराने के प्रयास में लग जाते हैं जिसके फलस्वरूप परियोजनाओं के उचित क्रियान्वयन में कई तरह की बाधाएं उपस्थित होती हैं। जिन सेवकों को क्षेत्र भ्रमण का कार्य मिला हुआ है वे अपने क्षेत्र में न जाकर अपने निवास स्थान की ओर कूच कर जाते हैं। विकास प्रशासन की

अब तक संचालित प्रत्येक ग्रामीण विकास योजना में यही संकल्प दोहराया जाता रहा है कि योजनाएं जनता के सहयोग एवं भागीदारी से चलाई जाएंगी किन्तु अभी तक किसी भी योजना को जनता ने नहीं बनाया और न ही उसको चलाया। चूंकि ग्रामीण लोगों की भूमिका योजना के निर्माण, कार्यकरण एवं संचालन में नगण्य है इसलिए जनता इन योजनाओं को सरकार का कर्तव्य समझकर इसमें कोई रूचि नहीं दिखाती।

मुख्य समस्या प्रबन्ध एवं मनोवृत्ति से संबंध रखती। निचले स्तर पर नियोजन कभी-कभी कागजों पर ही होते हैं, व्यवहार में नियोजन ऊपर से ही चलता है। विकास कार्यक्रमों के मूल्यांकन का कार्य केवल सूचनाएं एकत्र करने तक ही सीमित है। कर्मचारी ग्रामोन्मुखी हों, इसके लिए उन्हें कार्य पर भेजने से पूर्व विभागीय प्रशिक्षण के साथ ही जनसम्पर्क का प्रशिक्षण भी दिया जाना जरूरी है। इसके लिए गांवों की संस्कृति, परम्पराओं, रीति-रिवाजों के साथ ही ग्रामीण विकास कार्यक्रमों एवं गरीबी निवारक योजनाओं आदि की विस्तृत जानकारी गांवों में कार्य करने में लोगों को काफी मददगार होगी।

योजनाओं में जनसहयोग एवं सहभागिता का अभाव

अब तक संचालित प्रत्येक ग्रामीण विकास योजना में यही संकल्प दोहराया जाता रहा है कि योजनाएं जनता के सहयोग एवं भागीदारी से चलाई जाएंगी किन्तु अभी तक किसी भी योजना को जनता ने नहीं बनाया और न ही उसको चलाया। चूंकि ग्रामीण लोगों की भूमिका योजना के निर्माण, कार्यकरण एवं संचालन में नगण्य है इसलिए जनता इन योजनाओं को सरकार का कर्तव्य समझकर इसमें कोई रूचि नहीं दिखाती। केन्द्र सरकार योजनाएं बनाती है तथा उनको वह राज्यों की ओर, राज्य जिले की ओर, जिले ब्लाकों की ओर और ब्लाक गांवों की ओर कर देते हैं। इस तरह नियोजन ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है। योजनाओं में जनता की भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु यह जरूरी है कि ग्रामीण विकास नियोजन में नीचे से ऊपर यानि परिवार स्तर से ग्राम स्तर, ग्राम स्तर से ग्राम सभा स्तर, ग्राम सभा स्तर से ब्लाक स्तर, ब्लाक स्तर से जिला स्तर, जिला स्तर से राज्य और अंत में राष्ट्रीय स्तर पर योजना बनेगी तो राष्ट्र के प्रत्येक परिवार, ग्राम, ब्लाक, जिला और राज्य की सभी प्रकार की समस्याओं और असमानताओं का निराकरण होने में सफलता मिल सकेगी। नियोजन की इस प्रक्रिया को अपनाने का कार्य कठिन अवश्य है किन्तु ग्रामीण भारत की आर्थिक आजादी के लिए यह जरूरी भी है। इससे योजनाओं में जनसहयोग एवं सहभागिता बढ़ने से ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के वांछित परिणाम शीघ्र सामने आने लगेंगे।

निर्धनता निवारक योजनाएं एवं गरीबी की रेखा

अब तक संचालित सभी ग्रामीण निर्धनता निवारण योजनाओं का मूल उद्देश्य सभी ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी दूर करना, रोजगार देना तथा जीवन-स्तर ऊंचा उठाना रहा है लेकिन यह भी सच है कि निर्धनता की समस्या समाप्त नहीं हुई है। कारण यह है कि इन योजनाओं से गरीब वर्ग के स्थान पर उन लोगों ने फायदा उठाया है जो पंचायतों के प्रतिनिधियों के निकट हैं या गांव के प्रभुत्व वर्ग के हैं। इस तरह इन योजनाओं से गरीब व्यक्ति और अधिक गरीब तथा धनी और अधिक धनी बना है। योजनाओं में लाभार्थियों के चयन हेतु निर्धारित मापदण्ड गरीबी की रेखा से वास्तविक लाभार्थी को चयन करने में कठिनाई होती है। देश में 37 करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे पारिवारिक आय के हिसाब से जीवन-यापन कर रहे हैं लेकिन असलियत यह है कि अनेक लोग ऐसे हैं कि जो गरीबी की रेखा के मापदण्ड से ऊपर होने के बावजूद पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण गरीबी की रेखा से काफी नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं जिनके लिए परिवार में किसी सदस्य के अस्वस्थ होने पर डाक्टर को अपने घर बुलाने में भी कठिनाई आ जाती है। करोड़ों लोग निपट गरीबी में ही जी रहे हैं। वास्तव में निर्धन की पहचान उसके रहने, भोजन करने, कपड़े, सफाई आदि को देखकर सहज की जा सकती है। गरीबी निवारण योजनाओं में सरकार निर्धन वर्ग को मजदूरी हेतु थोड़ा-सा काम उपलब्ध करवाकर या उसको ऋण आदि देकर निर्धनता रेखा से ऊपर आने वाले लोगों में गिन लेती है। निर्धनता निवारण में कार्यक्रम ऐसे बनने चाहिए जिसमें लोगों को मजदूरी पर काम मिलने की स्थायी गारण्टी हो साथ ही दिए गए ऋणों के बाद यह मूल्यांकन भी जरूरी है कि उसको अपना व्यवसाय चलाने में कोई दिक्कत तो नहीं आ रही है। ऋण के सदुपयोग पर नजर रखने के साथ ही उसकी यथासम्भव मदद करनी भी जरूरी है।

लक्ष्य पूर्ति में रुचि

निर्धनता निवारण कार्यक्रमों में लक्ष्यों का निर्धारण दोषपूर्ण रहता है। ब्लाक में खण्ड विकास अधिकारी अपने लक्ष्यों की पूर्ति की उधेड़बुन में लाभार्थियों का चयन करने में अपनी सुविधा को ध्यान देते हैं, वास्तविक लाभार्थी को खोजने में नहीं। जैसे ट्राइसेम कार्यक्रम में लाभार्थी की रुचि किस व्यवसाय में है, उसको प्रशिक्षण पर भेजने से पूर्व ध्यान में नहीं रखा जाता। इसी तरह विकास खण्डों में धन का आबंटन तो समय से कर दिया जाता है किन्तु धन देरी से पहुंचता है जिससे 31 मार्च को लक्ष्य पूर्ति में भी काफी जल्दबाजी होने से अपव्यय होता है। कभी-कभी अधिकारी भी देरी करते हैं। अधिकारी की कुशलता उसके लक्ष्य पूर्ति से तय होती है अन्यथा उसकी गोपनीय रिपोर्ट में प्रतिकूल प्रविष्टि हो सकती है। इसलिए अधिकारियों की रुचि अपने लक्ष्यों की पूर्ति में अधिक होती है। सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा वित्त वर्ष के अंतिम दिनों में कभी कभी रातोंरात निर्माण कार्य पूरे करा लिए जाते हैं।

महिलाओं की हिस्सेदारी

देश की जनसंख्या में लगभग आधा भाग महिलाओं का है और ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति काफी दयनीय है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में महिलाओं की हिस्सेदारी भी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

पूर्ति पक्ष पर अधिक जोर

निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों में सरकार ने पूर्ति पक्ष पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। इन योजनाओं में सरकार निर्धन लोगों को वस्तुएं तथा सेवाएं उपलब्ध करवाने पर जोर देती है जबकि उनकी मांगों के स्वरूप तथा परिमाण पर ध्यान नहीं दिया गया है। इस बात के भी पता लगाने के प्रयास होने चाहिए कि निर्धनों को क्या चाहिए, उनकी जरूरतें क्या हैं। वास्तव में विकास एक दोहरी प्रक्रिया है जिसमें हमें निर्धनों की पूर्ति के साथ-साथ उनकी मांगों के स्वरूप को भी ध्यान में रखना होगा।

निष्कर्ष के रूप में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन हेतु ग्रामीण प्रशासन पर नए सिरे से ध्यान देने की महती आवश्यकता है। ग्रामीण प्रशासन जितना अधिक सक्रिय और संवेदनशील होगा उतना ही तीव्रता से हमारी विकास योजनाएं सफल हो सकेंगी। इसके साथ ही निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों की विफलताओं से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता। योजनाओं में जनसहभागिता हेतु प्रभावी कार्यवाही करने की तत्काल आवश्यकता है।

वरिष्ठ प्रवक्ता, अर्थशास्त्र विभाग
राजकीय (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय,
ऋषिकेश (देहरादून) उ. प्र. 249201

"आपका मतलब है, अगर मेरी दुकान को कुछ हो जाए तो उसके नुकसान की भरपाई आप करेंगे?"

"जी हाँ, क्योंकि आपकी हर छोटी बड़ी बहुमूल्य वस्तुओं को नुकसान होने पर हम नकद मुआवज़ा देते हैं क्योंकि हम हैं - साधारण बीमा."

संकट दरवाज़ा खटखटाकर नही आता! दुकान मे चोरी हो जाए, आग से सब बरबाद हो जाए या फिर किसी के जानवर महामारी के शिकार हो जाएँ तो यदि आपके पास साधारण बीमा की पॉलिसी हो तो उनसे नकद सहायता पाकर नुकसान से काफी कुछ राहत पाई जा सकती है.

भारतीय साधारण बीमा निगम (जी.आई.सी.)

ग्रामीण क्षेत्र के लिए इनकी बीस से अधिक पॉलिसियाँ है जिनका लाभ आप मामूली सा प्रीमियम चुकाकर पा सकते हैं। अपनी छोटी-बड़ी हर बहुमूल्य वस्तु को पूरे नुकसान से बचा सकते हैं फिर वो आपका जीवन-यापन का साधन, पशु हो, दुकान या मुर्गीखाना हो या फिर आपकी संपत्ति, घर, पम्पसेट या साइकिल, अगर आप पर संकट आए तो नुकसान के लिए आर्थिक सहायता पाइए जो नए सिरे से जीवन की शुरूआत करने में सहायक होगी। साधारण बीमा को अपना शुभचिन्तक बनाइए।

पूरी जानकारी तथा बीमा पॉलिसी लेने के लिए हमारी चार सहायक कंपनियों में से किसी की भी स्थानीय शाखा से संपर्क कीजिए और आर्थिक सुरक्षा पाइए ..... भविष्य सुरक्षित बनाइए।

भारतीय साधारण बीमा निगम

साधारण बीमा

जब बात बिगड़ जाती है तब हमारी बात समझ में आती है.

नेशनल इन्श्योरेंस कंपनी लिमिटेड | दि न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड | दि ओरिएण्टल इन्श्योरेंस कंपनी लिमिटेड | यूनाइटेड इंडिया इन्श्योरेंस कंपनी लिमिटेड

Sista's-G.I.C. 5409 B

ग्रामीण विकास—उपलब्धियां और चुनौतियां

सुन्दर लाल कुकरेजा

लेखक की स्पष्ट धारणा है कि स्वतंत्रता के बाद भारतीय ग्रामीण जीवन में अनेक स्तरों पर अनुकूल परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन में सरकार द्वारा चलाए गए अनेक कार्यक्रमों की रचनात्मक भूमिका को स्वीकार करते हुए उन्होंने योजना संसाधनों का 50 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों के लिए निर्धारित करने के निर्णय को सही दिशा में उठाया गया कदम बताया है। पेयजल सप्लाई, सिंचाई, कृषि की आधुनिक तकनीकें अपनाने जैसे मामलों में हुई प्रगति को आंका जाना चाहिए। ग्रामीण विकास के हमारे अनुभवों में कई एशियाई देश रुचि ले रहे हैं किन्तु लेखक को दुख है कि ग्रामीण विकास की सब से बड़ी बाधा निष्ठापूर्वक कार्यक्रम क्रियान्वयन की है। जो भी व्यक्ति इस दृष्टि से कार्य करना चाहता है उसको समाज में पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं मिलता है।

देश की आजादी के समय गांव केवल लगान वसूली और शोषण के केन्द्र बन कर रह गए थे। भारत की अधिकांश जनता के गांवों में रहने के बावजूद भी गांव उपेक्षित थे। वे अशिक्षा, बेरोजगारी और बीमारी से ग्रस्त थे। उनके लिए पीने तक के पानी के प्रबंध की ओर भी ध्यान नहीं दिया जाता था। खेती के नए तरीके उनकी पहुंच से दूर थे और बिजली और सिंचाई के साधन उनकी सामर्थ्य से बाहर थे। जमींदारों द्वारा भूमिहीन और छोटे किसानों का शोषण उनके पिछले कर्मों का फल समझ लिया जाता था।

स्वतंत्रता से पहले गांव वाले रेल और बस के दर्शन को भी तरसते थे। गांवों में न स्कूल खुलते थे, न अस्पतालों की जरूरत समझी जाती थी। यह माना ही नहीं जाता था कि देहातों में भी लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं चाहिए। प्रगति, विकास और उन्नति के लाभ शहरों के कुछ धनी वर्ग तक सीमित थे। गांवों के पुश्तैनी धंधे, कामकाज, शिल्प और व्यवसाय धीरे-धीरे समाप्त हो रहे थे। कर्ज के भार से दबे अधिसंख्यक ग्रामीण परिवार थोड़े से पैसों के लिए बंधुआ मजदूरी को विवश होते थे। औद्योगिक विकास ने शहरों में नई चकाचौंध पैदा की, लेकिन भारत के गांव अंधेरे में डूबे थे। देहाती बच्चे और महिलाएं सुख-सुविधा से वंचित, नारकीय जीवन बिता रहे थे और केवल भाग्य के भरोसे छोड़ दिए गए थे।

उस स्थिति की तुलना अगर आज की परिस्थितियों से करें, तो लगता है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों का कायाकल्प हो गया है, उनमें क्रांति आ गई है। आज आधे से ज्यादा गांव सड़कों द्वारा देश के बाकी हिस्सों से सीधे जुड़ गए हैं, उनमें बिजली आ गई है, रेलवे स्टेशन या बस अड्डा भी आस-पास ही है। गांवों में स्कूल खुल गए हैं, परिवहन के साधन कम जरूर हैं लेकिन थोड़े-थोड़े फासले पर दवाखाने और अस्पताल भी बन गए हैं। देश के भीतरी भागों में भी खाने-पीने की आवश्यक वस्तुएं उचित दर की दुकानों से पहुंचने लगी हैं। राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकों ने ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा विस्तार किया है और उनसे गांव वालों को आवश्यकता के समय कर्ज आसानी से मिल जाता है। बन्धुआ मजदूरी की घटना अब 'खबर' बनने लगी है और भूमि सुधारों ने देहातों की सामाजिक स्थिति को बिगड़ने से बचा लिया है। खेती के उन्नत तरीके, सिंचाई के साधन और फसल का लाभकारी मूल्य अब किसानों की पहुंच में है। यह सब कायाकल्प ग्रामीण विकास के लिए शुरू की गई योजनाओं और विशेष कार्यक्रमों का परिणाम है।

गांव में ही किसान का शोषण रोकने के लिए सबसे पहला कदम जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करके उठाया गया, जिससे गरीबों व शोषितों को मुक्ति मिल गई। इस कदम से किसानों, मजदूरों व पिछड़े वर्गों के विकास की नई योजनाएं लागू करने का मार्ग प्रशस्त हो गया। जमींदारी उन्मूलन के साथ ही भूमि के उचित वितरण की ओर ध्यान गया और भूमि सुधार का आन्दोलन चलाया गया। जिनके पास सीमा से अधिक भूमि थी, उनसे वह अतिरिक्त भूमि लेकर उन लोगों में बांट दी गई जिनके पास खेती के लिए जमीन नहीं थी। चकबन्दी द्वारा छोटी जोतों और बिखरे खेतों को मिलाने का प्रयास किया गया ताकि कृषि उत्पादन को बढ़ावा मिल सके।

इनके अलावा गांवों में बिजली पहुंचाने, पीने का साफ पानी मुहैया कराने, लोगों को बीमारियों से बचाने, रोजगार के साधन उपलब्ध कराने, सड़कें बनाने तथा स्थानीय संसाधनों का उपयोग करके गांवों में कुटीर उद्योग तथा ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए अब तक जो प्रयास किए गए हैं, उनका असर दिखाई देने लगा है। इन सब कदमों और कार्यक्रमों तथा योजनाओं का मुख्य उद्देश्य गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे लोगों के जीवन में सुधार लाना और गरीबी मिटाना है। 1977-78 में देश की कुल आबादी के करीब 48 प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा से नीचे का जीवन बिता रहे थे। लेकिन देहातों में यह प्रतिशत 51 से भी अधिक था। इस दिशा में जो विकास कार्यक्रम चलाए गए उनके कारण स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ और 1983-84 में गरीबी की परिभाषा में आने वालों का प्रतिशत घट कर देहातों में 40.1 और अखिल भारतीय स्तर पर 37.4 प्रतिशत रह गया।

ग्रामीण विकास के लिए विशेष योजनाएं व कार्यक्रम चलाने के अलावा उसके लिए धन की आवश्यकता को पूरा करने और निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने व कार्यक्रमों में गुणात्मक

आवश्यकता इस बात की है कि गरीबों, कमजोर व उपेक्षित वर्गों के विकास के लिए जन सहयोग और इन लोगों की भागीदारी प्राप्त की जाए। इस दिशा में प्रयास जारी है। सरकारी प्रयत्नों में निजी संसाधनों का समर्थन मिल जाने पर ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक आधार को अधिक मजबूत बनाया जा सकता है। इसी उद्देश्य से राष्ट्रीय ग्रामीण विकास निधि की स्थापना की गई जिसमें दिए गए धन पर आयकर से शत प्रतिशत छूट मिल जाती है।

सुधार लाने के लिए भी विशेष प्रयास किए गए हैं। सरकार ने यह नीतिगत निर्णय किया है कि पंचवर्षीय योजनाओं के लिए जितने धन की व्यवस्था होगी, उसका 50 प्रतिशत भाग ग्रामीण जनसंख्या को लाभ पहुंचाने के लिए उपयोग किया जाएगा। अब तक चलाए गए कार्यक्रमों के अनुभव के आधार पर यह देखा गया है कि अधिक उपेक्षित और अधिक दलित लोगों को इन कार्यक्रम के तहत अधिक समानता और बेहतर निष्पक्षता के साथ लाभ पहुंचाने की जरूरत है।

गांवों के विकास की नीति में भी अनुभवों के आधार पर नए सुधार किए जा रहे हैं। अब उन्हें बाहर से मदद देने के स्थान पर उनके विकास के स्थायी उपाय प्रदान करने पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। इससे ग्रामीण जनता को आर्थिक सुरक्षा भी मिलती है और उन्हें स्वरोजगार एवं मजदूरी के साधन भी उपलब्ध होते हैं। इन्हीं अनुभवों के आधार पर ग्रामीण विकास के लिए चलाए जा रहे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई. आर. डी. पी.), जवाहर रोजगार योजना, भूमि सुधार, ग्रामीण जल आपूर्ति एवं स्वच्छता कार्यक्रमों आदि में महत्वपूर्ण संशोधन कर उन्हें बेहतर बनाने में मदद मिली है।

भारत में चलाए जा रहे गरीबी उन्मूलन और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सामयिक समीक्षाओं ने इन विभिन्न कार्यक्रमों के बीच समन्वय लाने में काफी मदद की है और हमारे प्रयोगों व अनुभवों के प्रति अन्य देशों में भी रूचि पैदा हुई है। पिछले एक वर्ष के दौरान ही मिस्र, वियतनाम, चीन और मलावी सरकारों के शिष्टमंडलों ने इन कार्यक्रमों की प्रत्यक्ष जानकारी पाने के लिए भारत का दौरा किया। आवश्यकता इस बात की है कि गरीबों, कमजोर व उपेक्षित वर्गों के विकास के लिए जन सहयोग और इन लोगों की भागीदारी प्राप्त की जाए। इस दिशा में प्रयास जारी है। सरकारी प्रयत्नों में निजी संसाधनों का समर्थन मिल जाने पर ग्रामीण क्षेत्र के आर्थिक आधार को अधिक मजबूत बनाया जा सकता है। इसी उद्देश्य से राष्ट्रीय ग्रामीण विकास निधि की स्थापना की गई जिसमें दिए गए धन पर आयकर से शत प्रतिशत छूट मिल जाती है।

'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम ग्रामीण जनता की विकास योजनाओं का एक संकलित रूप है। इसका सबसे प्रमुख घटक समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई. आर. डी. पी.) है जिसका उद्देश्य पता लगाए गए ग्रामीण गरीब परिवारों को गरीबी की रेखा पार करने में समर्थ बनाना है। इस कार्यक्रम में लघु और सीमांत किसान, कृषि मजदूर और ग्रामीण कारीगर शामिल हैं। इनमें भी 50 प्रतिशत अनुसूचित जाति व जनजाति के परिवार शामिल किए जाते हैं। गरीबी की रेखा से नीचे उन परिवारों को माना जाता है जिनकी वार्षिक आय 6400 रुपये से कम है, लेकिन इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उन ग्रामीण परिवारों को भी सहायता दी जाती है जिनकी वार्षिक आय 4800 रुपये से कम है। इनमें भी नीचे के वर्गों को ऊपर उठाने के लिए उन परिवारों को पहले मदद दी जाती है जिनकी वार्षिक आय 3500 रुपये तक है। यह सहायता देते समय इसका ध्यान भी रखा जाता है कि इससे लाभान्वित होने वालों में कम से कम 40 प्रतिशत महिलाएं हों। शारीरिक रूप से विकलांग, परिवार कल्याण कार्यक्रम के ग्रीन कार्ड धारकों तथा मुक्त बंधुआ मजदूरों को भी इस कार्यक्रम में प्राथमिकता दी जाती है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इस कार्यक्रम के लिए 2358 करोड़ रुपये रखे गए थे लेकिन वार्षिक योजनाओं के आधार पर योजना अवधि में कुल 3000.27 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया। परन्तु वास्तव में इस कार्यक्रम के लिए 3315.82 करोड़ रुपये का उपयोग किया गया। इसी प्रकार

योजना का निर्धारित लक्ष्य 160.38 लाख परिवारों को लाभ पहुंचाने का था जिसकी तुलना में सातवीं योजना की अवधि के दौरान 181.77 लाख परिवारों को मदद दी गई जो निर्धारित लक्ष्य का 113.34 प्रतिशत है। इनमें 19 प्रतिशत महिलाएं, 32 प्रतिशत अनुसूचित जाति व 13 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के परिवार शामिल हैं। वर्ष 1991-92 के लिए इस कार्यक्रम के अंतर्गत 352.66 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया है।

इस समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के कार्यान्वयन का रिजर्व बैंक, नाबार्ड, योजना आयोग तथा वित्तीय प्रबंध एवं अनुसंधान संस्थान आदि ने मूल्यांकन किया है और इसे उपयोगी पाया है। इस कार्यक्रम के 65 प्रतिशत लाभार्थियों का चयन ग्राम सभाओं की बैठकों में किया गया और लगभग 83 प्रतिशत लाभार्थियों ने उन्हें दी गई सहायता को पर्याप्त माना है। इस कार्यक्रम का सबसे बड़ा फल यह मिला कि राष्ट्रीय स्तर पर 81 प्रतिशत मामलों में पुराने लाभार्थियों ने 3500 रुपये तथा 28 प्रतिशत मामलों में 6400 रुपये की संशोधित गरीबी रेखा को पार कर लिया है। अत्यंत दीन-हीन वर्ग के 67 प्रतिशत परिवारों ने इस सहायता की मदद से 3500 रुपये तथा 16 प्रतिशत परिवारों ने 6400 रुपये वार्षिक आय की रेखा को पार कर लिया।

फिर भी, ऐसी कुछ त्रुटियां इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में पाई गई हैं जिन्हें ठीक करने की आवश्यकता है। समीक्षा से पता लगा है कि 16 प्रतिशत ऐसे परिवारों को यह सहायता दी गई है जो इसके हकदार नहीं थे। 71 प्रतिशत तक ऐसे मामले पाए गए जिनमें प्रथम लाभार्थियों को बाद में भी सरकारी समर्थन की जरूरत थी, लेकिन इनमें से 53 प्रतिशत मामलों में यह समर्थन उपलब्ध नहीं कराया गया। यह भी पाया गया है कि अधिकतर मामलों में लाभार्थियों को आधारभूत सुविधाएं नहीं उपलब्ध कराई गईं।

पेयजल की समस्या

पीने के साफ पानी की समस्या, ग्रामीण भारत की प्रमुख चुनौती है जिसका सफलतापूर्वक सामना किया जा रहा है। बहुत बड़ी संख्या में ऐसे गांव हैं जिनमें पीने का पानी बिलकुल उपलब्ध नहीं है और लोगों—खास कर महिलाओं को दूर-दूर से पानी लेकर आना पड़ता है या बरसात में पोखरों-तालाबों में जमा पानी से ही मनुष्य और पशु, दोनों अपना काम चलाते हैं। इससे स्वास्थ्य सम्बंधी कई जटिलताएं भी पैदा हो जाती हैं। रेगिस्तानी इलाकों में रेलगाड़ी द्वारा पानी पहुंचाया जाता था और पहाड़ी क्षेत्रों में महिलाएं मीलों पहाड़ की चढ़ाई-उतराई करके पानी भर के लाती थीं। आदिवासी व दूर-दराज के गांवों में तो हालत और भी बदतर थी। 1979-80 के भयंकर सूखे ने पानी की समस्या की ओर विशेष ध्यान देने पर विवश कर दिया और पेयजल को न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम में शामिल कर लिया गया।

लेकिन इस समस्या का अब तक काफी समाधान कर लिया गया है। 1971-72 के एक सर्वे से पता लगा था कि भारत में करीब ढाई लाख गांव ऐसे हैं जिनमें पीने का पानी मिलने का कोई निश्चित साधन नहीं है। 1980 में इन सभी गांवों को समस्या ग्रस्त मान कर इस समस्या का हल निकालने की कोशिश शुरू की गई। जिन गांवों के पास डेढ़ किलोमीटर तक या 15 मीटर की गहराई और 100 मीटर की ऊंचाई के अंतर पर कोई जल स्रोत नहीं था, उन्हें समस्या ग्रस्त माना गया। वहां पानी उपलब्ध कराने के लिए छठी योजना की अवधि में 2485 करोड़ रुपये खर्च किए गए जिसका परिणाम यह निकला कि योजना की समाप्ति तक केवल 1,61,722 गांव ऐसे रह गए थे जिनमें साफ पानी का कम से कम एक स्रोत भी उपलब्ध नहीं था। 30 जून 1991 तक इस प्रकार के जल स्रोत रहित गांवों की संख्या केवल 5182 रह गई थी। अगले दो वर्षों में इन शेष बचे समस्या ग्रस्त गांवों में भी पानी उपलब्ध कराने के लिए 250 करोड़ रुपये का विशेष आबंटन किया गया है और इसके लिए स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के नाम पर एक विशेष क्रैश कार्यक्रम शुरू किया जा रहा है।

गांवों में पीने के पानी की समस्या को हल करने के लिए 1986 में एक प्रौद्योगिकी मिशन गठित किया गया जिसने इस समस्या को हल करने, लागत कम करने, परियोजनाओं को समय पर लागू कराने, और पानी की सफाई व उसके रख-रखाव के तरीकों में सुधार के अलावा पानी में खारेपन, फ्लोरोसिस व अतिरिक्त लौह तत्व पर नियंत्रण पाने के भी उपाय किए। इसके लिए पानी की गुणवत्ता की जांच के लिए प्रयोगशालाएं भी बनाई गई।

पेयजल के साथ-साथ गांवों में स्वच्छता तथा स्वच्छ शौचालयों के निर्माण पर भी बल दिया गया है। गांव स्वच्छता परिसरों—जिनमें स्वच्छ शौचालय और हैण्ड पम्प तथा मानव अपशिष्टों के इस्तेमाल के लिए बायोगैस संयंत्रों का निर्माण भी होगा—के लिए योजनाएं अमल में लाई जा रही हैं। इन बायोगैस संयंत्रों से रात में उस परिसर तथा पंचायत घर की गलियों में प्रकाश भी किया जा सकेगा। गांवों में निजी शौचालयों के निर्माण के लिए भी सब्सिडी दी जा रही है। इनका लाभ उठाने वालों को अपनी भागीदारी और स्वच्छता की जिम्मेदारी की अनुभूति कराने के लिए आंशिक रूप से नकद अथवा वस्तु या मजदूरी के रूप में अंशदान भी लिया जाता है।

सिंचाई सुविधाएं

गांवों का जीवन मूलतः कृषि पर आधारित है और कृषि के लिए सिंचाई सुविधाओं का विस्तार जरूरी है। आजादी से पहले देश में केवल 226 लाख हैक्टेयर भूमि में ही सिंचाई की सुविधा उपलब्ध थी। एक के बाद एक पंचवर्षीय योजनाओं में इस ओर ध्यान दिया गया और पांच योजनाओं के बाद 566 लाख हैक्टेयर भूमि सिंचाई योग्य बना दी गई। छठी योजना में उसमें 115 लाख हैक्टेयर भूमि और जोड़ दी गई। सातवीं योजना की अवधि में 122 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त भूमि के लिए सिंचाई सुविधा का प्रबंध किया गया। लघु सिंचाई योजनाएं क्योंकि जल्दी तैयार होती हैं और उनमें अधिक श्रमिकों को काम दिया जा सकता है इसलिए सातवीं योजना में सिंचाई की लघु योजनाओं पर अधिक ध्यान दिया गया। इससे गांवों के विकास और कृषि उत्पादन को बढ़ाने में मदद मिलेगी।

जवाहर रोजगार योजना

ग्रामीण विकास के दो मुख्य घटकों—राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम का विलय करके पहली अप्रैल 1989 से जवाहर रोजगार योजना शुरू की गई थी। इसका उद्देश्य ग्रामीण इलाकों में बेरोजगार और अल्प रोजगार वाले लोगों को अतिरिक्त लाभकारी रोजगार का अवसर देना और ग्रामीण आर्थिक ढांचे को मजबूत करके रोजगार के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराना है। ऐसे रोजगार देने में अनुसूचित जातियां, जनजातियां व मुक्त बंधुआ मजदूरों को प्राथमिकता दी जाती है और महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत स्थान आरक्षित रखे जाते हैं। यह काम ठेकेदारों या बिचौलियों के बिना सीधे दिए जाते हैं। इस योजना के अन्तर्गत ऐसे काम शुरू किए जाते हैं जिनसे बेरोजगारों को काम मिलने के साथ-साथ स्थायी परिसम्पत्ति का निर्माण भी हो सके। इसमें सामाजिक वानिकी कार्य, सड़क के दोनों ओर वृक्षारोपण, नहर के किनारों और परती भूमि पर वृक्षारोपण, रेल की पटरियों के साथ-साथ वृक्ष लगाने व बिक्री के लिए पौधों का वितरण आदि शामिल है। इन वृक्षों से ईंधन, चारा और फल प्राप्त किए जा सकते हैं। साथ ही जल संरक्षण व एकत्रीकरण कार्य, लघु सिंचाई परियोजनाएं, स्वच्छ शौचालयों के निर्माण, बंजर भूमि के विकास, भवनों-मकानों के निर्माण आदि के काम द्वारा भी ग्रामीणों में व्याप्त बेरोजगारी को दूर करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

इस योजना के अन्तर्गत दो बड़ी परियोजनाएं दस लाख कुओं की योजना और इन्दिरा आवास योजना मुख्य रूप से अनुसूचित जातियों-जनजातियों से सम्बन्धित किसानों व मुक्त बंधुआ मजदूरों को रोजगार तथा आवास की सुविधा प्रदान करने के लिए शुरू की गई हैं। इन्दिरा आवास योजना में अब तक 90663 मकानों का निर्माण किया गया है जिन पर 97.28 करोड़ रुपये की लागत आई है।

जवाहर रोजगार योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण बेरोजगारों को स्वरोजगार के अवसर प्रदान करना है। सातवीं योजना के दौरान इस योजना के विभिन्न कार्यक्रमों में समन्वित ग्रामीण विकास योजना में 182 लाख परिवारों की मदद की गई, ट्राइसेम योजना में करीब 10 लाख ग्रामीण युवकों को विभिन्न धन्धों के लिए प्रशिक्षण दिया गया। महिलाओं व बच्चों के कल्याण के कार्यक्रम चलाए गए और इन कार्यक्रमों के फलस्वरूप 34920 लाख मानव दिवसों का रोजगार सृजित हुआ।

ग्रामीण विकास का अर्थ है गरीबी पर सीधा हमला। इसके लिए अब तक जो प्रयास किए गए हैं, उनका उत्साहवर्द्धक परिणाम निकला है। गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या में पर्याप्त कमी आई है, गांवों में बिजली, पानी, स्कूल और स्वास्थ्य केन्द्र खुले हैं, सड़कें और कृषि मंडियां बन गई हैं और रोजगार के बेहतर साधन उपलब्ध हैं, फिर भी, हमारी मंजिलें अभी दूर हैं। अभी काफी रास्ता तय करना बाकी है। रास्ता कठिन भी है, लेकिन सही दिशा, सही लक्ष्य और दृढ़ निश्चय के साथ शेष सारी कठिनाइयों पर भी काबू पा लेना कठिन नहीं होगा।

लेकिन कोई भी कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक गांवों का देश के शेष भाग से सम्बंध-सम्पर्क न हो। गांवों में सड़कों का नितांत अभाव होने के कारण उन तक पहुंचना तथा सहायता पहुंचाना असम्भव होता है। इसलिए ग्रामीण सड़कों का निर्माण न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का एक हिस्सा है जिसके अन्तर्गत 1500 और उससे अधिक आबादी वाले सभी गांवों तथा 1000 से 1500 तक की आबादी वाले 50 प्रतिशत गांवों को सातवीं योजना के अंत तक पक्की सड़कों से जोड़ने की योजना बनाई गई थी। इस पर किए गए अमल के फलस्वरूप 1500 से अधिक आबादी वाले 60683 गांव और उससे कम आबादी वाले 39448 गांव सातवीं योजना के अंत तक पक्की सड़कों से जोड़ दिए गए जबकि छठी योजना के अंत तक इन गांवों की संख्या क्रमशः 49203 और 30767 थी। पिछले एक साल के अन्दर जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत 92150 किलोमीटर सड़कों का निर्माण किया गया।

गांवों में बिजली पहुंचाने का काम भी तेजी से पूरा किया जा रहा है। चंडीगढ़, केरल, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, दादरी और नागर हवेली, लक्षद्वीप तथा पांडचेरी में हर गांव में बिजली पहुंच गई है। सौर ऊर्जा का उपयोग करने, बायोगैस व गोबर गैस संयंत्रों आदि के इस्तेमाल को प्रोत्साहन देने से इस काम में और भी तेजी लाई जा सकती है।

भूमि सुधारों की भी ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। देश की लगभग 600 लाख हैक्टेयर भूमि की चकबन्दी की गई है, काश्तकारों को काफी संख्या में जमीन का मालिक बना दिया गया है, अधिकतम जोत सीमा से फालतू जमीन को भूमिहीनों में वितरित किया गया है, भूमि से सम्बधित मुकदमेबाजी को कम करने व मामलों को शीघ्रता से निपटाने के लिए 55 अतिरिक्त भूमि संबंधी कानूनों को संविधान की नवीं सूची में शामिल कर लिया गया है और भूमि रिकार्डों को ठीक रखने के लिए आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल किया जा रहा है। भूमि सुधारों के साथ ही कृषि विपणन, कृषि उत्पाद मंडियों का गठन और विनियमन तथा भण्डार गृहों के निर्माण आदि पर भी बल दिया जा रहा है।

ग्रामीण विकास का अर्थ है गरीबी पर सीधा हमला। इसके लिए अब तक जो प्रयास किए गए है, उनका उत्साहवर्द्धक परिणाम निकला है। गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या में पर्याप्त कमी आई है, गांवों में बिजली, पानी, स्कूल और स्वास्थ्य केन्द्र खुले हैं, सड़कें और कृषि मंडियां बन गई हैं और रोजगार के बेहतर साधन उपलब्ध हैं, फिर भी, हमारी मंजिलें अभी दूर हैं। अभी काफी रास्ता तय करना बाकी है। रास्ता कठिन भी है, लेकिन सही दिशा, सही लक्ष्य और दृढ़ निश्चय के साथ शेष सारी कठिनाइयों पर भी काबू पा लेना कठिन नहीं होगा।

विशेष संवाददाता
हिन्दुस्तान
बी-7, प्रेस एन्क्लेव, साकेत
नई दिल्ली-110017

(पृष्ठ 66 का शेष)

परिणाम सामने नहीं आए। अतः ग्रामीण विकास की प्रचलित रणनीति में संशोधन की जरूरत महसूस की जा रही है। इस रणनीति को प्रभावी एवं अधिक सफल बनाने के लिए विगत योजनाओं का मूल्यांकन जरूरी है। भ्रष्टाचार कहां पनपा है तथा किन कारणों से है? योजनाओं में कौन-सी खामियां किस स्तर पर हैं तथा इन खामियों को कैसे दूर किया जाए? योजना कितनी लाभप्रद है? इन सब बातों का आंकलन करने तथा पिछले अनुभवों का लाभ उठाते हुए ग्रामीण विकास योजनाओं को अधिक व्यापक व व्यावहारिक बनाया जा सकता है। संगठन के विभिन्न स्तरों पर लोगों की जवाबदेही निर्धारित करनी चाहिए।

विकास हेतु उचित माहौल

ग्रामीण क्षेत्रों में विकास हेतु उचित माहौल अभी भी नहीं बन पाया है। गांवों में निरक्षरता का बोलबाला है, लोग परम्परावादी हैं, अनेक सामाजिक कुरीतियां प्रचलित हैं। सरकारी सहायता को लोग बुरा समझते हैं, विकास के प्रति सचेत नहीं हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या विकास के लिए किए जा रहे प्रयासों को बेअसर कर ही है। इसकी वजह से भी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में व्यय की जाने वाली धनराशि का बड़ा भाग अनुत्पादक कार्यों में खर्च किया जा रहा है। परिमाणात्क उपलब्धियां तो काफी हैं किन्तु गुणात्मक उपलब्धियां सन्तोषजनक नहीं हैं। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिए गांवों में विकास हेतु उचित माहौल बनाना जरूरी है। शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार कर लोगों को विकास कार्यक्रमों में सक्रियता से भाग लेने के लिए प्रेरित करना पड़ेगा।

अब समय आ गया है ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर व्यय की जा रही धनराशि का 'लागत-लाभ विश्लेषण' करने का। पिछले चार दशकों में शुरू की गई विभिन्न योजनाओं का मूल्यांकन कर कुछ सीमित किन्तु व्यापक योजनाएं शुरू की जानी चाहिए जिनमें ग्रामीण जनता की सक्रिय भागीदारी हो तथा व्यय की गई एक-एक पाई का पूरा सदुपयोग हो। सरकार के दृढ़ संकल्प, क्रियान्वयन से जुड़े लोगों की निष्ठा व जनता के पूर्ण सहयोग पर ही ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता निर्भर है।

27, कल्याण कालोनी
टोंक फाटक, जयपुर

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर

नवीन पन्त

इस लेख में लेखक का कहना है कि विकास की गति में तेजी आने के साथ-साथ सभी विकासशील देशों को किसी न किसी रूप में शहरीकरण की समस्या का सामना करना पड़ता है। अत्याधिक शहरीकरण ग्रामीण क्षेत्रों और शहरों दोनों के लिए हानिकारक है। रोजगार के अवसर गांवों में ही उपलब्ध कराकर भारत में इस समस्या का समाधान करने के प्रयत्न किए गए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की जो योजनाएं शुरू की गई हैं, उनमें ग्रामीणों के लिए गांवों में ही उनकी पसन्द के रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने पर जोर दिया गया है। लेखक का यह मत है कि शहरों से गांवों की ओर वापसी तभी तेज हो सकती है जबकि शहरों की तरह हरेक सुविधा गांवों में भी उपलब्ध की जाए।

स्वतंत्रता के बाद देश के ग्रामीण क्षेत्रों से रोजगार की तलाश में लोगों के शहरों की ओर पलायन में अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि सीमित है और सभी को लाभकारी जीविका उपलब्ध नहीं करा सकती है। अतः रोजगार की तलाश में लोगों का शहर आना स्वाभाविक है।

कृषि योग्य भूमि की कमी के अलावा जनसंख्या वृद्धि भी इसका एक कारण है। जनसंख्या वृद्धि के कारण हैं : स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि के कारण मृत्यु दर में कमी, महामारियों पर नियंत्रण, भयंकर सूखों के बावजूद अभावग्रस्त क्षेत्रों में उचित दर पर अनाज उपलब्ध कराना और आर्थिक विकास।

स्वतंत्रता के बाद लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। 1951 में औसत आयु केवल 32 वर्ष थी जो अब बढ़कर 59 वर्ष हो गई है। 1951 में मृत्यु दर जो प्रति हजार जनसंख्या 27 थी 1989 में 10.2 प्रति हजार हो गई। लेकिन मृत्यु दर के साथ-साथ जन्म दर में कमी नहीं हुई है। इस कारण हमारी जनसंख्या में निरन्तर बढ़ोतरी हो रही है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवा सुविधाओं में निरन्तर विस्तार के कारण बाल मृत्यु दर में उल्लेखनीय कमी हुई है। 1951 में पैदा हुए एक हजार जीवित बच्चों में से केवल 162 जीवित रहे थे। 1971 में प्रति हजार जीवित बच्चों के जन्म के पीछे बाल मृत्यु दर 129 और 1989 में 91 रह गई।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों की कमी और पूर्ण कालिक रोजगार के अभाव में देश के ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों का शहरों को जाना, जो चालीस के दशक में बूंद-बूंद के रूप में शुरू हुआ था, उसने कालान्तर में देश के सभी भागों में विशाल नदी का रूप ले लिया।

अत्यधिक शहरीकरण हानिकारक

देश के ग्रामीण क्षेत्रों से अधिक संख्या में लोगों का शहर जाना गांवों और शहरों दोनों के दीर्घकालीन हितों के विरुद्ध है। इससे एक ओर गांवों में हमारी प्राचीन समृद्ध सांस्कृतिक विरासत लुप्त हो रही है, ग्रामीण शिल्प, दस्तकारी उद्योग समाप्त हो रहे हैं और कुछ स्थानों पर श्रमिकों के अभाव में इस पलायन के परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ रहा है। दूसरी ओर, तेजी से हो रहे शहरीकरण से आर्थिक विषमताएं बढ़ रही हैं, सामाजिक तनाव पैदा हो रहे हैं और चोरी, डाके और हत्याओं जैसे अपराध बढ़ रहे हैं।

गांवों से रोजगार की तलाश में निकले ये अभावग्रस्त लोग शहरों में भी आवश्यक बुनियादी सुविधाओं के अभाव में गरीबी, कमी और निरक्षरता का जीवन बिताते हैं। शहर पहुंचने के बाद वर्षों तक इन लोगों को दिहाड़ी पर अकुशल मजदूरों के रूप में काम करना पड़ता है। फिर काफी समय बाद, कुछ लोग राज-मजदूर, मिस्त्री और रिक्शा चलाने का कार्य आदि करके अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

शहरों में ऊंचे किराए न दे सकने के कारण ये लोग घनी बस्तियों के समीप सबसे खराब, अस्वास्थ्यकर स्थानों पर अपनी झोपड़-पट्टियां डाल लेते हैं। आम तौर पर ये झोपड़-पट्टियां गंदे नालों, ताल-तलैयों के समीप होती हैं। दस-दस, पंद्रह-पंद्रह वर्ग गज क्षेत्र में बनी इन झोपड़ पट्टियों में अक्सर एक कमरा होता है। इसी एक कमरे में इन लोगों का पूरा परिवार और कभी-कभी सगे भाइयों के दो परिवार रहते हैं। ये लोग इसी में घर गृहस्थी का सामान रखते हैं, भोजन बनाते हैं और इसी में अतिथियों, और रिश्तेदारों से भेंट मुलाकात भी करते हैं।

सार्वजनिक सुविधाओं के नाम पर इन झोपड़-पट्टियों में एक दो नल, हैण्ड पम्प और बिजली के लैम्पपोस्ट होते हैं। शौच के लिए सुबह शाम लोग समीपवर्ती किसी निर्जन स्थान में जाते हैं। सैकड़ों लोगों के इस प्रकार हर दिन एक खुली जगह में शौच करने का पर्यावरण और सफाई पर क्या असर होगा, इसका अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। बच्चों को घर के ही समीप शौच करा दिया जाता है। सफाई की जिम्मेदारी आवारा कुत्तों और सूअरों की होती है। इन बस्तियों में पानी की निकासी की कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं होती। कच्ची नालियों में गन्दा दुर्गन्धयुक्त पानी बहता रहता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि झोपड़-पट्टियों के लोग अत्यन्त दूषित माहौल में दिन बिताते हैं।

दूषित माहौल, कुपोषण, कड़ी मेहनत और चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में झोपड़-पट्टियों के लोग असमय में ही अक्सर बीमार होकर मर जाते हैं। भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के आर्थिक प्रभाग द्वारा जारी आर्थिक समीक्षा के अनुसार 1990-91 में देश में 5 करोड़ 12 लाख लोग झोपड़-पट्टियों में रह रहे थे। स्वतंत्र प्रेक्षकों के अनुसार यह संख्या इससे दुगनी हो सकती है।

निस्सन्देह पिछले पचास-साठ वर्षों के दौरान किए गए विकास प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अब देश में गरीबी का वह रूप नहीं है, जो तीस के दशक में या उससे पहले था। फिर भी, अभी देश में अपनी समस्त कुरूपता के साथ गरीबी की समस्या बनी हुई है। गरीबी एक अभिशाप है। यह अनेक तरह की बुराइयों को जन्म देती है। गरीबी मनुष्य को आगे बढ़ने से रोकती है और शिक्षा, सामाजिक-न्याय, सहिष्णुता, उत्पादकता एवं कुशलता में आड़े आती है।

शहरीकरण से उत्पन्न समस्याएं

गांवों से लोगों का शहरों को यह पलायन नगरों में आवास, शुद्ध पेयजल, बिजली, परिवहन आदि की समस्याएं उत्पन्न कर रहा है। महानगरों की जनसंख्या में अभूतपूर्व बढ़ोतरी से उनका जीवन नरक हो गया है। महानगरों में पानी, बिजली और परिवहन व्यवस्था की कमी तो आम शिकायतें हैं। निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के कारण लोगों को रहने का मकान, बच्चों को पढ़ाने के लिए स्कूलों और बीमारी का इलाज कराने के लिए अस्पतालों में जगह की कमी का भी सामना करना पड़ रहा है। नगरों की, विशेष रूप से महानगरों की, जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है कि विशाल बहुमंजिली इमारतों के निर्माण के बाद आम आदमी की आवास योजनाओं के लिए जमीन नहीं है और जो जमीन है, उसके दाम आकाश को छू रहे हैं।

जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ महानगर व्यापार, वाणिज्य और उद्योगों के केन्द्र बनने लगते हैं। महानगरों के उपनगरों अथवा समीपवर्ती स्थानों पर बड़े उद्योगों की स्थापना होने लगती है। सड़कों पर गाड़ियों, बसों, स्कूटरों की संख्या बढ़ने लगती है। आए दिन ट्रैफिक जाम होने लगता है। पहले सड़कें चौड़ी की जाती हैं फिर 'फ्लाई ओवर' बनाए जाते हैं। बिजली, टेलीफोन के तार और जल-मल निकासी के लिए पाइप बिछाने के वास्ते आए दिन सड़कें खोदी जाती हैं और उनकी मरम्मत की जाती है। महानगरों का रख-रखाव और विस्तार कितना खर्चीला है इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि एक फ्लाई ओवर की लागत 15-20 करोड़ रु. आती है। इतने में दर्जनों स्कूल, अस्पताल बनाए जा सकते हैं और सिंचाई के लिए सैकड़ों नलकूप लगाए जा सकते हैं।

महानगरों का जीवन असमानताओं को बढ़ाता है, विषमताओं और अपराधों को जन्म देता है। अतः यह आवश्यक है कि सरकार गांवों से लोगों का शहरों को पलायन रोकने के लिए ठोस उपाय करे। इसके लिए सरकार को दीर्घावधि रणनीति बनानी होगी। कुछ ऐसे उपाय करने होंगे जिससे लोगों को ग्रामीण क्षेत्रों में रहने का प्रोत्साहन मिले। इसके साथ ही उसे कुछ ऐसे उपाय भी करने होंगे, जिससे लोगों की शहरों, विशेष रूप से महानगरों में रहने की इच्छा पर अंकुश लगे।

केवल थोड़े से लोगों को छोड़कर जो शहरों की चकाचौंध से आकृष्ट होकर गांव छोड़ते हैं, अधिकांश ग्रामीण चिकित्सा, पढ़ाई, उच्च शिक्षा और रोजगार की तलाश में शहर जाते हैं। अगर उन्हें ये सुविधाएं गांव में ही उपलब्ध हो जाएं तो उनका शहर जाना अपने आप रुक जाएगा। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है रोजगार के अवसर।

गरीबी की समस्या

स्वतंत्रता के बाद से ही सरकार बेरोजगारी दूर करने के प्रयत्न करती रही है। योजनाबद्ध विकास का मुख्य उद्देश्य धीरे-धीरे बेरोजगारी को कम करना है। अनुमान था कि योजनाबद्ध आर्थिक विकास से उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ बेरोजगारी, अर्ध-रोजगारी की समस्या का समाधान हो जाएगा। बेरोजगारी की समस्या के साथ गरीबी की समस्या का अन्तरंग संबंध है। अतः यह अनुमान था कि बेरोजगारी उन्मूलन के साथ गरीबी का उन्मूलन हो जाएगा तथापि साल

पंचवर्षीय योजनाओं के पूरी हो जाने के बाद भी गरीबी की समस्या का समाधान नहीं कर सके हैं।

निस्सन्देह पिछले पचास-साठ वर्षों के दौरान किए गए विकास प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अब देश में गरीबी का वह रूप नहीं है, जो तीस के दशक में या उससे पहले था। फिर भी, अभी देश में अपनी समस्त कुरूपता के साथ गरीबी की समस्या बनी हुई है। गरीबी एक अभिशाप है। यह अनेक तरह की बुराइयों को जन्म देती है। गरीबी मनुष्य को आगे बढ़ने से रोकती है और शिक्षा, सामाजिक-न्याय, सहिष्णुता, उत्पादकता एवं कुशलता में आड़े आती है।

इधर पिछले कुछ वर्षों के दौरान यह अनुभव किया गया है कि बेरोजगारी की समस्या के निराकरण के लिए केवल सामान्य विकास कार्यक्रम पर्याप्त नहीं है। विकास कार्यक्रमों के साथ-साथ बेरोजगारी उन्मूलन के लिए कुछ पूरक कार्यक्रमों की भी आवश्यकता है। इन कार्यक्रमों का मूल लक्ष्य रोजगार के अवसर पैदा करना, समाज के कमजोर वर्गों की आय बढ़ाना और गरीबी उन्मूलन है।

भूमि की कमी के कारण देश के ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या का एक वर्ग ऐसा है, जिसके पास कोई भूमि नहीं है। गांव छोड़कर शहर जाने वालों में यह वर्ग प्रमुख है। यह वर्ग दूसरे के खेतों पर मेहनत-मजदूरी करके अथवा ग्रामीण अर्थव्यवस्था से जुड़े अन्य कार्य करके अपनी आजीविका अर्जित करता है। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों के अनेक शिल्पों की बिक्री की उचित व्यवस्था न होने और कारीगरों के शहरों को चले जाने से इन शिल्पों के लुप्त हो जाने की आशंका पैदा हो गई है।

सरकार ने इन लोगों के लाभ के लिए अनेक कार्यक्रम विकसित किए हैं जिनमें इन्हें मौसमी रोजगार मिल सकता है। इन कार्यक्रमों में प्रमुख हैं—समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन जातियों के लिए विशेष घटक योजनाएं और महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रम। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण जनता के लिए गांवों में उनकी पसन्द के रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है।

सामाजिक न्याय की ओर

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम प्रमुख गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य ग्रामीण गरीबों को गरीबी की रेखा को पार करने के लिए समर्थ बनाना है। इसके लिए उन सीमान्त किसानों, कृषि मजदूरों और ग्रामीण कारीगरों को जिनकी वार्षिक आय 6,400 रुपये (व्यवहार में 4,800 रु. से कम है), उत्पादक परिसम्पत्तियां बनाने के लिए सरकारी अनुदान और वित्तीय संस्थाओं से ऋण उपलब्ध कराए जाते हैं। इसमें कम आय वालों को पहले सहायता दी जाती है। सहायता पाने वालों में 50 प्रतिशत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्य, 40 प्रतिशत महिलाएं और 3 प्रतिशत विकलांग होने चाहिए। सहायता प्रदान करते समय फालतू भूमि के आवंटकों और परिवार कल्याण कार्यक्रम के 'ग्रीन कार्ड' धारियों को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। इस तरह यह कार्यक्रम सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तनों का वाहक बनने का प्रयत्न कर रहा है।

छोटे किसानों को 25 प्रतिशत, सीमान्त किसानों, कृषि मजदूरों और ग्रामीण दस्तकारों को 33¹/₃ प्रतिशत, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के परिवारों और विकलांगों को 50 प्रतिशत अनुदान (सब्सिडी) दी जाती है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के परिवारों और विकलांगों के लिए सब्सिडी की सीमा 5 हजार रु., अन्य के लिए 3,000 रु. है। सूखाग्रस्त और मरुभूमि विकास क्षेत्रों के लिए यह सीमा 4000 रु. है। सब्सिडी के लिए राज्य और केन्द्र सरकार 50:50 के अनुपात में वित्त व्यवस्था करती है।

सातवीं योजना के दौरान समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 181.77 लाख परिवारों को 3315.82 करोड़ रुपये की सब्सिडी और 5372.53 करोड़ रुपये के ऋण उपलब्ध कराए गए। इस प्रकार सातवीं योजना के दौरान इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कुल 8688.35 करोड़ रुपये का निवेश किया गया।

वर्ष 1990-91 के दौरान इस योजना के अन्तर्गत 23.71 लाख परिवारों को सहायता देने का लक्ष्य था और इसके लिए 747.31 करोड़ रुपये का आबंटन किया गया। लेकिन अनन्तिम आंकड़ों के अनुसार 802.36 करोड़ रुपये शासन के लिए उपलब्ध कराए गए और 29.05 लाख परिवारों की सहायता की गई। सहायता पाने वालों में 48.74 प्रतिशत अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के सदस्य थे। इस प्रकार इन जातियों के 50 प्रतिशत लोगों को सहायता देने का लक्ष्य पूरा नहीं किया जा सका। भविष्य में इसे प्राप्त करने के लिए प्रभावी उपाय किए गए हैं।

महिला और बाल विकास

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत महिलाओं और बच्चों के विकास की एक विशेष योजना शुरू की गई है। इस योजना का उद्देश्य गरीबी की रेखा के नीचे रह रही ग्रामीण परिवारों की महिलाओं को अपना रोजगार शुरू करने के अवसर प्रदान करना है। इस योजना के लिए चुनी गई

महिलाओं के दल बनाए जाते हैं। प्रत्येक दल में 10-15 महिलाएं होती हैं। कोई भी कार्य शुरू करने से पहले महिलाओं को कार्यकुशलता का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रत्येक दल को बुनियादी सुविधाएं, कच्चे माल की खरीद, बिक्री और छोटे बच्चों की देखभाल के आवर्तक कोष के रूप में 15,000 रुपये दिए जाते हैं। इस कोष के लिए भारत सरकार, राज्य सरकार और अन्तरराष्ट्रीय बाल कोष (यूनीसेफ) बराबर राशि प्रदान करते हैं। प्रत्येक दल मुख्य कार्यक्रम के अन्तर्गत सब्सिडी पाने का भी अधिकारी है।

सातवीं योजना के दौरान इस योजना के अन्तर्गत महिलाओं के 28,000 से अधिक दल बनाए गए। 1990-91 में 74,400 महिला सदस्यों के 4,500 दल बनाए गए। यद्यपि कार्यक्रम में मुख्य जोर ग्रामीण महिलाओं को आय के अवसर उपलब्ध कराने पर दिया जाता है फिर भी महिला और बाल कल्याण इस कार्यक्रम का आवश्यक अंग है। महिला और बाल विकास कार्यक्रम में प्रौढ़ शिक्षा, बच्चों को पोषाहार, महिलाओं के स्वास्थ्य की देखभाल आदि कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

विकास योजनाओं को अन्तिम रूप देने से पहले उनकी चर्चा ग्राम पंचायत बैठक में करना जरूरी है। इस तरह योजना के अन्तर्गत विकास कार्यों के क्रियान्वयन को ग्राम पंचायत समस्त बालिग ग्राम निवासियों की सहमति में विचार-विमर्श के साथ जोड़ दिया गया है। यह लोगों को विकास कार्यों में भागीदार बनाने का क्रान्तिकारी विचार है।

ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत 18 से 35 वर्ष के आयु के युवकों को अपना काम धन्धा शुरू करने के लिए तकनीकी प्रशिक्षण और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत वित्तीय सहायता दी जाती है। प्रशिक्षण समूहों में दिया जाता है और प्रशिक्षण के दौरान छात्रवृत्ति दी जाती है। मोटर गाड़ियों, रैफ्रिजरेटरों, टेलीविजन, पम्प सेटों और बिजली के सामान की मरम्मत, बढ़ईगीरी, हीरे तराशने, फर्नीचर बनाने, हथकरघा बुनाई, चर्म उद्योग फोटोग्राफी, स्प्रे पेन्टिंग और विभिन्न प्रकार के साबुन निर्माण सहित लगभग 125 व्यवसायों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रमों का विलय करके 1 अप्रैल 1989 को जवाहर रोजगार योजना शुरू की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार और अल्प-रोजगार वाले लोगों के लिए अतिरिक्त लाभकारी रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है। इसके साथ ही यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था को मजबूत और गतिशील बनाकर ग्रामीणों के समग्र जीवन में सुधार लाने और रोजगार के अतिरिक्त अवसर पैदा करने का भी प्रयत्न करती है। इस योजना का खर्च केन्द्र और राज्यों द्वारा 80:20 के अनुपात में उठाया जाता है। केन्द्रीय सहायता जिलों को सीधे दे दी जाती है। योजना का क्रियान्वयन ग्राम पंचायतों के द्वारा किया जाता है। दो या अधिक पंचायतें मिलकर अपने साधनों का इस्तेमाल कर सकती हैं। योजना के 6 प्रतिशत संसाधन गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और बंधुआ मजदूरों के लिए इंदिरा आवास योजना के अन्तर्गत दिए जाते हैं। योजना के अन्तर्गत पैदा किए गए 30 प्रतिशत रोजगार के अवसर महिलाओं के लिए आरक्षित हैं।

बिचौलियों और ठेकेदारों के लिए कोई स्थान नहीं

इस योजना की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें ठेकेदारों अथवा बिचौलियों को काम करने की अनुमति नहीं है। कुल राशि का कम-से-कम 30 प्रतिशत हिस्सा मजदूरी के रूप में खर्च किया जाना चाहिए। जिन राज्यों में 'काम के बदले अनाज' दिया जाता है वहां गेहूं और चावल सरकार द्वारा निर्धारित मूल्यों पर वितरित किया जाता है।

योजना के अन्तर्गत अनेक किस्म के विकास कार्य जैसे कि मरुभूमि विकास कार्यक्रम, सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम, महिलाओं और बच्चों के विकास कार्यक्रम, प्राथमिक विद्यालयों के लिए भवन निर्माण और भूमि विकास संबंधी कार्यक्रम हाथ में लिए जाते हैं। इस योजना की एक अन्य विशेषता यह है कि विकास योजनाओं को अन्तिम रूप देने से पहले उनकी चर्चा ग्राम पंचायत बैठक में करना जरूरी है। इस तरह योजना के अन्तर्गत विकास कार्यों के क्रियान्वयन को ग्राम पंचायत समस्त बालिग ग्राम निवासियों की सहमति में विचार-विमर्श के साथ जोड़ दिया गया है। यह लोगों को विकास कार्यों में भागीदार बनाने का क्रान्तिकारी विचार है।

यद्यपि अभी यह कहना कठिन है कि ग्राम विकास की इन योजनाओं के क्रियान्वयन के नतीजे क्या निकलेंगे तथापि 1991 की जनगणना के जो आंकड़े अब तक प्रकाशित हुए हैं उनसे पता चलता है कि भारत में शहरीकरण की प्रवृत्ति पर कुछ अंकुश लगा है। इस संबंध में पूरी स्थिति तो पूरे आंकड़ों के प्रकाशन के बाद ही स्पष्ट होगी। फिर भी लगता है कि इन योजनाओं के क्रियान्वयन से ग्रामीणों के शहरों की ओर भागने की प्रवृत्ति में पहली बार कुछ परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन का स्वागत है।

22, मैत्री एपार्टमेंट्स,
ए/3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो

(गृह मंत्रालय)

पुलिस से संबंधित हिन्दी की उत्कृष्ट पुस्तकों के लिए

पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार न्यायिक विज्ञान, पुलिस प्रशिक्षण, पुलिस प्रशासन, पुलिस अन्वेषण, अंगुलिछाप, अपराध शास्त्र तथा अन्य पुलिस से संबंधित विषयों पर हिन्दी की उत्कृष्ट मूल पुस्तकें लिखने अथवा अनुवाद करने के लिए सृजनशील लेखकों और अनुवादकों को उपर्युक्त योजना के द्वारा प्रोत्साहित करता है। इस योजना के निम्नलिखित दो भाग हैं :—

भाग– 1 :—

पुलिस से संबंधित विषयों पर हिन्दी की प्रकाशित पुस्तकों के लिए निम्नलिखित पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं :—

1. मूल पुस्तकें :— सात-सात हजार रुपए तक के पांच पुरस्कार।

2. अनूदित हिन्दी पुस्तकें :— तीन-तीन हजार रुपए तक के दो पुरस्कार।

भाग – 2 :—

ब्यूरो किसी एक पुलिस-विषय पर पुस्तक लिखवाने के लिए प्रति वर्ष दस हजार रुपए तक का एक पुरस्कार भी प्रदान करता है जिसके लिए इस वर्ष का विषय है– **"सामाजिक चेतना और विकास के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की भूमिका का उद्भव"**

इस पुरस्कार योजना में भाग लेने के लिए निम्नलिखित शर्तें हैं :—

1. इस योजना में भारत के सभी नागरिक भाग ले सकते हैं।
2. योजना के प्रथम भाग में वे सभी पुस्तकें शामिल की जाएंगी जो वर्ष 1990 तक प्रकाशित हुई हैं।
3. पांडुलिपियां भी प्रविष्टि के रूप में भेजी जा सकती हैं परन्तु यदि विचार करने के बाद इन्हें पुरस्कार के लिए अनुमोदित किया गया तो पुरस्कार राशि केवल पांडुलिपि के प्रकाशन के बाद ही दी जाएगी। प्रकाशन करवाने की व्यवस्था स्वयं लेखक/अनुवादक को करनी होगी।
4. पुस्तकों/पांडुलिपियों की तीन-तीन प्रतियां निर्धारित प्रपत्र के साथ इस ब्यूरो को भेजी जाएंगी। यह पुस्तकें/पांडुलिपियां वापस नहीं की जाती हैं। पांडुलिपि की तीन प्रतियां टाइप होनी चाहिए।
5. पुस्तक लगभग 100 पृष्ठों की अवश्य होनी चाहिए।
6. योजना के भाग- 2 के लिए आवश्यक है कि लेखक उपर्युक्त विषय पर अपनी अपनी विस्तृत रूपरेखाएं और बायोडेटा की तीन-तीन प्रतियां भेजें।
7. इस योजना में वे पुस्तकें शामिल नहीं की जाएंगी जिन पर पहले ही भारत सरकार, किसी राज्य सरकार अथवा अन्य किसी सरकारी एजेंसी द्वारा कोई पुरस्कार प्रदान किया जा चुका हो अथवा इसके लिए कोई आर्थिक सहायता प्राप्त हुई हो।

योजना के अंतर्गत प्राप्त पुस्तक/रूपरेखाओं का मूल्यांकन एक मूल्यांकन समिति द्वारा किया जाता है जिसका निर्णय अंतिम और बाध्यकर होगा। यदि समिति निर्णय लेती है कि कोई पुस्तक अपेक्षित स्तर की नहीं है तो उसे अधिकार है कि वह कोई भी पुरस्कार घोषित न करे अथवा पुस्तक के स्तर को ध्यान में रखते हुए पुरस्कार की राशि कम कर दे।

भेजने की अंतिम तिथि :—

उपर्युक्त संदर्भ में पुस्तक अथवा पांडुलिपियां अथवा रूपरेखाएं ब्यूरो के कार्यालय में 31.12.1991 तक अवश्य पहुंच जानी चाहिए।

विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क करें :—

संपादक हिन्दी
पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो,
ब्लाक– 11, 3/4 मंजिल,
लोदी रोड केंद्रीय कार्यालय परिसर,
नई दिल्ली– 110003

प्रपत्र

1. पुस्तक का नाम और विषय
2. पुस्तक का संस्करण व वर्ष
3. लेखक/अनुवादक का नाम और पूरा पता
4. प्रकाशक का नाम और पता
5. रायल्टी पाने वाली संस्था अथवा व्यक्ति का नाम और पूरा पता
6. (क) क्या यह रचना मूल अथवा अनूदित है ?
   (ख) यह अनूदित कृति है तो मूल पुस्तक और उसके लेखक और प्रकाशक का पूरा पता
7. प्रमाणित किया जाता है कि यह अनूदित कृति है तथा इसके लेखक और प्रकाशक से हिन्दी अनुवाद तथा प्रकाशित करने की अनुमति ले ली गई है।
8. प्रमाणित किया जाता है कि इस पुस्तक की मूल कृति, अनुवाद अथवा पांडुलिपि पर भारत सरकार, किसी राज्य सरकार अथवा किसी अन्य एजेंसी द्वारा परिचालित कोई पुरस्कार अथवा अन्य किसी तरह की कोई आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं हुई है।

हस्ताक्षर (लेखक/अनुवादक)

davp : 91/306

ग्रामीण विकास कार्यक्रम : समस्याएं एवं सम्भावनाएं

डा. गिरिजा प्रसाद दूबे

लेखक का मानना है कि योजनाओं की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इनके कार्यान्वयन में लगे लोगों में कर्तव्यपरायणता तथा ईमानदारी हो तथा जिनके लिए योजनाएं बनाई जाएं उनका सहयोग कार्यक्रम के कार्यान्वयन में प्राप्त हो। ये दोनों ही पहिए मिलकर विकास योजनाओं की गाड़ी को खींचते हैं। उनका सुझाव है कि ग्रामीण विकास को गतिमान बनाने तथा उसकी प्रगति को सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय निकायों को आवश्यक संसाधन तथा अधिकार प्रदान करने होंगे। नए पंचायत राज कानून में कमजोर वर्गों, महिलाओं व भूमिहीनों की व्यापक सहभागिता सुनिश्चित की जानी चाहिए।

महात्मा गांधी जी कहते थे "भारत गांवों में बसता है।" भारत की सम्पूर्ण आबादी का लगभग 70.0 प्रतिशत भाग आज भी गांवों में निवास करता है। उनकी अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। देश के कुल भूमि के 43.5 प्रतिशत हिस्से में कृषि होती है साथ ही बोयी गई भूमि के 80.0 प्रतिशत भाग पर केवल खाद्यान्न फसलों का उत्पादन किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि चारे और औद्योगिक फसलों के लिए कम से कम भूमि का उपयोग किया जाता है। भारत जैसी जलवायु वाले देश में पारिस्थिति सन्तुलन के लिए 33.30 प्रतिशत मैदान पर वन का होना आवश्यक है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कृषि क्षेत्र में अनेक सुधारों के कारण पिछले 25 वर्षों में उत्पादन में लगभग ढाई गुना की वृद्धि हुई है परन्तु यह वृद्धि जनसंख्या के आधिक्य के कारण कृषकों की दशा सुधारने में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं ला सकी बल्कि कृषि पर आश्रितों की संख्या में इससे और वृद्धि होती गई अर्थात् ग्रामीण बेरोजगारों की संख्या में अभिवृद्धि हुई।

विश्व में कृषि पर निर्भरता की दृष्टि से बंगलादेश के बाद दूसरा स्थान भारत का आता है जबकि इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस और जापान में क्रमशः 3,4,8,8,14 और 28 प्रतिशत जनसंख्या का क्रियाशील भाग कृषि क्षेत्र पर लगा हुआ है। साथ ही भारत में सकल राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि की सहभागीदारी 45.0 प्रतिशत, उद्योग की 19.0 प्रतिशत तथा नौकरी की 28.0 प्रतिशत है जबकि इंग्लैंड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस और जापान में कृषि की सहभागीदारी क्रमशः 3,3,9,5,6,9 प्रतिशत ही है। ऐसी स्थिति में भारतीय सन्दर्भ में निश्चित रूप से कृषि क्षेत्र और अधिक अधिभार सहने की स्थिति में नहीं है। प्रधानमंत्री श्री नरसिंहाराव ने 22 जून, 1991 के अपने प्रसारण में भी इसी प्रकार की चिन्ता इन शब्दों में व्यक्त की है—"जमीन पर जो दबाव है आज, मतलब जमीन पर या खेती पर आजीविका पाने वाले लोगों की जो एक बहुत बड़ी संख्या है उसे कम करना है और उसके लिए रोजगार के दूसरे साधन भी मुहैया करने हैं। उद्योग वहां चलाने हैं और जो भी खर्च इस पर किया जाएगा उसका पूरा-पूरा लाभ जिनको मिलना चाहिए, जिनके लिए खर्च किया जाता रहा है। उनको अवश्य मिले, बीच में कहीं इधर-उधर जाया न हो, इसको सुनिश्चित करना है।"

स्वतंत्रता के पूर्व विदेशी शासन ने कृषि क्षेत्र को विभिन्न प्रकार से केवल शोषण का साधन ही बनाया था। उस समय कृषि का केवल शोषण ही नहीं हुआ बल्कि अनेक अन्य समस्याओं की अभिवृद्धि भी हुई, जैसे कृषि क्षेत्र पर सीमित लोगों का अधिकार, मनमानी लगान वसूली तथा बंधुआ मजदूरों की उत्पत्ति आदि। यही नहीं तत्कालीन शासन द्वारा इस क्षेत्र की दशा सुधारने तथा गरीबी उन्मूलन के लिए कोई योजना भी लागू नहीं की गई बल्कि अपने माल की बिक्री हेतु उन्होंने भारतीय कुटीर उद्योग को भी नष्ट कर दिया। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण गरीबों की संख्या में वृद्धि होती गई।

स्वतंत्रता संग्राम के दौर में ही महात्मा गांधी और नेहरू जैसे शीर्षस्थ नेताओं एवं अन्य जनसेवकों की सहायता से ग्रामीण विकास के लिए गैर-सरकारी क्षेत्र में अनेक संस्थाएं चलाई गईं जिनमें अधिकांश आज भी कार्यरत हैं। ऐसी संस्थाओं में भारत सेवक समाज, श्री निकेतन, आदर्श सेवा संघ, किसान संगठन एवं भारत सेवा मण्डल आदि उल्लेखनीय हैं।

स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कृषि के विकास के साथ ही साथ गरीबों की दशा सुधारने के लिए भी प्रयास किए गए। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ही कृषि विकास को प्राथमिकता दी गई। पुनः दूसरी योजना में औद्योगीकरण के औचित्य को ध्यान में रखकर कृषि के स्थान पर उद्योगों की स्थापना पर विशेष बल दिया गया परन्तु बाद की हर योजना में कृषि पर पर्याप्त ध्यान देने की बात स्वीकार की गई। इसके साथ ही कृषि क्षेत्र और इसमें लगे लोगों की दशा सुधारने के लिए महात्मा गांधी जी के जन्म दिन पर 2 अक्तूबर 1952 से सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ किया गया। सबसे पहले यह कुछ चुने हुए क्षेत्रों में लागू किया गया, परन्तु इसके उत्साहवर्द्धक परिणाम को देखकर सरकार ने धीरे-धीरे सम्पूर्ण देश को इस योजना के अंतर्गत सम्मिलित कर लिया। समय-समय पर सामुदायिक विकास योजना के अंतर्गत अन्य अनेक कार्यक्रम सम्मिलित होते रहे हैं।

भारत में 1970 के दशक में सम्भवतः जो सबसे बड़ी उपलब्धि हुई और जिसमें अब भी प्रगति चल रही है, वह है, ग्रामीण और शहरी विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्रों के कार्यक्रमों की शुरुआत जिनका प्रमुख उद्देश्य समाज के गरीब वर्गों की ओर ध्यान देना तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाना है। निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि इन कार्यक्रमों के उद्देश्यों से गांधी जी को प्रसन्नता होती। इसमें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, समेकित बाल विकास कार्यक्रम और जनजाति विकास कार्यक्रम आदि सम्मिलित हैं। इन सब कार्यक्रमों का सम्मिलित वृहद रूप बीस सूत्रीय कार्यक्रम है जिनकी शुरुआत जुलाई, 1975 में हुई थी। इन कार्यक्रमों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें पूरा ध्यान ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के गरीबों पर दिया गया है। गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले गरीब परिवारों और व्यक्तियों का चयन करके उन्हें अपने क्षेत्र की परिस्थितियों के अनुरूप उत्पादन कार्य प्रारम्भ करने के लिए पूंजी जुटाने के उद्देश्य से सहायता उपलब्ध कराई जाती है। खास जोर इस बात पर रहता है कि परिवार और व्यक्ति के लिए उत्पादन और आय के अवसर पैदा हों। वास्तविक उत्पादन और सम्पदा बनाना ही इन कार्यक्रमों का मुख्य लक्ष्य है।

पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश का सामान्य विकास किया जाता रहा है। इन कार्यक्रमों के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों की उपलब्धियों से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है परन्तु इन योजनाओं के कार्यान्वयन और मूल्यांकन के माध्यम से उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकी। समाज के निचले हिस्से का एक बहुत बड़ा वर्ग विकास के चकाचौंध से अलग-थलग हो गया। यह महसूस किया जाने लगा कि इस बड़े वर्ग की कठिनाइयों को दूर करने के लिए विशेष कार्यक्रम (20 सूत्री) बनाया जाए जिसका प्रारम्भ भी उक्त तिथि को कर दिया गया। कुछ क्षेत्रों में इस कार्यक्रम द्वारा प्रगति भी हुई। इसी कार्यक्रम के अंतर्गत 1976 में बंधुआ मजदूरी प्रथा की समाप्ति के लिए कानून बनाए गए। निम्न एवं मध्यम आय-वर्ग के लोगों को आय-कर से छूट दी गई। कार्यक्रमों की उपलब्धियों में उच्चतम लाभ की रिपोर्ट भी दर्ज की गई परन्तु विकास की नई चुनौतियों एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन की कठिनाइयां तथा उनके दोषों के कारण समाज के कमजोर और पिछड़े वर्ग की कठिनाइयां दूर नहीं हो सकीं। इसके लिए पुनः एक नए बीस सूत्रीय कार्यक्रम की आवश्यकता महसूस की गई।

14 जनवरी 1983 में एक संशोधित 20 सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की गई। इस संशोधित बीस सूत्री कार्यक्रम की यह विशेषता है कि इसमें उन लोगों को मुख्य रूप से सम्मिलित किया गया जो समाज के विभिन्न क्षेत्रों के पिछड़े और कमजोर लोग थे। यह कार्यक्रम विशेषकर उत्पादकतापरक कहा जा सकता है। इसके पहले ही सूत्र में सिंचाई की क्षमता में वृद्धि, सघन खेती तथा कृषि क्षेत्र में नवीन तकनीक और साधनों का अधिक से अधिक प्रयोग करने पर बल दिया गया था परन्तु बाद में चलकर इस कार्यक्रम में पुनः संशोधन किया गया।

बीस सूत्री कार्यक्रम का तृतीय संशोधित रूप 1986 में स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के 43वें जन्म दिन पर शुरू किया गया। इस कार्यक्रम के पहले सूत्र का पहला बिन्दु है प्रत्येक गांव में निर्धनता कम करके, कार्यक्रम का लाभ सभी गरीबों तक पहुंचाया जाए। गरीबी के खिलाफ लड़ाई को उच्चतम प्राथमिकता देते हुए बताया गया कि पिछले 5 वर्षों में 10 करोड़ व्यक्तियों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाया गया। उन्होंने कहा कि हमारा लक्ष्य गरीबी दूर करना और रोजगार के पूरे अवसर जुटाना है। नए बीस सूत्री कार्यक्रम की प्रस्तावना में भी यह कहा गया है कि यह कार्यक्रम योजना की वह तेज धार है

जो गरीबी को काटकर दूर फेंक देगी। यह कार्यक्रम हमारी उपलब्धियों और अनुभवों के आलोक में नए सांचे में ढाला गया है। इस नए संरचित कार्यक्रम में चार बातों के लिए प्रतिबद्धता दोहराई गई है। ये, गरीबी मिटाना, उत्पादकता बढ़ाना, आय में असमानताएं कम करना, सामाजिक और आर्थिक विषमताएं दूर करना तथा जीवन में निखार लाना है।

इस नवीन बीस सूत्री कार्यक्रम में कुल 91 बिन्दु हैं जिनमें पिछले बीस सूत्री कार्यक्रम की बहुत सारी बातें भी सम्मिलित हैं। इसमें मुख्यतः गरीबी दूर करने, अधिक लोगों के लिए रोजगार उपलब्ध कराने, विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने, आर्थिक विषमता में कमी करने, युवा वर्ग को नए अवसर प्रदान करने, महिलाओं को समाज में उचित स्तर प्रदान करने, दहेज विरोधी कानून को कड़ाई से पालन करने, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए संवैधानिक प्राविधानों का पालन, ईंधन और चारे का भण्डारण, सफाई कर्मचारियों तथा झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाले लोगों के पुनर्वास की व्यवस्था, छोटे परिवार के महत्व को सुनिश्चित करने तथा उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण आदि का प्रावधान है।

भूमि सुधार कार्यक्रम

स्वतंत्रता के पूर्व भूमि व्यवस्था में अनेक दोष थे। इन दोषों में मुख्यतः जमींदारी व्यवस्था, कृषि कार्य में लगे अधिकतर लोगों को भूमि स्वामित्व से वंचित रहना, मनमानी मालगुजारी का निर्धारण, जमीन का अभाव एवं कृषि तकनीक का पिछड़ापन आदि माने जा सकते हैं। कृषि प्रधान देश की कृषि व्यवस्था में इतने सारे दोष हों, यह संकटपूर्ण स्थिति थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के तत्काल बाद सरकार ने धीरे-धीरे इन सभी दोषों को दूर करने का उद्देश्य बनाया।

भूमि सुधार कार्यक्रम में सबसे पहला प्रयास सरकार ने जमींदारी के उन्मूलन द्वारा मध्यस्थों को समाप्त करके किया। इनकी संख्या तो कम थी परन्तु ये 40.0 प्रतिशत कृषि भूमि के मालिक थे। इनकी समाप्ति से दो करोड़ से अधिक किसानों को लाभ हुआ। गांव की सामान्य भूमि का प्रबंध गांव सभाओं द्वारा किए जाने लगा। भूमि सीमा निर्धारण करने से 7.2 मिलियन एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गई जिसे सरकार ने अधिग्रहण कर लिया। इसमें से 4.4 मिलियन एकड़ भूमि बांट दी गई। चकबन्दी के द्वारा भूमि उपखण्डन को रोका गया। सिंचाई सुविधाओं की वृद्धि के लिए हर पंचवर्षीय योजना में प्रयास किया जाता रहा है। अनेक प्रकार के प्रदर्शन, प्रचार एवं सुविधाओं के माध्यम से किसानों को उन्नतिशील खेती के लिए प्रोत्साहित भी किया जा रहा है।

जवाहर रोजगार योजना

यह योजना राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार कार्यक्रम और समन्वित ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों को मिलाकर बनाई गई है। इसके पूर्व विभिन्न रोजगार कार्यक्रमों का क्रियान्वयन जिला स्तर पर होता था परन्तु अब इस योजना का क्रियान्वयन पंचायती राज्य व्यवस्था से करने का प्रावधान किया गया।

इसका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले (उस समय के) 4 करोड़ 40 लाख परिवारों में से प्रत्येक परिवार के एक सदस्य को लगभग 40 से 100 दिन का रोजगार प्रदान करना माना गया। इस योजना की घोषणा स्वर्गीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी द्वारा 28 अप्रैल, 1989 को की गई। वर्ष 1989-90 के लिए इस योजना में कुल 2,625 करोड़ रुपये व्यय करने की व्यवस्था थी जिसमें केन्द्र का हिस्सा 2,100 करोड़ रुपये और शेष व्यवस्था राज्यों को करनी थी। यह राशि पिछड़ेपन के आधार पर राज्यों को वितरित करनी थी। वर्ष 1990-91 के लिए केन्द्र सरकार ने 113 करोड़ 13 लाख रुपये की धनराशि आबंटित की।

योजनाओं की सफलता मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करती है—एक तो योजना कार्यान्वयन में लगे लोगों की ईमानदारी, कर्तव्य परायणता तथा तत्परता की भावना तथा दूसरा जिनके लिए योजनाएं बनाई गई हैं उनका सहयोग कार्यक्रम के कार्यान्वयन में कितना प्राप्त हो रहा है। ये दोनों ही पहिए मिलकर विकास योजनाओं की गाड़ी को खींचते हैं भारतीय ग्रामीण विकास योजनाओं के सम्बन्ध में उपर्युक्त सरकारी और गैर सरकारी मूल्यांकन और विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि उक्त दोनों बातों का इनमें अभाव है। अस्तु जब तक विकास के उक्त दोनों आधारों को मजबूत नहीं किया जाएगा लक्ष्योन्मुख विकास का यथेष्ट परिणाम मिलना कठिन है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रम की समस्याएं

स्वशासन की प्राप्ति के पश्चात् सरकार ने ग्रामीण विकास एवं गरीबों की दशा सुधारने के लिए उक्त अनेक प्रकार की योजनाएं एवं कार्यक्रम बनाए एवं उनका कार्यान्वयन भी किया परन्तु लक्ष्यों की प्राप्ति की दृष्टि से विश्लेषण करने पर स्थिति संतोषजनक नहीं लगती है। ये अपने उद्देश्य की प्राप्ति में विफल रहे। जिस प्रकार के विकास का दावा सरकार करती है,

उसके अनुरूप उपलब्धियां बहुत सीमित हैं। कहीं-कहीं इन सारी योजनाओं का लाभ उन्हें नहीं मिला जिनके लिए ये बनाई गई थीं, अपितु बिचौलिए बीच में अपनी जेब गर्म करते रहे हैं। गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वालों में आज भी लगभग 40.0 प्रतिशत लोग गांवों में ही हैं।

उक्त बातों की स्वीकारोक्ति स्वर्गीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी के उस सम्बोधन से भी होती है जो उन्होंने 7 जुलाई, 1988 को कांग्रेस सेवा दल के सदस्यों के समक्ष किया था: "गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर सरकार द्वार व्यय किए गए 6 रुपये में से मात्र एक रुपया ही सम्बंधित व्यक्ति तक पहुंचता है और शेष राशि उन बिचौलियों द्वारा हथिया ली जाती है जो गरीबों की सहायता के लिए निर्मित आधारभूत ढांचे की व्यवस्था करने का स्वांग रच रहे हैं या उनकी मदद का दम भरते हैं।....सातवीं योजना में निर्दिष्ट कुल 1,80,000 करोड़ रुपये में मात्र 30,000 करोड़ रुपये ही जनता के वास्तविक लाभ के लिए उपलब्ध हुए हैं।"

सामुदायिक विकास योजनाएं जब 2 अक्तूबर 1952 को प्रारम्भ की गईं तो यह माना गया कि इस कार्यक्रम के द्वारा ग्रामीण भारत के चतुर्दिक विकास की प्रक्रिया से आमूल-चूल परिवर्तन हो जाएगा परन्तु प्रथम योजना के समाप्त होते-होते यह अनुभव किया गया कि जनता द्वारा रुचि और भागीदारी की कमी एवं अन्य कारणों से सामुदायिक विकास राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम के सफल कार्यान्वयन में रुकावटें दिखाई देने लगीं। प्रो. दूबे एवं अन्य विद्वानों ने सामुदायिक योजनाओं के प्रभाव के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त किया—

(1) कार्यक्रम के प्रति उदासीनता
(2) पदाधिकारियों को संदेह से देखना
(3) उचित और शक्तिशाली योजना का अभाव
(4) परम्परा एवं अन्य सांस्कृतिक कारकों का अवरोध

प्रो. दूबे ने 'श्रमदान कार्यक्रम' के अध्ययन में यह देखा कि किस प्रकार गांव के एक उच्च श्रेणी के छोटे वर्ग ने सामान्य जन के सहयोग एवं उत्साह से एक सड़क का निर्माण तथा मरम्मत का कार्य कराया और स्वयं पर्यवेक्षण किया तथा अधिकारियों की आवभगत और वाहवाही लूटी। इस सड़क से लाभ भी उन्हीं का हुआ। इसके द्वारा उनका गन्ना और अन्य वस्तुएं बाजार में भेजी जाती हैं। सामान्य जन और गरीब लोग तो उस दिन की दैनिक मजदूरी भी नहीं कर पाए जो कि उनके लिए अतिआवश्यक थी। ऐसी स्थिति में सामान्य जन का ऐसे कार्यक्रमों से उदासीन होना स्वाभाविक था। यद्यपि सामुदायिक विकास कार्यक्रम पंचायती राज के माध्यम से चलाने की व्यवस्था की गई थी परन्तु पंचायती राज संस्थाओं में जिले के दब-दबे वाले लोगों का वर्चस्व था। वे जो चाहते थे वही होता था। पी.बी. पटेल समिति (महाराष्ट्र 1986) तथा अशोक मेहता समिति (1978) ने भी इस बात को स्वीकार किया है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की उपयोगिता और प्रभाव के सम्बंध में सॉत्रा (1988) द्वारा पश्चिम बंगाल के नाडिया जिले के चकदाह खण्ड के चार चुने हुए गांवों के अध्ययन में यह पाया गया कि जिन लोगों को ठेला, रिक्शा, सवारी रिक्शा, बैलगाड़ी, मछली पकड़ने का सामान, बाल्टी बनाने, छतरी मरम्मत और सिलाई मशीन की सहायता प्रदान की गई, उनकी आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ। ये लोग उत्पादक सहायता साधनों द्वारा श्रम करके प्रतिदिन आय अर्जित करते थे। इसके विपरीत उनकी स्थिति है जिन लोगों को बैल, बकरी, बत्तख आदि तो दिए गए परन्तु उनके लिए चारे का प्रबन्ध नहीं किया जा सका। उनमें अधिकांश पशु चारे और चिकित्सा के अभाव में मर गए। जिन्हें वित्तीय सहायता प्राप्त हुई थी उनमें से प्राय: परिवार के सदस्यों के इलाज, बहन एवं लड़की की शादी तथा पिता के अन्तिम संस्कार में खर्च कर दिए। इसके अतिरिक्त लोगों में कार्यक्रम के बारे में जानकारी इतनी कम और इसके प्रति दृष्टिकोण इतना उदासीन था कि उन्हें इसका उद्देश्य और काम-काज बिलकुल समझ में ही नहीं आया। इस कारण और आर्थिक तंगी से परेशान होकर लाभार्थियों ने इस कार्यक्रम के अन्तर्गत मिली राशि का इस्तेमाल अनुत्पादक कार्यों में किया। इन लोगों को सहायता राशि पंचायत समिति के माध्यम से प्रदान की गई थी परन्तु इसके उपयोग अथवा कार्यक्रम क्रियान्वयन के बारे में कोई जांच-पड़ताल या देख-रेख न तो जिला ग्रामीण एजेंसी ने और न ही पंचायत समिति ने किया।

ऐसे ही भूमि सुधार योजना के सन्दर्भ में उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के एक विकास खण्ड के अध्ययन में यह पाया गया कि भूमिहीनों को खेती के लिए ऐसी कंकरीली-पथरीली जमीन दी गई जिस पर कि वे सभी खेती नहीं कर पाए। यही नहीं जमींदारों की भूमि के सीमा निर्धारण से निकली जमीन के बेनामी और नकली पट्टे भी कर दिए गए।

उपर्युक्त अध्ययनों के विश्लेषण एवं अन्य अनुभवों से ग्रामीण विकास कार्यक्रम के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में अनेक बातें स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं—

(1) सहायता राशि का नकद भुगतान अनुत्पादक कार्यों मे लगा लिया जाता है।
(2) पात्रता का ध्यान किए बिना सहायता देने से उनका दुरुपयोग होता है।

(3) कार्यक्रम के सम्बन्ध में विधिवत जानकारी नहीं प्राप्त होने से उसके प्रति उदासीनता ही पाई गई।

(4) परम्परावादी एवं अन्ध विश्वासी दृष्टिकोणों में परिवर्तन न होने से विकास हेतु मानसिक तैयारी का अभाव पाया गया।

(5) स्थान विशेष की आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों को ध्यान में न रखकर योजनाएं बनाई गईं।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास के लिए योजनाएं तो बहुआयामी बनी हुई थीं परन्तु अनेक कारणों से वे अपने उद्देश्य में असफल रहीं। यदि वे अपने उद्देश्य में सफल हो जातीं तो गांवों की काया पलट हो गई होती।

बढ़ती हुई आबादी विकास की गति के लिए बहुत बड़ा अवरोध है। इसलिए ग्रामीण शिक्षा में वृद्धि के साथ-साथ परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक है।सुदृढ़ प्रशासन और जनसहयोग के विकास तथा स्वायत्तशासी संस्थाओं के माध्यम से सरकार और ग्रामीणों के बीच पनपे बिचौलियों एवं भ्रष्टाचार से लिप्त जनों का सफाया किया जाना अति आवश्यक है।

सम्भावनाएं एवं सुझाव

योजनाओं की सफलता मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करती है—एक तो योजना कार्यान्वयन में लगे लोगों की ईमानदारी, कर्तव्य परायणता तथा तत्परता की भावना तथा दूसरा जिनके लिए योजनाएं बनाई गई हैं उनका सहयोग कार्यक्रम के कार्यान्वयन में कितना प्राप्त हो रहा है। ये दोनों ही पहिए मिलकर विकास योजनाओं की गाड़ी को खींचते हैं भारतीय ग्रामीण विकास योजनाओं के सम्बन्ध में उपर्युक्त सरकारी और गैर सरकारी मूल्यांकन और विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि उक्त दोनों बातों का इनमें अभाव है। अस्तु जब तक विकास के उक्त दोनों आधारों को मजबूत नहीं किया जाएगा लक्ष्योन्मुख विकास का यथेष्ट परिणाम मिलना कठिन है। हम इन दोनों आधारों पर अलग-अलग विचार करेंगे—

योजनाओं की सफलता का प्रथम आधार ईमानदारी, कर्तव्य परायणता तथा तत्परता है, जिसे किसी व्यक्ति में अलग से पैदा करना तो कठिन है परन्तु नौकरी चले जाने के खतरे और शासन के भय से यह किसी कर्मचारी एवं अधिकारी के व्यवहार में लाया जा सकता है। वस्तुतः ये व्यक्ति के व्यक्तित्व के गुण हैं जो पारिवारिक और उच्च शैक्षिक संस्कारों द्वारा प्रादुर्भूत होकर व्यक्तित्व एवं स्वभाव के अंग बन जाते हैं। इसलिए इन योजनाओं से जुड़े लोगों के चयन में इस बात का विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि कहीं ऐसे लोगों का चयन न हो जाए जिनकी गांवों में काम करने की अभिरुचि न हो तथा जिनकी ईमानदारी तथा कर्तव्य परायणता में सन्देह हो।

योजनाओं की सफलता का दूसरा आधार जनसहयोग का है। जिनके लिए योजनाएं बनाई जाती हैं यदि वे स्वयं अपने विकास के प्रति चिन्तित नहीं होंगे और उन योजनाओं को अपनी न मानकर सरकार की मानकर उसका दुरुपयोग अथवा असहयोग करेंगे तो विकास के मानदण्ड को प्राप्त करना सम्भव नहीं होगा। यहां पर सामुदायिक कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय विस्तार योजना की सफलता में आई रुकावटों एवं उनकी मितव्ययिता तथा कुशलता के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए सबसे पहले बनी बलवन्त राय मेहता समिति (जनवरी, 1957) के प्रतिवेदन के इस बिन्दु पर विशेष ध्यान देना होगा—"समिति ने पाया कि उत्तरदायित्व और शक्ति के बिना विकास आगे नहीं बढ़ सकता समुदाय का विकास तभी वास्तविक हो सकता है जब समुदाय अपनी समस्याओं को समझे, अपने उत्तरदायित्व को महसूस करे, अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के मार्फत आवश्यक शक्तियों का प्रयोग करे और स्थानीय प्रशासन पर सतत तथा सजग सतर्कता रखे।

सहायता प्राप्त करने वाले व्यक्ति की पात्रता और आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही सहायता का वितरण किया जाना चाहिए। यथासम्भव नकद सहायता के स्थान पर उत्पादक सहायता साधनों का ही वितरण किया जाए।

ग्रामीण शिक्षा का प्रतिशत बढ़ाया जाना चाहिए। शिक्षा के अभाव में वे अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों और निर्योग्यताओं के शिकार तो होते ही हैं साथ ही विकास और सहयोग की धारणा और महत्व को भी नहीं समझ पाते हैं।

बढ़ती हुई आबादी विकास की गति के लिए बहुत बड़ा अवरोध है। इसलिए ग्रामीण शिक्षा में वृद्धि के साथ-साथ परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक है।

सुदृढ़ प्रशासन और जनसहयोग के विकास तथा स्वायत्तशासी संस्थाओं के माध्यम से सरकार और ग्रामीणों के बीच पनपे बिचौलियों एवं भ्रष्टाचार से लिप्त जनों का सफाया किया जाना अति आवश्यक है।

ग्रामीण विकास की समस्त योजनाएं स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए।

प्राध्यापक समाजशास्त्र,
काशी विद्यापीठ
वाराणसी

ग्रामीण उद्योगों का विस्तार-असुविधाओं का शिकार

वेद प्रकाश अरोड़ा

भारत के स्वाधीन होते ही ग्राम और लघु उद्योगों को अर्थलाभ का महत्वपूर्ण अंग मानते हुए उन्हें प्राथमिकता दी गई और इनके लिए अनेक संगठन बनाए गए। दूसरी योजना में भारी और सार्वजनिक क्षेत्र के बड़े उद्योगों को प्रमुखता देते हुए भी छोटे और ग्राम उद्योगों के विस्तार के लिए सघन प्रयत्न किए। गांवों में इन उद्योगों का जाल फैलने से गांवों से शहरों की तरफ पलायन मंद पड़ गया है। लेकिन अनेक प्रयत्नों के बावजूद ये उद्योग आज भी कई समस्याओं और असुविधाओं से ग्रस्त हैं। लेखक ने इस लेख में इनका विस्तारपूर्वक विश्लेषण कर कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं।

भारत में फैली गरीबी और बेरोजगारी की समस्याओं के समाधान के लिए हमने आजाद होते ही पंचवर्षीय योजनाओं के जरिए योजनाबद्ध आर्थिक विकास की राह पकड़ी। चाहे शहर हो और चाहे गांव, दोनों में बेरोजगारी, अर्द्ध-बेरोजगारी और गरीबी की विकरालता को नकारा नहीं जा सकता। अगर शहरों में ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओं और पाश रिहायशी क्षेत्रों के पास बनी झुग्गी-झोपड़ियां तथा रोजगार कार्यालयों के बाहर लगी लम्बी कतारें गरीबी को रह-रह कर उजागर करती हैं, तो गांवों में यह गरीबी और भी व्यापक रूप से फैली हुई है। वहां फसलों की कटाई समाप्त होते ही लाखों करोड़ों खेत मजदूरों और खेती की उपज की सफाई और ढुलाई आदि कामों से जुड़े अन्य लोगों के पास रोटी-रोजी का कोई साधन नहीं रहता। अगर कभी इंद्र देवता रूठकर खेतों पर पानी की फुहार न फेंके तो घर-घर में दरिद्रता दस्तक देते हुए जीवन को नरक बना डालती है। दूर-दूर तक फैले कटे-कटे खेत, मजदूरों और कृषि उत्पादों से कुटीर उद्योग चलाने वाले व्यक्तियों के जीवन की सार्थकता के आगे प्रश्नचिह्न लगा देते हैं। सरकार ने आरंभ से ही कृषि तथा कृषिपरक उद्योगों, ग्राम उद्योगों और छोटे उद्योगों को बराबर का महत्व दिया है। कृषि पर ध्यान केंद्रित करने और इंद्र देवता की कृपाभरी बौछारों से जहां देश अनाज के मामले में स्वावलम्बी हो गया है वहां कृषिपरक उद्योगों, कुटीर उद्योगों, ग्राम उद्योगों और छोटे उद्योगों पर जोर देने से रोजगार के अपार अवसर पैदा हुए हैं, ग्रामीणों की आय में वृद्धि हुई है उनके रहन-सहन के स्तर में सुधार हुआ है तथा संतुलित और समुचित विकास का मार्ग प्रशस्त होता चला गया है। गांवों के बेरंग, उदास और मुरझाए चेहरों, बेमजा-सूनी झोपड़-पट्टियों तथा धूल भरे टेढ़े-मेढ़े रास्तों में जिन्दगी की चहल-पहल तथा गहमा-गहमी लाने के लिए कृषि और कृषि से जुड़े ग्राम एवं छोटे उद्योगों को प्रमुखता देने का श्रीगणेश हमने देश की पहली योजना से ही कर दिया था। पहली योजना के दौरान विभिन्न प्रकार के छोटे उद्योगों के विकास के लिए कई संस्थाएं कायम की गईं। इनमें खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड, हथकरघा बोर्ड और लघु उद्योग बोर्ड प्रमुख थे। लघु उद्योग बोर्ड के काम को लघु उद्योग सेवा-संस्थानों और राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम से जोड़ दिया गया। दूसरी पंचवर्षीय योजना में मूल, भारी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों पर विशेष जोर देते हुए भी गांवों के औद्योगिक विकास के लिए कुटीर और छोटे उद्योगों के कार्यक्रमों को घटाया नहीं गया। बल्कि कर्वे समिति की सिफारिशों के अनुसार ग्राम और लघु उद्योगों के व्यापक विस्तार के कार्यक्रम बनाए गए। बाद की पांचों योजनाओं में भी इन उद्योगों के बहुआयामी लाभों को देखते हुए इनके सुधार विस्तार पर निरंतर ध्यान केंद्रित किया जाता रहा।

स्वाधीनता प्राप्ति के अगले वर्ष अर्थात् 1948 में घोषित पहले औद्योगिक नीति प्रस्ताव में ही घरेलू और लघु उद्योगों के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा गया था कि इनसे स्थानीय संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है तथा अनाज, कपड़े और कृषि औजारों जैसी आम जरूरत की चीजों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सहायता मिलती है। तब सरकार ने छोटे और घरेलू उद्योगों को बड़े उद्योगों के साथ समन्वित करने का निश्चय किया। 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में कुटीर, ग्राम और छोटे उद्योगों की भूमिका पर जोर दिया गया। इस प्रस्ताव में इन उद्योगों में

उत्पादन के तकनीकों को निरंतर सुधारते जाने और उन्हें आधुनिक बनाने की अनिवार्यता का उल्लेख भी किया गया था। जुलाई 1970 में लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित वस्तुओं के लिए लाइसेंस देने के संबंध में कुछ मार्गनिर्देश निर्धारित किए गए थे। फरवरी 1973 में औद्योगिक नीति को अद्यतन बनाया गया लेकिन 1977 के औद्योगिक नीति वक्तव्य छोटे और ग्राम उद्योगों के विकास का एक तरह से सुनहरी अध्याय था। इसके अधीन छोटे और लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित वस्तुओं की संख्या लगभग 180 से बढ़कर 500से अधिक कर दी गई। एक ही छत के नीचे छोटे एवं ग्राम उद्योगों की जरूरतें पूरी करने के लिए जिला उद्योग केन्द्रों की परिकल्पना की गई। 1980 के औद्योगिक नीति वक्तव्य में कहा गया कि हथकरघा, हस्तशिल्प, खादी और दूसरे ग्राम उद्योग जगह-जगह खोल देने से क्षेत्रीय असंतुलन दूर करने में सहायता मिलेगी। ताजे कदम के रूप में सरकार ने गत छह अगस्त को संसद में छोटे और ग्राम उद्योगों को सुदृढ़ और विकसित करने के नीतिगत उपायों की घोषणा की। इनके अनुसार नन्हें उद्योगों के पूंजीनिवेश की सीमा दो लाख रुपये से बढ़ाकर पांच लाख रुपये कर दी गई है। लघु क्षेत्र को पूंजी तथा उन्नत टेक्नोलोजी उपलब्ध कराने के लिए, बड़े उद्योग उसके 24 प्रतिशत तक इक्विटी शेयर खरीद सकेंगे। इसके अलावा ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में उद्योग के लिए तथा कृषि और उद्योग के बीच मजबूत कड़ियां विकसित करने के लिए बुनियादी ढांचे के समन्वित विकास की नई योजना इस वर्ष शुरू की जाएगी। इस योजना के समर्थन-सहायता के लिए टेक्नोलोजी की सेवाएं भी प्रदान की जाएंगी। लघु उद्योग विकास संगठन में एक टेक्नोलोजी विकास कक्ष बनाया जाएगा जो छोटे क्षेत्र की उत्पादकता बढ़ाने तथा उनके उत्पादों की बिक्री तेजी से बढ़ाने के लिए टैक्नालोजी और निदेशों की व्यवस्था करेगा। यह कक्ष औजार-कमरों और परिशोधन एवं उत्पाद-विकास केन्द्रों की गतिविधियों में एकरूपता लाएगी। इस योजना के अंतर्गत हथकरघों के विकास के द्वारा देहाती इलाकों में रोजगार के अवसर बढ़ाए जाएंगे तथा हथकरघा बुनकरों की दशा सुधारी जाएगी। स्थानीय और क्षेत्रीय आवश्यकताओं को देखते हुए हथकरघा क्षेत्र की योजनाओं को नया स्वरूप दिया जाएगा। यह भी सुनिश्चित किया जाएगा कि जो बुनकर अभी भी सहकारिताओं में शामिल नहीं हुए, वे उनमें सम्मिलित हो जाएं। जनता कपड़ा योजना से बुनकरों को जीवन यापन के लिए कोई खास आमदनी नहीं होती। इसलिए इसे क्रमिक रूप से आठवीं योजना के अंतिम वर्ष तक समाप्त कर दिया जाएगा। इसके स्थान पर बहुआयामी एक मुश्त योजना लागू की जाएगी। इसके तहत करघों को आधुनिक बनाने, प्रशिक्षण देने, बेहतर डिजाइनों, डाइयों, रसायनों तथा विपणन की व्यवस्था करने के लिए काफी धनराशि दी जाएगी।

वित्त वर्ष के आठ महीनों के बजट में कृषि, ग्राम उद्योगों, देहाती इलाकों के पिछड़े वर्गों के कल्याण कार्यक्रमों और समूचे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। घोर आर्थिक तंगी के बावजूद वर्तमान वित्त वर्ष के बजट में भी पिछले बजट की तरह योजना संसाधनों का पचास प्रतिशत कृषि, कृषिपरक उद्योगों और ग्रामीण जनजीवन की स्थिति सुधारने-संवारने की विभिन्न परियोजनाओं के लिए रखना कम महत्वपूर्ण नहीं है। ग्रामीण विकास विभाग का योजना व्यय भी बढ़ा दिया गया है। आठ महीने के लिए यह राशि 3508 करोड़ रुपये रखी गई है, जब कि पिछले पूरे वर्ष यह राशि 3115 करोड़ रुपये थी। इस राशि में भी रोजगार बढ़ाने के कार्यक्रमों के लिए 2100 करोड़ रुपये की विशाल राशि निर्धारित की गई है। विभिन्न रोजगारोन्मुखी कार्यक्रमों से 90 करोड़ मानव दिवसों का रोजगार मिल सकेगा। रोजगार के दीर्घकालीन लक्ष्य प्राप्त करने के लिए व्यापक कार्यनीति और कार्यक्रम निर्धारित किए जा रहे हैं। बजट में रोजगार के अवसर बढ़ाने के साथ-साथ किसानों की आय बढ़ाने, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विविधता लाने तथा गांवों में उद्योग धंधों का जाल फैलाने के लिए खाद्य परिशोधन और कृषि आधारित उद्योगों को बड़े पैमाने पर बढ़ावा दिया जाएगा। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में चटनी, अचार, मक्खन, पनीर, मखनिया दूध, वनस्पति तेलों, जैम, जैली रस, डिब्बाबंद फल, सुखाई गई सब्जियों, कुछ सोया उत्पादों, स्टार्च, मांस और मछलियों से तैयार चीजों को पूरी तरह उत्पाद-शुल्क से मुक्त कर दिया गया है। इस कार्रवाई से बढ़ती कीमतों के इस युग में गांवों के सभी उपभोक्ताओं को सस्ती चीजें मिलने से कुछ राहत मिलेगी। लघु, खादी और ग्रामोद्योगों को विशेष प्राथमिकता प्रदान करने की वचनबद्धता को ध्यान में रखते हुए इन उद्योगों में तैयार वस्तुओं जैसे 150 रुपये मूल्य के जूतों के जोड़े और सिंथेटिक डिटरजेंटों पर उत्पादन शुल्कों में छूट दी गई है। कृषि आधारित जूट उद्योग में कम से कम 35 प्रतिशत जूट-रेशे वाले उत्पादों पर शुल्क 600 रुपये प्रति टन से कम करके 330 रुपये प्रति टन कर दिया गया है। सरकार ने बजट में जिन पांच नए कार्यक्रमों को हाथ में लेने का प्रस्ताव किया है, उनमें पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए एक निगम बनाना तथा मजदूरों, मेहनतकशों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय नवीकरण कोष स्थापित करना भी शामिल है। सरकार ने खाद्य परियोजना भी तैयार की है। इस काम के लिए पिछड़े और जनजातीय क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाएगी। इन क्षेत्रों में कुक्करमुत्ता की बुआई तथा परिशोधन, फल और सब्जी

परिशोधन, मुर्गे-मुर्गियों तथा बकरे के मांस के परिशोधन-उद्योग तथा चावल-मिलें खोली जाएंगी।

जब हम छोटे और बड़े उद्योगों के उत्पादन की तुलना करते हैं तो यह तथ्य साफ उभर कर सामने आता है कि छोटे, खादी और ग्राम उद्योगों में उत्पादन की वार्षिक वृद्धि की औसत, सामान्य औद्योगिक क्षेत्र की अपेक्षा अधिक चली आ रही है। इनमें भी लघु-क्षेत्र का उत्पादन सर्वाधिक और उसके बाद दूसरा नम्बर ग्राम उद्योगों का रहा है। इधर खादी क्षेत्र में भी कुल औद्योगिक उत्पादन के अनुपात में कुछ अधिक उत्पादन होता रहा है। इसीलिए छोटे और ग्रामीण उद्योगों में पूंजी लगाना अधिक लाभप्रद होता है। जहां ये अधिक वृद्धि दर की क्षमता लिए होते हैं वहां इनमें रोजगार के अवसर भी अधिक उपलब्ध रहते हैं।

जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ते जाने के कारण गांवों में भी बेरोजगारों और गरीबी दूर करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं और बीस सूत्री कार्यक्रमों के अन्तर्गत किए गए बहुमुखी प्रयत्नों को अपेक्षित सफलता नहीं मिली है। अब भी गांवों में उद्योग धंधों के प्रसार में बहुत बाधाएं हैं और उनके ढांचे में सुधार की भी बहुत आवश्यकता है। कहीं-कहीं घपलों और धांधलियों का जोर है तो कहीं फैसले, कागजों और फाइलों तक ही धरे के धरे रह जाते हैं। ग्राम और उद्योग कहीं इंस्पेक्टरों की मनमानी के तो कहीं बैंकों की लालफीताशाही के शिकार रहते हैं।

कुटीर ग्रामीण, खादी और ग्राम उद्योगों का जाल फैलते जाने तथा गांवों के नक्शे में कुछ दूसरे खुशनुमा रंग भरने का परिणाम यह हुआ है कि गांवों से शहरों की तरफ पलायन की गति मंद पड़ गई है। 1981-91 के दशक में शहरी आबादी में वृद्धि उससे पिछले दशक 1971-81 के मुकाबले लगभग दस प्रतिशत घट गई है। ये दिलचस्प और सुखकर आंकड़े महापंजीयक और जनगणना आयुक्त की ताजा रिपोर्ट में दिए गए हैं, जो 1991 की जनगणना पर आधारित्त हैं। इसके अनुसार 1971-81 में शहरी जनसंख्या 46.14 प्रतिशत बढ़ी जो 1981-91 में घटकर 36.19 प्रतिशत रह गई। इसका मुख्य कारण यह है कि छोटे, कुटीर और खादी उद्योगों तथा मंझोले उद्योगों का जाल फैलते जाने से अब लोगों को अपने गांवों, तहसीलों और कस्बों में ही रोजगार मिलने लगे हैं। इन्हीं उद्योगों और अन्य विविध गतिविधियों के कारण कस्बों, शहरों में और नगर महानगरों में तथा महानगर वृहद नगरों में परिवर्तित होते जा रहे हैं। स्वयं शहरों और कस्बों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। 1971 में 3126 शहर और कस्बे थे। 1981 में यह संख्या बढ़कर 4029 हो गई और आज यह संख्या 4689 हो गई है।

लेकिन जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ते जाने के कारण गांवों में भी बेरोजगारों और गरीबी दूर करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं और बीस सूत्री कार्यक्रमों के अन्तर्गत किए गए बहुमुखी प्रयत्नों को अपेक्षित सफलता नहीं मिली है। अब भी गांवों में उद्योग धंधों के प्रसार में बहुत बाधाएं हैं और उनके ढांचे में सुधार की भी बहुत आवश्यकता है। कहीं-कहीं घपलों और धांधलियों का जोर है तो कहीं फैसले, कागजों और फाइलों तक ही धरे के धरे रह जाते हैं। ग्राम और उद्योग कहीं इंस्पेक्टरों की मनमानी के तो कहीं बैंकों की लालफीताशाही के शिकार रहते हैं। कहीं उन्हें स्थानाभाव पीड़ित करता रहता है तो कहीं संगठनात्मक कठिनाइयां कचोटती रहती हैं। कहीं वे वित्तीय सहायता के अभाव से ग्रस्त हैं, तो कहीं टेक्नोलोजी का पिछड़ापन मार देता है। कहीं उन्हें कच्चा माल ही नहीं मिलता तो कहीं उनकी तैयार वस्तुओं को बाजार उपलब्ध नहीं होता। फिर उनमें काम कर रहे मजदूरों को पूरी मजदूरी भी तो नहीं मिलती। महिलाएं तो अक्सर वेतन के मामले में भेदभाव से पीड़ित रहती हैं। इसी तरह किशोर लड़के लड़कियों से घंटों काम लेकर उन्हें जवानी की सीढ़ी पर चढ़े बिना बुढ़ापे की दहलीज पर धकेल दिया जाता है। कई मजदूर अक्सर पीलिया, तपेदिक और दिल के रोगों के शिकार हो जाते हैं। असंगठित मजदूर होना एक अभिशाप होता है। वह भले ही कितना चिल्लाए उसकी कोई सुनता ही नहीं। काम के दौरान कोई दुर्घटना हो जाए तो कोई बीमा योजना नहीं। मरने पर उसके बच्चों और पत्नी की कोई खोज-खबर नहीं लेता। स्वास्थ्य की बुनियादी आवश्यकताओं के अभाव में बीड़ियां तैयार करने वाले, तेंदू-पत्तों के बंडल बनाने वाले, हथकरघों पर काम करने वाले, खादी के कपड़े तैयार करने वाले, फसल काटने और गन्ने की पेराई करने वाले मजदूर अस्वस्थ दिखाई देते हैं। उनके जीवन में मुस्कान लाने के जितने भी कानून बने हैं, उनके क्रियान्वयन में ढिलाई रहती है। सच तो यह है कि कानूनों का पालन कम होता है।

संस्थागत बाधाओं को ही लें। छोटे और ग्राम उद्योगों के विकास के लिए स्थापित संगठनों में कई खामियां पाई गई हैं। राज्य खादी एवं ग्राम उद्योग बोर्ड बुनियादी सुविधाएं या तो पूरी तरह नहीं जुटा पाते, या फिर उनका यह काम मंथर गति से तथा रुक-रुक होता है। कई राज्य सरकारें भी समुचित स्टॉक और पर्याप्त कोश नहीं जुटातीं। जिला उद्योग केन्द्र अपेक्षित सीमा तक अपनी भूमिका नहीं निभाते। इसका कारण यह हो सकता

है कि उनके पास तकनीकी और व्यावसायिक योग्यता वाले पर्याप्त कर्मचारी नहीं होते। जब हम इन उद्योगों की वित्तीय स्थिति पर नजर डालते हैं तो पाते हैं कि ग्रामीण और छोटे उद्योगों की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यय राशि निर्धारित नहीं की जाती। अब जब कि ग्राम उद्योगों के दायरे में अधिकाधिक उद्योग आ गए हैं, उनके लिए योजना व्यय-राशि भी उसी अनुपात में अधिक होनी चाहिए।

गांवों में उद्योग धंधों के विस्तार और उन्हें सुविधाएं देने की अनेक योजनाएं प्रत्येक वर्ष के बजट में होती हैं, लेकिन परवर्ती वर्षों में उन्हें भुला दिया जाता है। अगर अब तक के बजटों में दी गई लघु, ग्राम और कुटीर उद्योगों की योजनाओं पर अमल हो जाता तो गांवों का स्वरूप ही बदला होता है। यह देखना चाहिए कि सरकार जो भी सिफारिशें या घोषणाएं करें या संकल्प व्यक्त करे—उन पर पूरी ईमानदारी से तथा जल्दी अमल हो तथा परवर्ती नई सरकारों के आने के बावजूद, बजटों में घोषित कल्याण-योजनाओं को मूर्त्त रूप मिलता रहे, तभी गांवों की तस्वीर सुखद और सुहावनी बन सकेगी।

कृषि परिशोधित उद्योगों को जल्दी समुचित सहायता प्रदान करने और इनके माध्यम से युद्ध स्तर पर ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने के लिए अलग से राष्ट्रीय कृषि औद्योगिक विकास बैंक खोला जाना चाहिए। 15 प्रमुख कृषि-जलवायु क्षेत्रों में भी इसकी शाखाएं खोल देने से कृषि संसाधित उद्योगों के विकास में आने वाली वित्तीय बाधाएं दूर होने में बहुत सहायता मिलेगी। पंचवर्षीय योजनाओं के आंकड़ों के अध्ययन से तो लगता है कि ग्राम और छोटे उद्योगों के लिए व्यय-राशि का निरंतर अधिक प्रावधान किया जाता रहा है लेकिन उद्योगों के लिए कुल निर्धारित राशि में इनका प्रतिशत बहुत कम रहा है।

इस संदर्भ में इस बात की भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि पूरी की पूरी निर्धारित राशि भी इन छोटे व ग्रामीण उद्योगों पर नहीं लग पाती। इसका कारण है घपले, धांधलियां तथा सहायता राशि का अच्छा खासा हिस्सा डकार जाना। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक ने 1990 में जवाहर रोजगार योजना की कड़े शब्दों में आलोचना करते हुए कहा कि इस योजना के अंतर्गत पहले वर्ष निर्धारित संख्या के चौथे हिस्से को ही लाभ पहुंचाया गया और इन लाभार्थियों को भी कुछ ही दिन रोजगार मिल सका। दूसरे वर्ष तो इस कार्यक्रम के लिए निर्धारित राशि का उपयोग दूसरे ही कामों के लिए किया गया।

कच्चे माल की कम सप्लाई भी छोटे, नन्हें और ग्राम उद्योगों के लिए निरंतर एक बड़ा सिरदर्द बनी रहती है। कच्चे माल के मूल्यों में उतार-चढ़ाव के समय तो यह समस्या विकट बन जाती है। इससे विभिन्न इकाइयों के उत्पादन-कार्यक्रम गड़बड़ा जाते हैं। न तो कोई वस्तु समय पर तैयार होती है, न उसका स्तर ऊंचा हो पाता है और न उसकी डिलवरी ही वक्त पर हो पाती है। इससे मजदूरों के लिए भी कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं या फिर अगर वे काम के लिए आते रहे और पूरा काम न मिले तो उस हालत में स्वयं इकाई ही घाटे में जाने लगती है। वे रुग्ण भी बन जाती हैं। इन इकाईयों के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार समाप्त करना होगा, तभी ये छोटे ग्रामीण और कुटीर उद्योग फल-फूल सकेंगे। इसके लिए आवश्यक है कि कच्चे माल की खरीद कर जमा करने के लिए और आवश्यकता पड़ने पर सप्लाई के लिए स्थानीय रूप से भंडारों तथा शीतागारों का निर्माण किया जाए।

एक अन्य बड़ी समस्या है इन छोटे और ग्राम उद्योगों के माल की बिक्री की सुचारू व्यवस्था न होना। इकाइयों का छोटा आकार होना और उनका दूर-दूर बिखरा रहना उनके मुनाफे में बाधक होता है। इससे उत्पादन की लागत भी बढ़ जाती है जिससे उनकी होड़ लेने की ताकत कमजोर हो जाती है। उद्योगों में इस्तेमाल होने वाली वस्तुओं की ढुलाई, भंडारण और उतराई-चढ़ाई पर भी अधिक खर्च होता है। यही बात इकाइयों में तैयार वस्तुओं पर लागू होती है। मानकीकरण के अभाव से भी समस्याएं पैदा हो जाती हैं। इसके अलावा किस चीज की किस बाजार में कितनी मांगें और वह कब तक रहती है—इस संबंध में व्यवस्थित अनुसंधान का अभाव ग्राम और छोटे उद्योगों के सही विकास में बाधक होता है। गांवों में उद्योग धंधों के विस्तार और उन्हें सुविधाएं देने की अनेक योजनाएं प्रत्येक वर्ष के बजट में होती है, लेकिन परवर्ती वर्षों में उन्हें भुला दिया जाता है। अगर अब तक के बजटों में दी गई लघु, ग्राम और कुटीर उद्योगों की योजनाओं पर अमल हो जाता तो गांवों का स्वरूप ही बदला होता है। यह देखना चाहिए कि सरकार जो भी सिफारिशें या घोषणाएं करें या संकल्प व्यक्त करे—उन पर पूरी ईमानदारी से तथा जल्दी अमल हो तथा परवर्ती नई सरकारों के आने के बावजूद, बजटों में घोषित कल्याण-योजनाओं को मूर्त्त रूप मिलता रहे, तभी गांवों की तस्वीर सुखद और सुहावनी बन सकेगी।

268, सत्यनिकेतन,
मोती बाग, नानकपुरा,
नई दिल्ली-110021

कृभको
सफ़लता के प्रति वचनबद्ध

कृभको, सफ़लता की कहानी के साथ-साथ लक्ष्यपूर्ण संगठन से प्राप्त परिणामों एवं सर्वोत्तम उदाहरणों का, नाम है।

कृभको, उन हजारों सहकारी संस्थाओं के समर्पित प्रयत्नों का नाम है, जो देश के कोने-कोने में स्थित हैं। ये संस्थाएं देश की सबसे बड़ी सहकारी संस्था का सदस्य होने का गौरव अनुभव करती हैं।

कृभको उत्कृष्ट यूरिया उत्पादन के साथ-साथ और भी बहुत कुछ करता है। हजीरा कारखाने की क्षमता उपयोग के हिसाब से विश्व रिकार्ड कायम कर चुकी है, जो इसकी प्रमुख सफ़लता है। ऐसी बहुत सारी उपलब्धियाँ हैं जो कृभको की सफ़लता का इतिहास निर्मित करती हैं।

कृभको के कार्यक्रमों का निर्धारण किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक दशा को सुधारने के उद्देश्य से किया जाता है। जैसे कि ब्लाक प्रदर्शन, मिनी-किट बाँटना, फसल गोष्ठियाँ, सामाजिक- वृक्षारोपण, बंजर-भूमि विकास, ग्राम सेवाओं का विस्तार और सहकारी ढांचे को सुदृढ़ करना।

साथ ही ग्रामीण जन-जीवन से सम्बद्ध स्वास्थ्य, सफाई, कल्याण, खेल-कूद तथा सांस्कृतिक पहलुओं पर उचित ध्यान दिया जाता है।

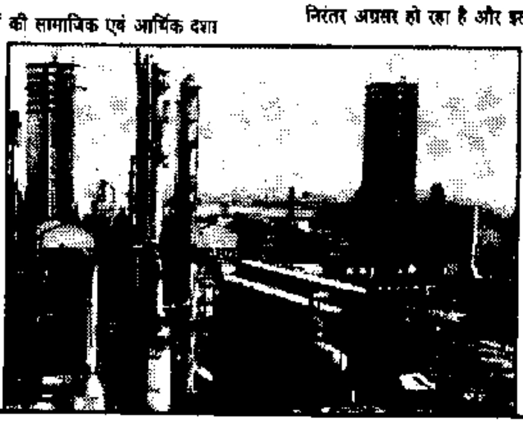

भविष्य को भी अनदेखा नहीं किया जाता है। वार्षिक प्रबन्ध-सम्मेलनों, कार्यशालाओं और बैठकों की सहायता से संस्था की भावी योजनाओं को मूर्त रूप दिया जाता है और सुधार किया जाता है। उत्पादन बढ़ाने के लिए समिति निरंतर प्रयासरत रहती है और सहकारी माध्यम से किसानों की सहायता के लिए डी. ए. पी और फॉस्फेटिक उर्वरकों की नई परियोजनाएँ आरम्भ करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहती है। वर्तमान कार्यक्रमों और नीतियों में निरंतर सुधार किया जाता है, ताकि हमेशा की तरह कृभको सदा आगे बढ़ता रहे।

अधिक से अधिक सहकारी संस्थाओं के सहयोग से कृभको विकास पथ पर निरंतर अग्रसर हो रहा है और इसके साथ-साथ भारतीय किसान फल-फूल रहे हैं।

कृषक भारती कोआपरेटिव लिमिटेड
रेड रोज हाउस, 49-50 नेहरु प्लेस,
नई दिल्ली- 110 019.

किसानों का पथ प्रदर्शक

Advtg Integrated/KRIBHCO/3289

ग्रामीण विकास से सम्बद्ध विवर्गीय एवं अधिशासी तंत्र

एक विश्लेषण

डा. नरेश चन्द्र त्रिपाठी

प्रस्तुत लेख में लेखक ने ग्रामीण विकास से सम्बद्ध शासन तंत्र का विश्लेषण करते हुए यह बताया है कि ग्राम्य विकास से सम्बन्धित अधिकारियों/कर्मचारियों का एक पृथक कैडर होना चाहिए तथा ग्राम्य विकास कार्यक्रमों में लगे इन लोगों की कार्यशैली का समय-समय पर मूल्यांकन होना चाहिए तभी यह पता चल सकेगा कि ग्राम्य विकास से ये लोग कितनी तत्परता से ग्रामीण विकास की नीतियों को क्रियान्वित कर रहे हैं क्योंकि प्रायः इन अधिकारियों/कर्मचारियों की उदासीनता के कारण समुचित ग्रामीण विकास नहीं हो पाता है। इस कारण ग्रामीण विकास के लिए स्वीकृत धनराशि व्यर्थ चली जाती है। वस्तुतः ग्रामीण विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में अनेक छिद्र हो जाते हैं जिसके कारण निवेशित पूंजी का बड़े स्तर पर रिसाव होता है। समुचित ग्रामीण विकास के लिए ग्राम्य विकास विभाग के विवर्गीय एवं अधिकारी तंत्र का पुर्नगठन किया जाना चाहिए तभी आशा अनुकूल एवं अपेक्षित परिणाम मिलेंगे।

स्वाधीनता के समय एक दुर्बल, जर्जर एवं समस्या पूर्ण राष्ट्र विदेशी साम्राज्य से विरासत के रूप में मिला। इस दुर्बल राष्ट्र का एक बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्र शैक्षिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से अपेक्षाकृत अधिक पिछड़ा और कमजोर था। राष्ट्र के पुनर्निर्माण की कोई भी नीति इस वृहत ग्रामीण भारत के उत्थान के बिना पूर्ण नहीं हो सकती थी। हमारे राष्ट्रनायक एवं योजनाकार इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे। इसलिए नियोजित विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के साथ ही ग्रामीण विकास के अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए। सामुदायिक विकास कार्यक्रम एवं पंचायती राज ग्रामीण भारत के पुर्नगठन के प्रारम्भिक आधारिक उपाय थे। आगे चलकर राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, ग्रामीण युवकों के लिए स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण तथा समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम आदि का शुभारम्भ हुआ। इन कार्यक्रमों के सुचारु संचालन हेतु बड़ी संख्या में कर्मचारियों एवं अधिकारियों की नियुक्ति/प्रतिनियुक्ति हुई। इस समय ग्रामीण विकास से सम्बद्ध विवर्गीय एवं अधिशासी तंत्र का विकास हो चुका है। इस तंत्र की अनेक समस्याएं एवं कमियां हैं, जिनके पर्याप्त विवेचन एवं विश्लेषण की आवश्यकता है, क्योंकि विर्गीय एवं अधिशासी तंत्र ही किसी उपक्रम, प्रतिष्ठान या प्रोजेक्ट की सफलता का आधार होता है। योग्य, कुशल, ईमानदार, समर्पित एवं संतुष्ट विवर्गीय तथा अधिशासी तंत्र निवेशित पूंजी से श्रेष्ठ परिणाम प्रदान कर सकता है। अतएव ग्रामीण भारत के उत्थान में लगे लाखों कार्यकर्ताओं की भूमिका कार्यशैली एवं समस्याओं का मूल्यांकन समय-समय पर आवश्यक है। यहां पर ग्रामीण विकास से सम्बद्ध विवर्गीय तंत्र के कुछ पहलुओं को स्पर्श करने का प्रयास किया गया है।

ग्राम्य विकास का प्रशासनिक ढांचा

ग्रामीण विकास का प्रशासनिक ढांचा देश के प्रत्येक राज्य में थोड़ी भिन्नता के साथ लगभग एक जैसा है। उत्तर प्रदेश में ग्राम्य विकास का शीर्ष से आधार स्तर तक प्रशासकीय ढांचा निम्नांकित प्रकार से रेखांकित किया जा सकता है।

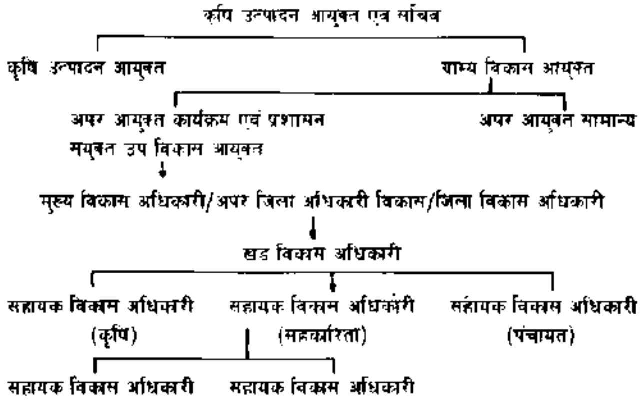

इस ढांचे में प्रत्यक्ष रूप से ग्राम्य विकास के प्रशासनिक तंत्र

को अंकित किया गया है। यहां प्रत्येक स्तर पर ग्राम्य विकास से जुड़े अन्य विभाग का पृथक ढांचा है। जैसे जिला स्तर पर जिला कृषि अधिकारी, जिला सहायक निबंधक (सहकारिता) जिला पंचायत राज्य अधिकारी, जिला हरिजन कल्याण अधिकारी आदि ग्राम्य विकास के सहायक विभाग हैं।

उपर्युक्त रेखांकित ढांचे मे स्पष्ट है कि प्रदेश स्तर पर कृषि उत्पादन आयुक्त सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी है। ग्राम्य विकास से जुड़े सहायक विभागों के अधिकारियों के साथ समन्वय का प्रयास किया जाता है किन्तु व्यवहार मे यह समन्वय बनाए रखना कठिन हो जाता है और इस दोहरी प्रणाली के कारण कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न होती है। प्रशासनिक ढांचे की कमियों की ओर संकेत करते हुए ग्राम्य विकास के अनेक अधिकारियों ने वर्तमान तंत्र के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए कहा कि विभाग का सर्वोच पदाधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवा मे नियुक्त किया जाता

सामुदायिक विकास योजना का शुभारम्भ करते हुए पं. नेहरू ने कहा था—"ग्रामीण भारत की रोचक कथा में एक नया अध्याय प्रारम्भ हो रहा है। हमारे विशाल खेतों एवं असंख्य गांवों में एक नया नाटक होने जा रहा है। इस नाटक के मुख्य कलाकार हजारों ग्रामीण स्तरीय कार्यकर्ता हैं किन्तु इन कलाकारों को, गांव के हर औरत-मर्द को कार्यक्रम में सम्मिलित करना चाहिए।" नेहरूजी का यह वक्तव्य ग्राम्य विकास में जन-भागीदारी की आवश्यकता का समर्थक है।

है। इसके लिए ग्राम्य विकास सेवा का पृथक कैडर बनाने और सर्वोच्च तथा अन्य अधिकारियों को ग्राम्य विकास सेवा के अधिकारियों में से नियुक्त करना चाहिए। उनका मानना है कि प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों की मानसिकता एवं कार्यशैली प्रसार कार्य (एक्सेटेंशनवर्क) के अनुरूप नहीं होती। पृथक कैडर निर्माण से विभाग की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं के अनुरूप अधिकारी कुशलता से कार्य करने में समर्थ होंगे। ग्राम्य विकास विभाग के अधिकारियों की इस मांग पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है, क्योंकि ग्राम्य विकास कार्यक्रमों का संचालन और प्रशासन करना स्वभावतः पृथक कार्य हैं। इस प्रसंग में गजेन्द्र गढ़कर आयोग का एक कथन उद्धृत करना समीचीन होगा। यद्यपि यह सार्वजनिक उपक्रमों के सम्बंध में है किन्तु इस संदर्भ में प्रयुक्त किया जा सकता है। "सचिवालय का काम चलाना एक बात है और कल-कारखानों का संचालन दूसरी बात। यह कार्य कमरे में बैठकर फाइलों पर केवल निर्देश देने का नहीं वरन् व्यक्तिगत निरीक्षण और पर्यवेक्षण का है। अतः आई.सी.एस. सभी रोगों की दवा नहीं हो सकते, इसके लिए अलग से विशेषज्ञ तैयार करने होंगे।" गढ़कर आयोग के इस कथन पर कहा जा सकता है कि ग्राम्य विकास विभाग के लिए भी विशेष अभिरूचि के अधिकारियों की नियुक्ति करनी होगी।

ग्राम स्तर पर एक से अधिक कार्यकर्ता विभिन्न कार्यक्रमों को देखते हैं। यथा ग्राम सेवक, पंचायत सेवक, सहकारिता विभाग का कर्मचारी आदि स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रकार का कार्य के लिए चार-पांच कर्मचारियों से सम्पर्क करना पड़ता है और अनावश्यक दौड़-धूप और परेशानी उठानी पड़ती है। इस समस्या के समाधान हेतु 'एक कार्यकर्ता एक गांव' (वन विलेज वन वर्कर) का सिद्धान्त अपनाने पर विचार किया जा सकता है।

जन-भागीदारी एवं जनतांत्रिक नियंत्रण

सामुदायिक विकास योजना का शुभारम्भ करते हुए पं. नेहरू ने कहा था—"ग्रामीण भारत की रोचक कथा में एक नया अध्याय प्रारम्भ हो रहा है। हमारे विशाल खेतों एवं असंख्य गांवों में एक नया नाटक होने जा रहा है। इस नाटक के मुख्य कलाकार हजारों ग्रामीण स्तरीय कार्यकर्ता हैं किन्तु इन कलाकारों को,गांव के हर औरत-मर्द को कार्यक्रम में सम्मिलित करना चाहिए।" नेहरूजी का यह वक्तव्य ग्राम्य विकास में जन-भागीदारी की आवश्यकता का समर्थक है। वस्तुतः ग्राम्य विकास कार्यक्रम सक्रिय जन सहयोग एवं सहभागिता द्वारा ही वांछित परिणाम दे सकते हैं। ग्राम्य विकास कार्यक्रमों को अधिक प्रभावशाली बनाने तथा जनता को इन कार्यक्रमों में साझीदार एवं सहयोगी बनाने के लिए ग्राम विकास विभाग पर जन प्रतिनिधियों के नियंत्रण की व्यवस्था 1959 से पंचायती राज के प्रारम्भ होने के साथ ही स्थापित की गई। वर्तमान समय में भी प्रत्येक स्तर पर लोक प्रतिनिधियों की समितियां और उनके पदाधिकारी/विभागीय अधिकारियों के साथ कार्यक्रमों का संचालन सुनिश्चित करते हैं। पंचायती राज ढांचे में जिला स्तर पर जिला परिषदें, खंड स्तर पर क्षेत्र विकास समितियां और ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतें स्थापित हैं।

जनतांत्रिक नियंत्रण की इस व्यवस्था में कतिपय दोष हैं। प्रायः जनप्रतिनिधि चाहे वह ब्लाक प्रमुख हों, जिला परिषद अध्यक्ष हों या ग्राम प्रधान प्रशासनिक मामलों में अनावश्यक और अनाधिकृत हस्तक्षेप करते हैं। वे अपने हित के लिए अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं, अपने अनुयायियों के पक्ष में कार्य कराने हेतु अनुचित दबाव डालते हैं और सरकारी साधनों एवं सरकारी तंत्र का निज स्वार्थ हेतु उपयोग करते हैं। जनतांत्रिक नियंत्रण की वर्तमान व्यवस्था और सरकारी

अधिकारियों के सम्बंधों, उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों की स्पष्ट व्याख्या करनी चाहिए। जनप्रतिनिधियों की भी एक आचार संहिता होनी चाहिए ताकि अनावश्यक हस्तक्षेप से बचा जा सके।

कार्य के प्रति उदासीनता एवं सेवा भाव का अभाव

ग्रामीणों से साक्षात्कार, व्यक्तिगत अनुभव एवं अन्य स्रोतों के आधार पर ग्राम्य विकास विभाग के कर्मचारियों एवं अधिकारियों के प्रति उदासीनता, सेवाभाव एवं शिथिलता का आरोप लगाया जा सकता है। ग्राम स्तर के प्रायः सभी कार्यकर्ता क्षेत्र से बाहर शहर या कस्बे में रहते हैं। ये कर्मचारी क्षेत्र में प्रतिदिन भ्रमण करने के बजाय महीने में एक दो बार निरीक्षण करने जाते हैं। फलतः ग्रामीणों को किसी कार्य को कराने के लिए कर्मचारियों को पहले खोजना पड़ता है और कई-कई दिन उनसे सम्पर्क नहीं हो पाता। विकास खण्ड स्तर के अधिकारी भी आवासीय सुविधा उपलब्ध होने के बावजूद, मुख्यालय पर नहीं रहते। उनका प्रयास जनपद मुख्यालय या किसी बड़े शहर में रहने का होता है। बातचीत के दौरान ग्रामीणों ने यह भी बताया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ होने के समय इस विभाग के पास समर्पित कार्यकर्ताओं की बड़ी संख्या थी, किन्तु अब अधिकांश कर्मचारी/अधिकारी कार्य से अनभिज्ञ, उदासीन एवं निरुत्साही कार्यकर्ता हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि ग्राम विकास विभाग में स्टाफ की भर्ती एवं चयन में सतर्कता बरती जाए, ताकि विभागीय आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुरूप कर्मचारी/अधिकारी प्राप्त किए जा सकें।

ग्राम्य विकास विभाग एवं भ्रष्टाचार

ग्राम्य विकास कार्यक्रम के संचालन एवं कार्यकरण के सम्बन्ध में एक सामान्य धारणा अतिशय भ्रष्टाचार की है। जवाहर रोजगार योजना की घोषणा करते हुए स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने स्वीकार किया था कि सरकारी योजनाओं का केवल 15 प्रतिशत लाभ ही आम आदमी को मिल पाता है। शेष धनराशि लालफीताशाही एवं अफसरशाही के कारण बरबाद हो जाती है। वस्तुतः ग्रामीण विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में अनेक छिद्र हैं, जिनके कारण निवेशित पूंजी का बड़े स्तर पर रिसाव (लीकेज) होता है। इस धारणा की पुष्टि अर्थशास्त्रियों द्वारा किए गए अध्ययनों से भी होती है। प्रोफेसर नीलकंठ एवं रथ ने समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की समीक्षा करते हुए निष्कर्ष निकाला है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अनुभव की इस लम्बी समीक्षा से एक बात बिलकुल साफ है कि ग्रामीण समाज में निर्धनों की सहायता के लिए परिसम्पत्ति प्रदान करने की नीति द्वारा गरीबी हटाने की नीति एक बड़ी सीमा तक मिथ्या धारणा है। इस नीति पर बल देने से प्रहार की धार कुन्द होती है, इससे अपव्यय और भ्रष्टाचार पैदा होगा और अन्ततोगत्वा निराशा ही हाथ लगेगी। प्रो. इन्दिरा हीरावे ने गांधी इंस्टीट्यूट अहमदाबाद, गुजरात के तत्वावधान में किए गए अध्ययन

ग्राम्य विकास कार्यक्रम के संचालन एवं कार्यकरण के सम्बन्ध में एक सामान्य धारणा अतिशय भ्रष्टाचार की है। जवाहर रोजगार योजना की घोषणा करते हुए स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने स्वीकार किया था कि सरकारी योजनाओं का केवल 15 प्रतिशत लाभ ही आम आदमी को मिल पाता है। शेष धनराशि लालफीताशाही एवं अफसरशाही के कारण बरबाद हो जाती है।

द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि "परिसम्पदों के निर्माण के लिए व्यक्तियों को दिए जाने वाले अनुदानों (सब्सिडी) के अध्ययन से इस बात का पता चलता है कि इसमें दलाली की पद्धति और बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार उत्पन्न हो गया है। ग्राम समाज के प्रभावशाली सदस्य, नौकरशाही एवं सहकारी विभाग के अफसरों एवं उधार संस्थानों के साथ मिलकर गरीब ग्रामीणों को सब्सिडी एवं उधार की स्वीकृति प्रदान करने के लिए दलाली वसूल करते हैं।" भ्रष्टाचार एवं कूट व्यवहार मुख्यतः लाभार्थी के चयन, परिसम्पदा (पम्पिंग सेट, बैल, भैंस आदि की खरीद) सृजन एवं अनुदानों की स्वीकृति एवं ऋण समायोजन में होता है। इस पूरे प्रकरण में ग्राम्य विकास विभाग के अधिकारी/कर्मचारी, बैंक के अधिकारी, पम्पिंगसेट आदि के डीलर, पशु चिकित्सक आदि सम्मिलित होते हैं। वास्तव में ग्राम विकास कार्यक्रम के संचालन में भ्रष्टाचार एक बड़ी समस्या है। इसका निदान आवश्यक है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के मूल्यांकन हेतु जिला स्तर पर मूल्यांकन समितियां हैं, जिनमें जनपद के सांसद विधेयक, जिला परिषद अध्यक्ष और जिला स्तरीय अधिकारी सम्मिलित होते हैं। इन कार्यक्रमों के मूल्यांकन हेतु जनपद पर एक टास्कफोर्स अधिकारी होता है किन्तु इतना होने पर भी इन कार्यक्रमों का समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाता। इसलिए मूल्यांकन तंत्र को और चुस्त दुरुस्त करने की आवश्यकता है।

रामनगर डिग्री कालेज, रामनगर
बाराबंकी (उत्तर प्रदेश)

ग्रामीण विकास : सपना अधूरा क्यों?

सुभाष चन्द्र 'सत्य'

लेखक ने स्वीकार किया है कि गांवों की दशा सुधारने तथा लोगों के सामाजिक-आर्थिक स्तर को बेहतर बनाने के लिए चलाए गए सरकारी कार्यक्रमों के रचनात्मक परिणाम मिले हैं, किन्तु जितना गुड़ डाला गया, मीठा उससे कम रहा है। लेखक ने अपेक्षित सफलता न मिलने के विविध कारणों का विस्तार से विवेचन किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि क्रियान्वयन के लिए जिम्मेदार लोगों की ग्रामीण जीवन में अभिरुचि न होना तथा उनके दृष्टिकोण को ग्रामोन्मुखी बनाने के लिए प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था का अभाव हमारी वर्तमान स्थिति के मुख्य कारण हैं। उनका सुझाव है कि भूमि सुधारों को ईमानदारी से लागू किया जाए और पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से स्थानीय लोगों का सक्रिय सहयोग लेकर ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया जाए।

यह सच है कि देश के गांवों की दशा सुधारने संवारने की आवश्यकता की ओर आजादी से पहले ही हमारे नेताओं का ध्यान चला गया था, किन्तु वास्तविक अर्थों में गांवों की बेहतरी का काम स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही प्रारम्भ हुआ। पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल किए गए विभिन्न कार्यक्रमों तथा सामुदायिक विकास एवं पंचायती राज प्रणाली का मूल उद्देश्य ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में गति लाना तथा वहां रहने वाली देश की अधिसंख्य आबादी को जीवन यापन की बेहतर सुविधाएं उपलब्ध कराना रहा है। देश के विभिन्न राज्यों में यद्यपि ग्रामीण उत्थान की गति और स्वरूप में भिन्नता रही है, किन्तु इतना तो स्पष्ट दिखाई देता है कि आजादी से पूर्व जो हालत हमारे गांवों की थी, उसमें उल्लेखनीय सुधार हुआ है। फिर भी गांधीजी, नेहरूजी तथा हमारे अन्य जननायकों ने गांवों को सभी सुविधाएं उपलब्ध कराने का जो सपना देखा था और देश की जनता को दिखाया था वह निश्चय ही अभी भी अधूरा है। आज भी गांवों की बुनियादी समस्याएं—गरीबी, निरक्षरता, बेरोजगारी, सामाजिक शोषण व पेयजल की कमी जैसी सुविधाओं का अभाव आदि कमोबेश हर गांव में मौजूद हैं। भूमि सुधार कार्यक्रम आज भी कुछ राज्यों में आगे नहीं बढ़ पाया है।

विकास के सोपान

स्वतंत्रता के बाद से ही गांवों की तथा वहां के लोगों की दशा सुधारने के लिए सरकारी तौर पर अनेक कार्यक्रम लागू किए जा रहे हैं। इनका उद्देश्य गांवों में ऐसे अवसर तथा परिस्थितियां पैदा करना रहा है, जिनसे आम लोगों के सामाजिक-आर्थिक स्तर में बढ़ोतरी हो और उनका जीवन अधिक सुखी बने। इनमें गरीबी दूर करना, रोजगार जुटाना, कृषि उत्पादन बढ़ाना, कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना, कृषि टेक्नोलोजी में सुधार, सिंचाई व्यवस्था, पेयजल का प्रबंध, सहायक उद्योग धंधों का विकास जैसे कार्यक्रम शामिल हैं। समय-समय पर इन कार्यक्रमों की समीक्षा तथा मूल्यांकन भी किया जाता है और उसके आधार पर कार्यक्रमों के स्वरूप में परिवर्तन/संशोधन भी किए गए हैं। छोटे तथा भूमिहीन किसानों को विशेष सहायता, रियायती बैंक ऋण, मकान बनाने व उद्योग-धंधे प्रारंभ करने के लिए सब्सिडी तथा ऋण, कुएं खोदने, बीज तथा अन्य आदानों की खरीद के लिए सहायता, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, बाल एवं महिला विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, उर्वरकों में सब्सिडी जैसी बीसियों योजनाएं हैं, जो केन्द्र तथा राज्य सरकारों की ओर से प्रारम्भ की गई हैं। इन योजनाओं पर हर वर्ष करोड़ों रुपये खर्च होते हैं और लोगों ने इनसे लाभ भी उठाया है। गांवों में पिछड़े तथा कमजोर वर्गों की अधिक संख्या को देखते हुए इन वर्गों के लोगों को विशेष रियायतें दी गईं। पीने के पानी की समस्या पर विशेष रूप से ध्यान देने के लिए कुछ वर्ष पूर्व पेयजल मिशन बनाया गया, जिसमें उन गांवों को सबसे पहले लिया जहां पीने के पानी का एक भी स्रोत नहीं था। लोक सभा में बजट पर बहस के दौरान कृषि राज्य मंत्री ने देश के प्रत्येक गांव में पेयजल की व्यवस्था करने के लिए विशेष कार्यक्रम लागू करने की योजना की घोषणा की। गांवों में शिक्षा, विशेषकर लड़कियों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने के लिए स्कूल खोले गए हैं तथा आपरेशन ब्लैक बोर्ड

कार्यक्रम के जरिए ग्रामीण स्कूलों में सभी बुनियादी सुविधाएं जुटाने पर जोर दिया गया। अब देश के प्रत्येक गांव में एक या दो किलोमीटर पर कोई न कोई प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध है। प्रौढ़ शिक्षा पर भी बहुत बड़ी राशि खर्च की गई है। गांवों में प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र खोलने, रोग निरोधक टीके लगाने, परिवार नियोजन तथा पोषाहार के विविध कार्यक्रम चलाए गए हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से समय-समय पर विशेष अभियान चलाकर इन पहलुओं के प्रति लोगों में चेतना जगाने के प्रयास भी किए जाते हैं।

यात्रा के अवरोध

स्वतंत्रता के बाद का हमारा इतिहास और दस्तावेज इस तथ्य के साक्षी हैं कि उपरोक्त सभी कार्यक्रम एवं योजनाएं चला कर गांवों में खुशहाली लाने की दिशा में प्रयास किए गए। जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है कि इनके परिणाम भी प्रत्यक्ष दिखाई दिए हैं, किन्तु यह सब सच होते हुए भी इस तथ्य से शायद ही कोई इन्कार कर पाए कि जितनी पूंजी और सरकारी प्रयास तथा श्रम इस क्षेत्र में व्यय किया गया है, उसकी तुलना में परिणाम कम मिले हैं। यानी जितना गुड़ डाला गया, मीठा उससे कम रहा। आप यह भी तर्क दे सकते हैं कि हमारी अन्य सरकारी योजनाएं भी तो पूरी तरह सफल नहीं हुई हैं, तब केवल ग्रामीण विकास के क्षेत्र में ही अपेक्षित सफलता के अभाव पर आंसू क्यों बहाए जाएं? किन्तु इस तर्क से निराशावाद की गंध आती है। इसमें आंशिक रूप से सच्चाई होते हुए भी यह तर्क इस दलील के सामने नहीं ठहर सकता कि जिस प्रकार सभी ओर से तथा बहुविध प्रकार से ग्रामीण विकास के लिए सक्रियतापूर्वक प्रयास हुए हैं, वैसा शायद ही किसी अन्य क्षेत्र में हुआ हो। दूसरी बात यह है कि परिणाम का जितना कम अनुपात इस मामले में दिखाई दे रहा है, उतना अन्य क्षेत्र में नहीं है। अपेक्षित सफलता न मिलना चिंता का विषय है। किन्तु इससे भी महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हम विफल कहां हुए और क्यों हुए? समय आ गया है कि इस प्रश्न का सीधे उत्तर खोजा जाए। भारत जैसा निर्धन देश, चाहे कितनी ही महत्वपूर्ण समस्या का समाधान क्यों न करना हो, लम्बे समय तक लाखों-करोड़ों रुपये यों ही खर्च करने की क्षमता नहीं रखता, जो देश-विदेशी कर्जों का ब्याज चुकाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से कड़ी शर्तों पर ऋण ले रहा हो और खर्चों में भारी कटौती करने के उपायों का सहारा ले रहा हो, वह अपेक्षित परिणाम न देने वाले कार्यक्रमों तथा योजनाओं पर किस तरह अपने सीमित संसाधनों को खर्च कर सकता है। विफलता के वास्तविक कारणों और ग्रामीण विकास की यात्रा के अवरोधों से दो-चार होना उनका निराकरण करना वर्तमान समय का सबसे बड़ा तकाजा है।

यहां यह बता देना भी प्रासंगिक होगा कि सरकार ग्रामीण क्षेत्र के विकास के प्रति आज भी पूर्णतया वचनबद्ध है। चालू साल के बजट, प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव द्वारा राष्ट्र के नाम अपने पहले प्रसारण तथा स्वतंत्रता दिवस पर लालकिले की प्राचीर से उनके सम्बोधन में गांवों के लिए सरकार की चिंता की स्पष्ट झलक मिलती है। वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में स्पष्ट कहा—"हम यह सुनिश्चित करते रहेंगे कि आयोजना संसाधनों का 50 प्रतिशत भाग कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों में निवेशित किया जाए।" एक अन्य स्थान पर वित्त मंत्री ने घोषणा की—"हमारी सरकार कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता देती है। हमारे चुनाव घोषणापत्र में एक वायदा यह किया गया था कि किसानों की आय बढ़ाने, रोजगार के अवसर पैदा करने, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विविधता लाने तथा ग्रामीण औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से खाद्य संसाधन तथा अन्य कृषि-आधारित उद्योगों को बड़े पैमाने पर बढ़ावा दिया जाएगा।"

वर्तमान सरकार की इस स्वागत योग्य वचनबद्धता को देखते हुए ग्रामीण विकास की यात्रा के अवरोधों की तलाश करना और भी अधिक आवश्यक तथा प्रासंगिक लगता है।

प्रशासनिक उदासीनता तथा भ्रष्टाचार

हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में सभी राजनीतिक निर्णयों को क्रियान्वित करने का दायित्व नौकरशाही का रहता है। दुर्भाग्यवश नौकरशाही का जो ढांचा हमें अंग्रेजी शासन से विरासत में मिला था उसी के बल पर हमने नए सपनों को साकार करने की चेष्टा की। यह सच है कि रातोंरात नौकरशाही की नई व्यवस्था करना असंभव था, किन्तु ग्रामीण विकास जैसे मिशनरी एवं अनौपचारिक प्रकार के कार्य के लिए केवल सामान्य नौकरशाहों पर निर्भर करना भूल सिद्ध हुई। बुनियादी तौर तर शहरी माहौल में पले-बढ़े तथाकथित उच्च वर्गों के इन सफेदपोश तथा फाइलों व दफ्तरी कार्यों के लिए प्रशिक्षित लोगों को ग्रामीण वातावरण में स्वयं को खपा लेना कठिन लगा। वे गांवों में अपनी नियुक्ति को सजा मानने लगे। यह प्रवृति बड़े अधिकारियों से चलकर नीचे तक पहुंच गई और आज भी जबकि गांवों में रहन-सहन के स्तर में उल्लेखनीय सुधार हो गया है, प्राइमरी स्कूल के अध्यापक, खण्ड विकास कार्यालय के क्लर्क एवं चपरासी तक इसी कोशिश में रहते हैं कि उनकी नियुक्ति गांव में न होने पाए और यदि हो जाए तो जल्दी से जल्दी तबादला हो जाए। इसके दो खतरनाक परिणाम सामने आए। पहला तो यह कि ग्रामीण विकास के नए-नए कार्यक्रमों की रचना तो होती गई परन्तु उन्हें लागू करने वालों ने उनमें पर्याप्त रुचि नहीं ली। गांव का व्यक्ति उनके कर्म तथा

चिन्तन का केन्द्र बन नहीं पाया। उनके लिए नौकरी का अर्थ व्यक्ति को लाभ पहुंचाना कम और आंकड़े पूरे करके रिपोर्ट भेजना अधिक हो गया। विचित्र बात यह है कि कार्यक्रमों के वास्तविक परिणामों का नकारात्मक चित्र प्रत्यक्ष दिखाई देने पर भी विफलता के लिए जिम्मेदार कर्मचारियों की निशानदेही करने तथा उनकी जवाबदेही तय करने का पूरा प्रयास नहीं किया गया। दूसरा खतरनाक परिणाम यह हुआ कि काम में पूरी दिलचस्पी न लेने तथा हकदार एवं पात्र व्यक्ति के प्रति पर्याप्त संवेदनशीलता न होने के कारण वे पात्र व्यक्तियों की बजाय अपात्र व्यक्तियों को लाभ पहुंचाने लगे तथा कर्मचारियों एवं लाभार्थियों के बीच सीधा संपर्क कम हो गया और बिचौलियों की नई जमात पैदा हो गई। यहीं से भ्रष्टाचार का सूत्रपात हुआ जो धीरे-धीरे ग्रामीण विकास की समूची अवधारणा एवं पद्धति को ही दीमक की तरह चाटने लगा। इस संदर्भ मे तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी के वे ऐतिहासिक शब्द उल्लेखनीय हैं, जो उन्होंने 15 अक्तूबर 1989 को अलीगढ़ में कहे थे। उन्होंने कहा, "योजनाओं के कुल मूल्य का केवल 15 प्रतिशत भाग ही लाभार्थियों तक पहुंच पाता है और शेष राशि लालफीताशाही के कारण बरबाद हो जाती है।"

चिंतनीय बात यह है कि एक रुपये में जो 15 पैसे लाभार्थियों तक पहुंचते हैं उन्हें भी सभी पात्र और हकदार लाभार्थी प्राप्त नहीं कर पाते।

आम आदमी से दूरी

कुछ अधिकारियों तथा कर्मचारियों को ग्रामीण जीवन के पहलुओं की न तो पूरी जानकारी होती है और न ही अनुभव। रहन-सहन, खान-पान, पहनावा, बोलचाल सभी मामलों में वे स्वयं को आम गांववासी से श्रेष्ठ तथा गांव के लोगों को अपने से 'हेय' मानते हैं। उनमे सहयोग या सेवा का रिश्ता बन ही नहीं पाता। वे स्वयं को शासक तथा लोगों को 'शासित' समझ कर काम करते हैं। एक तो वे पहले से ही गांव के जीवन से अनभिज्ञ होते हैं और 'उच्चता' के इस भाव के कारण उनके निकट ही नहीं पहुंच पाते, जिससे न तो वे उनकी समस्याओं व दिक्कतों को समझ पाते हैं और न ही उनका इलाज कर पाते हैं। उन लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखे बिना यांत्रिक ढंग से अपना काम करते जाते हैं, जिसका फल यह होता है कि सरकारी धन तो खर्च हो जाता है किन्तु लोगों को समुचित लाभ नहीं मिलते। कई बार तो उसका उल्टा असर देखने को मिलता है। एक छोटा सा उदाहरण काफी होगा। एक स्वयंसेवी संस्था ने लाभार्थियों का सर्वेक्षण करने दौरान यह पाया कि एक क्षेत्र में लोगों की आय बढ़ाने के लिए दी जाने वाली सहायता के अंतर्गत अधिकतर लोगों को बैल गाड़ियां ही दे दी गईं। जब एक समूचे क्षेत्र में बहुत से लोगों के पास बैल गाड़ियां हो गईं तो उनकी औसत आय में कमी हो गई। इस तरह जिन क्षेत्रों में अब किसान ट्रैक्टरों का अधिकाधिक इस्तेमाल करने लगे हैं, वहां भी बैल गाड़ियां बांटते रहना बेकार है। किन्तु नौकरशाही अपने ही ढंग से चलती रहती है। एक और उदाहरण है। राजस्थान में छोटी जाति के गरीब लोगों को बढ़िया किस्म की भैंसे तो मिल गईं, लेकिन उनके पालने पर जो खर्च होता है वह उनके बस से बाहर था। इसका फल यह हुआ कि कुछ दिनों बाद ऊंची जाति के लोगों ने उनसे भैंसे औने-पौने दाम पर खरीद लीं। इस प्रकार सरकारी सहायता तकनीकी तौर पर तो गरीबों को मिली किन्तु उसका वास्तविक लाभ उठाया अमीरों ने। इसी तरह लोगों को कुएं खोदने के लिए वित्तीय सहायता तो दे दी जाती है किन्तु नलकूपों के लिए बिजली का प्रबंध नहीं होता। जैसा कि पहले कहा गया है कि आम लोगों से कटे होने के कारण अधिकारियों की रुचि मात्र आंकड़े जमा करने तथा उन्हें प्रचारित करने में अधिक रहती है।

कार्यक्रमों के वास्तविक परिणामों का नकारात्मक चित्र प्रत्यक्ष दिखाई देने पर भी विफलता के लिए जिम्मेदार कर्मचारियों की निशानदेही करने तथा उनकी जवाबदेही तय करने का पूरा प्रयास नहीं किया गया। दूसरा खतरनाक परिणाम यह हुआ कि काम में पूरी दिलचस्पी न लेने तथा हकदार एवं पात्र व्यक्ति के प्रति पर्याप्त संवेदनशीलता न होने के कारण वे पात्र व्यक्तियों की बजाय अपात्र व्यक्तियों को लाभ पहुंचाने लगे तथा कर्मचारियों एवं लाभार्थियों के बीच सीधा संपर्क कम हो गया और बिचौलियों की नई जमात पैदा हो गई। यहीं से भ्रष्टाचार का सूत्रपात हुआ जो धीरे-धीरे ग्रामीण विकास की समूची अवधारणा एवं पद्धति को ही दीमक की तरह चाटने लगा।

भूमि सुधार

सभी जानते हैं कि भूमि सुधारों के बिना ग्रामीण जीवन में समृद्धि, समता तथा सामाजिक न्याय का सपना कभी पूरा नहीं हो सकता। यह भी सत्य है कि अधिकांश राज्यों ने भूमि सुधार कानून पास कर रखे हैं, किन्तु कुछ राज्यों को छोड़कर कहीं-कहीं इन्हें ईमानदारी से लागू करने के पूरे प्रयास नहीं किए गए। इसका कारण यही है कि नौकरशाही आम आदमी की कम और बड़े किसानों तथा गांवों के शक्तिशाली वर्ग की अधिक चिंता करती है। कर्मचारी वर्ग शक्तिशाली उच्च तथा ऊंची जातियों के लोगों से अधिक आत्मीयता अनुभव करता है और उनके हितों के खिलाफ कलम चलाने तथा कार्रवाई करने में हिचकिचाता है। भूमि चकबंदी कानून का उल्लंघन भी हो

रहा है। प्रचार के लिए भूमिहीनों को अतिरिक्त भूमि का आवंटन हो जाता है किन्तु कुछ मामलों में इन लोगों को मालिकाना हक नहीं मिलता। यदि कोई हिम्मत करके वास्तविक कब्जा लेने पहुंच जाता है तो जमींदार उन्हें खदेड़ देते हैं ओर इस तरह की अधिकतर घटनाओं को कानून एवं व्यवस्था का मामला बनाकर गरीब लोगों को गिरफ्तार कर लिया जाता है और वास्तविक समस्या गौण हो जाती है। गरीब व पिछड़ा वर्ग वहीं का वहीं रहता है।

ग्रामीण विकास के कार्यों में मौजूद गतिरोध, शिथिलता तथा उत्साहहीनता के घेरे को तोड़ने का सबसे कारगर उपाय है आम लोगों की सहभागिता को सुनिश्चित करना। वर्तमान स्थिति को देखकर तो ऐसा लगता है कि जनता की पहल शक्ति और उद्यम-भावना एकदम सूख चुकी है। वास्तव में पंचायती राज व्यवस्था जनता की भागीदारी का ही एक माध्यम था किन्तु वह व्यवस्था भी मृतप्राय हो चुकी है।

विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता

इस स्थिति में बदलाव लाने के लिए सबसे पहली आवश्यकता क्रियान्वयन से जुड़े कर्मचारियों के दृष्टिकोण को ग्रामोन्मुखी तथा संवेदनशील बनाने की है। इसका एक तो तरीका यह है कि कर्मचारियों के चयन के समय ग्रामीण पृष्ठभूमि को भी महत्व दिया जाए। किन्तु यह उपाय बहुत सीमित आधार पर ही कारगर सिद्ध हो सकता है। दूसरा और अधिक प्रभावशाली उपाय यह है कि इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का दायित्व जिन लोगों को सौंपा जाए, उन्हें विशेष प्रशिक्षण दिया जाए, जिसमें ग्रामीण परिस्थितियों व समस्याओं, क्षेत्र विशेष के खास-खास पहलुओं तथा अब तक के काम से प्राप्त अनुभवों की जानकारी दी जा सकती है। इस प्रक्रिया में उन पर ऐसे संस्कार डालने की पद्धति अपनाई जानी चाहिए जिससे उनमें गांवों के लोगों के प्रति अपनत्व तथा सहानुभूति का भाव जागृत हो और वे ग्रामीण उत्थान को नौकरी के अंग के साथ-साथ देश सेवा व समाज सेवा का अवसर मानने लगे। इससे कर्मचारियों में गांवों से भागने की प्रवृति समाप्त हो जाएगी तथा वे पूरे उत्साह व मनोयोग से अपना काम कर सकेंगे। इससे वे गांव वालों के निकट आएंगे, परस्पर दूरी घटती जाएगी और ग्रामीण जनता की मानसिकता व सोच को समझने के बाद वे न्यायसंगत ढंग से लाभों का बटवारा कर सकेंगे। प्रशिक्षण के इन पाठ्यक्रमों में गांवों के प्रमुख लोगों, स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधियों, अध्यापकों तथा महिला प्रतिनिधियों के साथ कर्मचारियों के साथ कर्मचारियों के विचारों एवं अनुभवों के आदान-प्रदान का भी प्रावधान किया जाना चाहिए, जिससे एक-दूसरे की कठिनाइयों को समझने का अवसर मिलेगा तथा जनता व कर्मचारियों के बीच अविश्वास एवं संदेह की जो स्थिति इस समय बन चुकी है, उससे छुटकारा पाने में मदद मिलेगी।

लोगों की सहभागिता

हमारे विचार में ग्रामीण विकास के कार्यों में मौजूद गतिरोध, शिथिलता तथा उत्साहहीनता के घेरे को तोड़ने का सबसे कारगर उपाय है आम लोगों की सहभागिता को सुनिश्चित करना। वर्तमान स्थिति को देखकर तो ऐसा लगता है कि जनता की पहल शक्ति और उद्यम-भावना एकदम सूख चुकी है। वास्तव में पंचायती राज व्यवस्था जनता की भागीदारी का ही एक माध्यम था किन्तु वह व्यवस्था भी मृतप्राय हो चुकी है। दो वर्ष पूर्व पंचायती राज प्रणाली को फिर से खड़ा करने के प्रयास हुए थे और वर्तमान सरकार ने उन सूत्रों को पुनः जोड़ने का संकेत दिया है। पंचायती राज संस्थाओं को वास्तविक सत्ता सौंपी जाए और स्वतंत्रता दी जाए तो गांवों का कायापलट बहुत जल्दी हो सकता है। ग्राम विकास की योजनाओं में स्थानीय जनता के सहयोग से निश्चय ही बेहतर ढंग से योजनाएं बन सकती हैं क्योंकि लोगों को अपनी जरूरतों, प्राथमिकताओं, अपने क्षेत्र की स्थिति एवं संभावनाओं की ज्यादा जानकारी रहती है। गांव के लोग परस्पर तालमेल से ऐसे कार्यक्रम बना सकते हैं, जिनमें लागत से अधिक सफलता मिल सके।

योजनाएं तैयार करने के साथ-साथ उनके क्रियान्वयन एवं निगरानी में भी जनता की सहभागिता अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। यह सहभागिता सीधे भी हो सकती है और स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से भी हो सकती है। इससे बराबर पता चलता रहेगा कि कितने लोगों को किस हद तक लाभ पहुंच रहा है और क्रियान्वयन में कोई गड़बड़ी या भ्रष्टाचार तो नहीं पनप रहा। पश्चिम बंगाल और कर्नाटक में जनता के सहयोग से विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन के प्रयोग सफल हो चुके हैं। आम जनता का कर्मचारियों के प्रति तथा कर्मचारियों का आम लोगों के प्रति विश्वास भाव ही इन कार्यक्रमों की सफलता की गारंटी हो सकता है। आशा करनी चाहिए कि नई सरकार जिस तरह देश की अर्थव्यवस्था, उद्योग, व्यापार, कृषि जैसे क्षेत्र में परिवर्तन ला रही है, उसी प्रकार ग्रामीण विकास के क्षेत्र में प्रयास करेगी और कर्मचारी वर्ग के प्रशिक्षण व जनता की सहभागिता को सुनिश्चित करने की दिशा में कदम उठाएगी। संभवतः तभी हम ग्रामीण विकास का गांधीजी व नेहरूजी का सपना पूरा होने की उम्मीद कर सकेंगे।

सी-7/134 ए, केशवपुरम (लारेंस रोड)
दिल्ली-110035

विकास कार्यक्रम ऐसे हों जिनसे ग्रामीण लाभान्वित हों

विमल

लेखिका के अनुसार गांवों में शिक्षा के सीमित अवसर, रोजगार के अवसरों की कमी, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव, ऊंची जन्मदर, प्रशासनिक स्तर पर त्रुटियां, शहरों की तरफ पलायन एवं सामाजिक परिवेश के कारण आज 44 वर्ष बाद भी विकास यात्रा पूरी नहीं हो पाई। गांव आज भी पिछड़े हुए हैं, बल्कि उनके विकास की समस्या पहले के मुकाबले और पेचीदा हो गई है। उनका मत है कि हमारा प्रशासनिक ढांचा इतना जटिल और शक्तियां इतनी केन्द्रीकृत हैं कि योजनाएं लागू करने वाले और लाभार्थियों के बीच एक लम्बी दूरी बन गई है। ग्रामीण विकास में उन लोगों की भागीदारी जरूरी है, जो गांवों से ही जुड़े हैं। ऐसे कार्यक्रम तैयार किए जाएं, जिनसे ग्रामीण लोग अपने गांवों के विकास से जुड़ने में गौरान्वित महसूस करें।

जिस देश की दो-तिहाई आबादी गांवों में रहती हो, उसकी उन्नति की कल्पना गांवों के विकास के बिना व्यर्थ है। गांधीजी कहा करते थे कि 'असली भारत तो गांवों में ही बसता है और उनका विकास ही भारत का विकास है।' हालांकि गांवों के विकास की उनकी परिकल्पना कुछ और थी, देश जब आजाद हुआ तो समस्या का स्वरूप और था। गांवों की दशा बहुत शोचनीय थी। जमींदारी प्रथा के तहत किसानों का शोषण, अशिक्षा, अंधविश्वास, संसाधनों की कमी, प्राकृतिक आपदाओं की मार, कभी न चुकने वाला कर्ज और घोर गरीबी। लेकिन जब नेहरूजी ने देश की बागडोर संभाली तो गांवों के चहुंमुखी विकास के लिए बड़े पैमाने पर योजनाएं शुरू की गईं। जमींदारी प्रथा खत्म हुई, सिंचाई परियोजनाएं शुरू हुई, ऋण मुहैया कराए गए। शिक्षा का प्रसार हुआ, लघु और कुटीर उद्योगों को सरकारी सहायता मिली, और हरित क्रांति के फलस्वरूप गांवों का नक्शा बदलता गया। लेकिन आज 44 वर्ष बाद भी यह विकास यात्रा पूरी नहीं हो पाई है। गांव आज भी पिछड़े हुए हैं, बल्कि उनके विकास की समस्या आज पहले के मुकाबले और पेचीदा हो गई है। स्वर्गीय भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने खुद कबूल किया था कि जिन लोगों के लिए योजनाएं बनाई जाती हैं, उनके पास रुपये में से 15 पैसे ही पहुंच पाते हैं। मोटे तौर पर ग्रामीण विकास की प्रमुख समस्याएं हैं :

अशिक्षा, शिक्षा के सीमित अवसर और शिक्षा का निम्न स्तर

इनमें कोई शक नहीं कि आजादी के बाद गांवों में साक्षरता का तेजी से विकास हुआ है, लेकिन यह भी सच है कि गांवों में शिक्षा का स्तर नीचा, शिक्षक प्रायः लापरवाह, और स्कूल साधनहीन हैं। बच्चों के सर्वांगीण विकास में न तो शिक्षक रूचि लेते हैं, न ही अभिभावक और तकनीकी शिक्षा या उच्च शिक्षा की सुविधा तो न के बराबर है। न खेलकूद की सुविधाएं उपलब्ध होती हैं, न सामान्य ज्ञान वृद्धि और व्यक्तित्व विकास के मौके ही। इन स्कूलों से निकले बच्चे न तो ग्रामीण जीवन से तालमेल बिठा पाते हैं न ही किसी ऊंची प्रतियोगिता में बैठने की योग्यता विकसित कर पाते हैं। यह शिक्षा उन्हें साक्षर तो बना देती है लेकिन उन्हें भावी जीवन के लिए तैयार नहीं कर पाती।

रोजगार के अवसरों की कमी

गांवों में बेरोजगारी की समस्या शहरों से भी ज्यादा विकराल है। नौकरियां तो गांवों में हैं ही नहीं और एक शिक्षित युवक शारीरिक श्रम करने में अपनी हेठी समझता है। अप्रशिक्षित और अर्ध-प्रशिक्षित मजदूरों को तो शहरों के मुकाबले आधी मजदूरी भी नहीं मिल पाती। बेरोजगार युवकों को अपना काम-धंधा शुरू करने के लिए बैंकों से ऋण सुविधा भी है, लेकिन कुछ जानकारी के अभाव में और कुछ लालफीताशाही के कारण सभी लोग उसका लाभ नहीं उठा

पाते। इसके अलावा उन्हें यह दिशा-निर्देश भी नहीं मिल पाता कि असल में वे किस रोजगार के योग्य हैं। नतीजा होता है, कुंठा, निराशा और फिर शहरों की तरफ पलायन।

स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव

हर गांव में प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र की स्थापना के बावजूद ग्रामवासियों के स्वास्थ्य की देखरेख का जिम्मा अब भी नीम-हकीमों के जिम्मे है। नतीजा होता है छोटी-मोटी बीमारियों में मृत्यु या विकलांगता। यही नहीं स्वास्थ्य संबंधी नियमों की जानकारी के अभाव में कुछ गंदगी व साफ पेयजल की कमी की वजह से उन्हें बीमारियां अक्सर ही घेरे रहती हैं।

ग्रामीण विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में उन लोगों की भागीदारी जरूर होनी चाहिए जो गांवों से ही जुड़े हैं और जिन्हें गांव के ही लोगों ने चुना है। तभी लालफीताशाही और भ्रष्टाचार पर रोक लग सकेगी और पंचायतों को यह जिम्मेदारी सौंपना इस दिशा में एक कारगर कदम होगा।

ऊंची जन्म दर

परिवार नियोजन के प्रचार पर अरबों रुपया व्यय होने के बावजूद गांवों में जनसंख्या वृद्धि में कमी के आसार नजर नहीं आ रहे। शहरों में तो फिर भी परिवार नियोजन कार्यक्रमों में लोगों की रूचि बढ़ी है, लेकिन गांवों में अज्ञान और अंधविश्वास के चलते लोग परिवार नियोजन नहीं अपना सके। नतीजन कमाने वाले हाथ उतने ही रहते हैं, खाने वाले मुंह बढ़ जाते हैं। कृषि पर दबाव बढ़ जाता है और जो थोड़ी बहुत आर्थिक संपन्नता आती है, वह बढ़ती जनसंख्या की भेंट चढ़ जाती है। माल्थस का सिद्धांत हमारी ग्रामीण व्यवस्था पर अंशतः लागू होता है।

गांवों का सामाजिक परिवेश

हरित क्रांति के बाद गांवों की आर्थिक दशा बहुत सुधरी है। बिजली, रेडियो, टेलीविजन, यातायात संचार सुविधाओं के जरिए वे आधुनिकता की राह पर चल निकले हैं, लेकिन गहराई से देखा जाए तो ग्रामीण संस्कृति शहरों से भी बदतर हो गई है। सादा सरल जीवन जो कभी ग्राम्य जीवन का पर्याय हुआ करताथा अब कहीं नजर नहीं आता। उसकी जगह, ईर्ष्या द्वेष, वैर और भौतिक प्रतिस्पर्धा ने ले ली है। न तो वे भोले-भाले ग्रामीण रह पाए हैं न सभ्य-सुसंस्कृत पढ़े-लिखे संभ्रातजन। अल्प शिक्षा ने उन्हें अपने अधिकारों के प्रति तो सचेत कर दिया लेकिन सामाजिक कर्तव्यों का बोध उन्हें नहीं करा पाई। उज्जड़पन, बात-बात में मारपीट, शराब, जुआ आदि आज आर्थिक दृष्टि से संपन्न ग्रामीणों के जीवन के प्रतीक बनते जा रहे हैं। तब जमींदार शोषण करते थे तो अब साधन-सम्पन्न लोग। ऐसे में जब विकास की परिभाषा भौतिक उपलब्धियों तक ही सीमित हो तो ग्रामीण विकास या सामुदायिक विकास की कल्पना बेकार है। आज किसान साक्षर जरूर हुए हैं लेकिन उनके संस्कार छूटते जा रहे हैं।

शहरों की तरफ पलायन

ग्रामीण विकास में एक बड़ी बाधा भारी संख्या में नवयुवकों के शहरों की तरफ पलायन की है। इससे जहां शहरों में जनसंख्या का दबाव बढ़ता जाता है, वहां गांव काम करने में सक्षम लोगों से खाली होते जा रहे हैं। यह समस्या कुछ-कुछ वैसी ही है, जैसे शहरों के उच्च तकनीकी शिक्षा प्राप्त युवक विदेशों में जा बसते हैं। वहां उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक बनना मंजूर है, लेकिन वापस लौटना नहीं चाहते। उसी तरह शहरी जीवन कठिनाइयों और संघर्षों से भरा होने के बावजूद ग्रामीण युवकों को लुभाता रहा है। जिस युवक को पढ़-लिखकर गांव के उत्थान की तरफ ध्यान देना चाहिए वह गांव से एकदम कट जाता है। जब वहां के रहने वाले ही गांव की उन्नति में रूचि न लें तो सरकार और प्रशासन भी ज्यादा कुछ नहीं कर पाते।

प्रशासनिक स्तर पर त्रुटियां

15 अक्तूबर, 1989 को अलीगढ़ की एक जनसभा में राजीव गांधी के शब्द कि "सरकारी योजनाओं के लाभ आम आदमी तक नहीं पहुंच पाते, योजनाओं के कुल मूल्य का केवल 15 प्रतिशत भाग ही वास्तविक लाभार्थियों तक पहुंच पाता है। शेष राशि लालफीताशाही के कारण बर्बाद हो जाती है...." प्रशासनिक त्रुटियों की व्याख्या करते हैं। जिस पर विडंबना यह कि ऐसी व्यवस्था के लिए जिम्मेदार लोगों की जवाबदेही निर्धारित करने का कोई प्रावधान नहीं है। हमारा प्रशासनिक ढांचा इतना जटिल और शक्तियां इतनी केन्द्रीकृत हैं कि योजनाएं लागू करने वाले और लाभार्थियों के बीच एक लंबी दूरी बन गई है।

इन्हीं सब अड़चनों के चलते ग्रामीण विकास योजनाओं के अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पा रहे हैं, फिर भी सरकारी प्रयास तो चालू ही रहेंगे। कुछ समाधान यह हो सकते हैं :

शक्तियों का विकेन्द्रीकरण

ग्रामीण विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में उन लोगों की भागीदारी जरूर होनी चाहिए जो गांवों से ही जुड़े हैं और जिन्हें गांव के ही लोगों ने चुना है। तभी लालफीताशाही और

भ्रष्टाचार पर रोक लग सकेगी और पंचायतों को यह जिम्मेदारी सौंपना इस दिशा में एक कारगर कदम होगा। आजादी के तत्काल बाद 'हरिजन' के 21 दिसम्बर 1947 के अंक में गांधीजी ने लिखा था, "पंचायतों को जितना ज्यादा अधिकार होगा, लोगों के लिए बेहतर होगा" इसी कमी को दूर करने के लिए सितम्बर 1990 में संविधान संशोधन विधेयक (संविधान संशोधन विधेयक) प्रस्तुत किया जिसका उद्देश्य स्थानीय निकायों को अधिक शक्तियां तथा अधिकार देना (कर, शुल्क, चुंगीकर, लगाने और उन्हें वसूल करने के अधिकारों समेत) है। इन निकायों का कार्यकाल पांच वर्ष नियत किया गया लेकिन इस तरह के निकायों की जवाबदेही भी तय होनी चाहिए। साथ ही अपनी जिम्मेदारी न निभा सकने वाले प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार भी लोगों को होना चाहिए।

इसे जन आंदोलन बनाना

कोई भी आंदोलन या विकास योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक लाभान्वित होने वाले लोग उसमें सक्रिय भागीदारी न लें। इसलिए ऐसे कार्यक्रम तैयार किए जाने चाहिए जिससे ग्रामीण लोग अपने गांवों के विकास के साथ जुड़ने में गौरवान्वित महसूस करें क्योंकि अंततः गांव का विकास ही उनका विकास है। विकास के लक्ष्य हासिल करने वाले गांवों को राज्य सरकार द्वारा पुरस्कृत करने की शुरुआत भी एक उत्साहवर्धन करने वाला कदम होगा। नेहरूजी ने भी लोगों को शिक्षित करने, उनका दृष्टिकोण बदलने पर जोर दिया था, ताकि लोग ग्रामीण विकास कार्यक्रम को सरकारी न समझें उनमें खुद आगे बढ़ने का सम्मान पैदा हो तभी बात बन सकती है।

पलायन को रोकना

शहरों की ओर अंधी दौड़ की प्रवृत्ति भी गांवों के विकास में बड़ी बाधक है, क्योंकि शिक्षित और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति ही विकास की आधारशिला होते हैं। इसके लिए सबसे पहले तो गांवों को ही इस योग्य बनाना होगा कि लोग शहरों की तरफ अंधी दौड़ न लगाएं और उनकी सारी जरूरतें गांव में ही पूरी हो सकें जैसे, अच्छे स्कूल, स्वच्छ पेयजल, पक्की गलियां, स्वास्थ्य सुविधाएं, मनोरंजन के साधन। सबसे बड़ी बात यह कि उन्हें ग्रामवासी होने पर गर्व होना चाहिए। गांवों को शहरों से जोड़ा जाए ताकि शहरों में काम करने वाले आसानी से आ-जा सकें।

ग्रामीण उद्योगों का विकास

इसके अंतर्गत कृषि पर आधारित उद्योग, कुटीर उद्योग तथा लघु उद्योग शामिल हैं। इनका ज्यादा से ज्यादा विकास किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे अधिक रोजगार के अवसर, कम पूंजी निवेश, संतुलित क्षेत्रीय विकास, स्फीतिकारी दबावों पर रोक, कृषि पर जनाभार की कमी, शीघ्र उत्पादन व परंपरागत हस्तशिल्प कलाओं को कायम रखने जैसे भारी फायदे हैं। 1948 व 1956 में नेहरूजी के समय कुटीर एवं लघु उद्योगों को बहुत प्रोत्साहन दिया गया। इनका और विकास किया जाना चाहिए और नए उद्योग शुरू करने के लिए ऋण की व्यवस्था सरल की जानी चाहिए।

रोजगार के अवसर

गांवों के पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण रोजगार सुविधाओं की कमी है। कृषि पर निर्भर रहने वाले किसान भी साल में छह महीने खाली रहते हैं, इसलिए ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि गांवों के संसाधनों से ही वहां रोजगार के अवसर पैदा किए जा सकें और वेतन तथा मजदूरी जहां तक हो सके शहरों के बराबर ही हो। सरकार ने ऐसी दो योजनाएं शुरू की हैं। एक है—केन्द्र द्वारा प्रायोजित ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राइसेम) और केन्द्र और राज्यों द्वारा प्रायोजित जवाहर रोजगार योजना। 'ट्राइसेम' समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का एक अंग है, जिसके तहत गरीबी रेखा के नीचे जी रहे परिवारों के 18-35 वर्ष के युवकों में तकनीकी कौशल विकसित किया जाता है, ताकि वे अपना काम-धंधा शुरू करने लायक बन सकें। जबकि जवाहर रोजगार योजना के उद्देश्य हैं—ग्रामीण इलाकों में बेरोजगार और अल्प रोजगार वाले लोगों के लिए अतिरिक्त लाभकारी रोजगार का सृजन करना—और ग्रामीण आर्थिक ढांचे तथा संसाधनों का सही इस्तेमाल कर रोजगार के अवसर पैदा करना है।

कोशिश यह होनी चाहिए कि गांव अशिक्षा, अज्ञान, दीनता व पिछड़ेपन का पर्याय न रह कर विकास और आर्थिक समृद्धि का प्रतीक बन जाएं।

जन सहयोग और कापार्ट

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में लोगों की भागीदारी और सहयोग के महत्व से सब परिचित हैं। स्वैच्छिक संगठन सरकारी प्रयासों को फलीभूत करने, लोगों में जागरुकता पैदा करने और सूचना का प्रचार-प्रसार करने के महत्वपूर्ण साधन हो सकते हैं। सरकारी प्रयासों और योजनाओं को संदेह और उपेक्षा की दृष्टि से देखने वाले ग्रामीण स्वैच्छिक संगठनों से जल्द तारतम्य स्थापित कर सहयोग के लिए आगे आ सकते हैं। कुछ स्वैच्छिक एजेंसियां ग्रामीण क्षेत्रों को उपलब्ध प्रौद्योगिकी मुहैया कराने में भी लगी हैं। सरकार भी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में स्वैच्छिक संगठनों की अधिकाधिक भागीदारी पर बल दे रही है। इसके अलावा

सितम्बर 1986 को लोक कार्यक्रम तथा ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद् (कापार्ट) का गठन किया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण समृद्धि के लिए परियोजनाओं के क्रियान्वयन में स्वैच्छिक कार्य को बढ़ावा देना, प्रोत्साहित करना और मदद देना है। इसके लिए परिषद् स्वैच्छिक संगठनों को वित्तीय और तकनीकी सहायता भी देती है।

कोई भी आंदोलन या विकास योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक लाभान्वित होने वाले लोग उसमें सक्रिय भागीदारी न लें। इसलिए ऐसे कार्यक्रम तैयार किए जाने चाहिए जिससे ग्रामीण लोग अपने गांवों के विकास के साथ जुड़ने में गौरवान्वित महसूस करें क्योंकि अंततः गांव का विकास ही उनका विकास है।

सहकारिता का विकास

पंडित नेहरू सहकारिता को ग्रामीण विकास का मूलमंत्र मानते थे और उनका कहना था कि भारत के मूल आधार के रूप में ग्राम पंचायत, सहकारी समितियां और ग्राम स्कूल ये तीन स्तंभ होने चाहिए। सहकारिता छोटे एककों और औद्योगिक तकनीक के बीच के अंतराल को पाटती है। आज प्राथमिक सहकारी सेवा समितियों का तंत्र कृषि उत्पाद के विपणन, वितरण, दुग्ध उत्पादन एवं वितरण, ऋण व अन्य कृषि संबंधी उपकरणों को मुहैया कराने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। फिर भी इसमें कुछ सुधार अपेक्षित है।

- सहकारी समिति के प्रशासन में गरीबों को समुचित प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।
- प्रशासनिक व्यवस्था इस तरह की होनी चाहिए कि गरीबों की उसमें पहुंच हो और वे उन सुविधाओं का लाभ उठा सकें।
- सहकारी समितियों के बढ़ते राजनीतिकरण पर भी रोक लगनी चाहिए। इन्हें गरीबों की मददगार संस्थाएं ही बने रहना चाहिए राजनीति के अड्डे नहीं।
- सहकारी समितियों द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं का सरलीकरण किया जाना चाहिए ताकि ज्यादा से ज्यादा लोग सुविधाओं का लाभ उठा सकें।
- समितियों को जब जी चाहे बंद कर देने की जो परंपरा बनती जा रही है, उस पर रोक लगनी चाहिए।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास त्रिपक्षीय होना चाहिए :

पहला आयाम होना चाहिए आर्थिक विकास : जिसके तहत कृषि का विकास यानी अधिक उत्पादन वाली सुविधाएं मुहैया कराना, उपज का उचित मूल्य, सस्ती दरों पर व सुविधा से मिलने वाला ऋण, गांवों के ही संसाधनों का विकास कर रोजगार के अवसर जुटाना, लघु व कुटीर उद्योगों का विकास, तैयार माल के विपणन की व्यवस्था, साहूकारों व बिचौलियों के शोषण से बचकर इन्हें खुशहाल बनाना आदि कदम शामिल हैं।

दूसरा चरण होना चाहिए ग्रामीणों को साक्षर बनाकर उनका चारित्रिक विकास : जब तक ग्रामीण खुद जागरुक नहीं होंगे अपने और गांवों के विकास में रुचि नहीं लेंगे तब तक कोई भी सरकारी योजना सफल नहीं हो सकती। इसके लिए गांवों में साक्षरता के विकास के साथ-साथ शिक्षा के स्तर में सुधार भी बहुत जरूरी है। शिक्षा रोजगारोन्मुखी हो, सस्ती हो, सहज उपलब्ध हो, और चारित्रिक और नैतिक विकास में भी सहायक हो। तभी हमें अच्छे नागरिक मिल सकेंगे।

विकास का तीसरा पहलू यह है कि गांवों में बुनियादी जरूरतों में सुधार बहुत जरूरी है। स्वच्छ पेयजल, पक्की सड़कें, बिजली, डाक्टर, बैंक, स्कूल, जल निकासी का समुचित प्रबंध, पुस्तकालय होना चाहिए ताकि गांवों का जीवन आरामदेह बन सके और गांव अशिक्षा, अज्ञान, दीनता व पिछड़ेपन का पर्याय न रहकर विकास और आर्थिक समृद्धि का प्रतीक बन जाएं।

डब्ल्यू जेड 299 हरी नगर
नई दिल्ली-110058

ग्रामीण विकासः आवश्यकता है ईमानदारी की...!

डा. मुन्नीलाल विश्वकर्मा

गांधीजी के इस कथन की कि "भारत गांवों में बसता है, यदि गांव की काया पलट हो जाती है तो समूचे राष्ट्र का विकास सम्भव हो सकेगा" की प्रासंगिकता आज भी ज्यों की त्यूं ही बनी हुई है। लेखक का मत है कि पहली योजना से लेकर अब तक सातवीं योजना बनी परन्तु ग्रामीण लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं हो सकी है। स्वतंत्रता के पश्चात अनेक कार्यक्रमों जैसे सामुदायिक विकास कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं काम के बदले अनाज कार्यक्रम आदि शुरू तो किए गए लेकिन प्रधानों एवं अधिकारियों की विशेष रुचि न होने के कारण पिछड़ गए। उन्होंने कहा कि जब तक हम भ्रष्टाचार की नींव को जड़ से नहीं उखाड़ फेंकेंगे तब तक हम इन कार्यों में सफल नहीं हो पाएंगे। इसके लिए लेखक ने सुझाव दिया है कि एक उपयुक्त आचार संहिता बनाई जाए जिससे लोग ईमानदारी एवं परिश्रम की ओर अग्रसर हो सकें।

प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिंह राव ने 22 जून को अपने पहले राष्ट्रीय प्रसारण में इस बात पर चिन्ता प्रकट की कि "देहात के गरीबों पर विशेष ध्यान हमेशा सरकार देती आई है और आज भी देना चाहती है। जमीन पर जो दबाव है, जमीन पर या खेती पर आजीविका पाने वाले लोगों की जो एक बहुत बड़ी संख्या है उसे कम करना है और उसके लिए रोजगार के दूसरे साधन भी मुहैय्या करने हैं...जिनके लिए खर्च किया जाता रहा है उनको अवश्य मिले, बीच में कहीं इधर-उधर जाया न हो, इसको सुनिश्चित करना है और ये हम अवश्यक करेंगे।" श्री राव की यह चिन्ता जायज है। यह तो भविष्य ही बताएगा कि वे इस सम्बन्ध में क्या कदम उठाते हैं और अपने उद्देश्य में कितना सफल होते हैं।

गांधीजी के इस कथन की कि "भारत गांवों में बसता है, यदि गांवों की कायापलट हो जाती है तो समूचे राष्ट्र का विकास सम्भव हो सकेगा" की प्रासंगिकता आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। आज भी देश की तीन-चौथाई जनसंख्या साढ़े पांच लाख गांवों में बसती है। नियोजन के लगभग 40 वर्षों में देश में तीव्र औद्योगीकरण, शहरीकरण एवं पर्यावरण प्रदूषण की गम्भीर समस्या के कारण ग्रामीण विकास का मुद्दा और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। गांवों की खुशहाली में ही देश की खुशहाली निहित है। गांवों को उपेक्षित छोड़कर की गई उन्नति एकपक्षीय होगी और एकपक्षीय विकास हमारा कभी भी लक्ष्य नहीं रहा है। हमारा लक्ष्य तो देश का समग्र विकास करना रहा है, सर्वांगीण विकास जो गांवों के विकास बिना अधूरा है।

ग्रामीण विकास से तात्पर्य ऐसी नियोजन नीति से है जिसके द्वारा ग्रामीण समाज के कमजोर वर्गों के सामाजिक आर्थिक स्तर को स्थानीय संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग द्वारा उठाया जा सके एवं गांव को खुशहाल बनाया जा सके। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत आर्थिक और सामाजिक दोनों पहलुओं का समावेश होता है। आर्थिक पहलू से तात्पर्य-रोजगार, उत्पादन, आय एवं व्यावसायिक जागृति से है। अतः ग्रामीण विकास को राष्ट्रीय विकास का पर्याय मानना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

ग्रामीण विकास की नीति

सन् 1952 में पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में पहली योजना में ग्रामीण विकास हेतु सामुदायिक विकास योजना प्रारम्भ की गई। दूसरी योजना में कुछ राज्यों को छोड़कर केन्द्र एवं राज्यों में कांग्रेस का ही शासन रहा। तीसरी योजना में हमारे देश को चीन से लड़ाई (1962), प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु (1964), भारत-पाक युद्ध (1965), प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु और श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा सत्ता की बागडोर संभालना आदि अनिश्चित राजनीतिक स्थिति का सामना करना पड़ा। इस

योजना के अंतर्गत पंचायती राज और तीन स्तरीय मॉडल–प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर बल दिया गया। देश में भयंकर सूखे (1966, 1967) के कारण आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय रही। फलस्वरूप सरकार ने चौथी योजना के स्थान पर "योजना अवकाश" की घोषणा की। बैंकों का राष्ट्रीयकरण, 1971 "गरीबी हटाओ" का नारा दिया गया आदि। इस योजना में विशेष क्षेत्र आधारित कार्यक्रमों की प्रमुखता रही। पांचवीं योजना में राजनीतिक ध्रुवीकरण हुआ और 1977 में जनता पार्टी सत्ता पर काबिज हुई। जनता पार्टी ने छठी योजना (1978-83) की शुरुआत की। इस योजना में "न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम" पर बल दिया गया। छठी योजना में कांग्रेस पार्टी (ई) पुनः सत्ता पर काबिज हुई। उन्होंने पुनः छठी योजना (1980-85) की शुरुआत की। 1984 में श्रीमती इंदिरा गांधी की मृत्यु के पश्चात श्री राजीव गांधी प्रधानमंत्री नियुक्त हुए। इस योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक सूक्ष्म ढांचा पर विशेष बल दिया गया।

सातवीं योजना में गरीबी की समस्या पर सीधा प्रहार, बेकारी व क्षेत्रीय असमताओं को दूर करना मुख्य उद्देश्य रहा।

ग्रामीण विकास कार्यक्रम

स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेजी शासकों ने ग्रामीण विकास पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। उन्होंने अपने माल की बिक्री हेतु भारत के लघु एवं कुटीर उद्योगों को तहस-नहस कर दिया। अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु जोतों की परम्परा को छिन्न-भिन्न कर दिया। फलस्वरूप ग्रामीण गरीबों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती चली गई। उन्हें रोटी, कपड़ा, मकान और अन्य मूलभूत आवश्यकताओं के लिए भी मोहताज बना दिया गया।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान ही महात्मा गांधी, पंडित नेहरू एवं अन्य शीर्षस्थ नेताओं ने देशवासियों को बार-बार याद दिलाया था कि भारत गांवों में बसता है और बिना इनकी स्थिति में सुधार किए हमारा स्वराज अधूरा रहेगा। गांधीजी द्वारा 1920 में प्रारंभ किया गया असहयोग आन्दोलन ग्रामीण राजनीति को गतिशील बनाने का प्रथम राजनीतिक प्रयास था। श्री निकेतन से सन् 1921 ई. में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ग्रामोत्थान का कार्य प्रारम्भ किया। कृषि, कुटीर उद्योग, ग्रामीण स्वास्थ्य, शिक्षा, सेवा, कला, मनोरंजन के कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात 1 अप्रैल 1951 से नियोजित आर्थिक विकास के माध्यम से ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया गया।

नियोजन काल में ग्रामीण विकास हेतु अपनाए गए विभिन्न कार्यक्रमों में पहली योजना में सामुदायिक विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय विस्तार सेवा, दूसरी योजना में खादी और ग्रामोद्योग कार्यक्रम, ग्रामीण आवास योजना, बहुउद्देशीय अनुसूचित जनजाति विकास खण्ड कार्यक्रम, पैकेज कार्यक्रम, सघन जिला कृषि कार्यक्रम, व्यावहारिक आहार कार्यक्रम, तीसरी योजना में ग्रामीण उद्योग परियोजना, गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम, उच्च उत्पादकता वाली किस्तों का कार्यक्रम, वार्षिक योजना में किसानों का प्रशिक्षण एवं शिक्षा कार्यक्रम, कुआं निर्माण कार्यक्रम, जनजाति विकास कार्यक्रम, ग्रामीण जनशक्ति कार्यक्रम, चौथी योजना में सूखा पीड़ित क्षेत्र कार्यक्रम, ग्रामीण रोजगार हेतु नकद योजना, लघु कृषक विकास एजेंसी, जनजाति विकास कार्यक्रम हेतु योजना, गहन ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, कमाण्ड एरिया विकास कार्यक्रम, पांचवी योजना में पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम, विशेष दूध उत्पादन कार्यक्रम, काम के बदले अनाज

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात नियोजित आर्थिक विकास के माध्यम से ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया गया है। यह विडम्बना ही है कि सात पंचवर्षीय योजनाओं के बाद भी हमारे गांवों का यथेष्ट विकास नहीं हो सका है, जो इस बात का द्योतक है कि आज भी गरीबी रेखा से नीचे स्तर पर जीवन बिता रहे लोगों की संख्या गांवों में 40 प्रतिशत से अधिक है। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रामीण विकास हेतु जो भी कार्यक्रम चलाए गए हैं उनका पूरा लाभ ग्रामवासियों को न मिलकर कुछ बिचौलियों, सरकारी कर्मचारियों तथा अधिकारियों की जेबों में जाता रहा है।

कार्यक्रम, रेगिस्तान विकास कार्यक्रम, सम्पूर्ण ग्रामीण विकास कार्यक्रम, स्वरोजगार हेतु ग्रामीण युवा प्रशिक्षण कार्यक्रम, छठी योजना में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, बीस सूत्री कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम तथा सातवीं योजना में समन्वित ग्रामीण योजना, इन्दिरा आवास योजना, अग्निबीमा योजना–सामाजिक सुरक्षा कोष, सामूहिक बीमा योजना, आबादी पर्यावरण सुधार परियोजनाओं का कार्यक्रम, कुटीर ज्योति एवं जवाहर रोजगार योजना आदि कार्यक्रम शुरू किए गए, जिनका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों का सर्वांगीण विकास करना रहा है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात नियोजित आर्थिक विकास के माध्यम से ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया गया है। यह विडम्बना ही है कि सात पंचवर्षीय योजनाओं के बाद भी हमारे गांवों का यथेष्ट

विकास नहीं हो सका है, जो इस बात का द्योतक है कि आज भी गरीबी रेखा से नीचे स्तर पर जीवन बिता रहे लोगों की संख्या गांवों में 40 प्रतिशत से अधिक है। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रामीण विकास हेतु जो भी कार्यक्रम चलाए गए हैं उनका पूरा लाभ ग्रामवासियों को न मिलकर कुछ बिचौलियों, सरकारी कर्मचारियों तथा अधिकारियों की जेबों में जाता रहा है। इस कटु सत्य को सिर्फ हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने ही स्वीकार किया। उन्होंने 7 जुलाई 1988 को कांग्रेस सेवा दल के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए कहा था कि गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों पर सरकार द्वारा व्यय किए गए हर 6 रुपये में से मात्र एक रुपया सम्बन्धित व्यक्ति तक पहुंचता है और शेष राशि उन बिचौलियों द्वारा हथिया ली जाती है जो गरीबों की सहायता के लिए निर्मित आधारभूत ढांचे की व्यवस्था करने का स्वांग रच रहे हैं या उनकी मदद का दम भरते हैं।

सातवीं लोकसभा की सार्वजनिक लेखा समिति ने गरीबी उन्मूलन के विभिन्न कार्यक्रमों की कार्य प्रणालियों की समीक्षा करते हुए कहा था, "यह मानना होगा कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशासन तंत्र कमजोर है। अधिकांश सरकारी अधिकारी ग्रामीण क्षेत्रों के नहीं हैं और इसलिए ग्रामीण समस्याओं से अपरिचित हैं। उनके मन में उनके लिए हमदर्दी भी नहीं है। गलती हमारी शिक्षा तथा सेवाओं में भर्ती की नीतियों में ही है। ग्रामीण आधारभूत ढांचे की कमजोरी की यह वजह है। जब भी इन क्षेत्रों में कोई कार्यक्रम शुरू किए जाते हैं, उनमें अनियमितताएं होती हैं। यहां तक कि सिंचाई तथा लोक निर्माण जैसे परम्परागत कामों में भी जहां कि पैसा भारी मात्रा में लगाया जाता है, प्रत्येक रुपये का पूरा उपयोग नहीं कर पाते।"

भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने 15 अक्तूबर 1989 को अलीगढ़ में आम सभा को सम्बोधित करते हुए पंचायती राज और नगरपालिका विधेयकों के सम्बन्ध में अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा था कि ये विधेयक आवश्यक हैं क्योंकि सरकारी योजनाओं के लाभ आम आदमी तक नहीं पहुंच पाते। योजनाओं के कुल मूल्य का सिर्फ 15 प्रतिशत भाग ही वास्तविक लाभार्थियों तक पहुंच पाता है और शेष राशि लालफीताशाही के कारण बर्बाद हो जाती है और अब यही बात हमारे प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव भी स्वीकार कर रहे हैं।

ऐसा नहीं है कि ग्रामीण विकास की नीतियां एवं विभिन्न कार्यक्रमों के चलते ग्रामीण विकास नहीं हुआ है। ग्रामीण विकास अवश्य हुआ है। आज गांव सड़कों, यातायात के साधनों, संचार के साधनों, स्वास्थ्य केन्द्रों व विद्यालयों से जुड़े हुए हैं। गांव का विद्युतीकरण किया गया है लेकिन इसके बावजूद भी आज ऐसे गांवों की कमी नहीं है जहां तक सड़कें नहीं पहुंची हैं, विद्यालय नहीं हैं, स्वास्थ्य केन्द्र नहीं है, बिजली नहीं है, यातायात के साधनों का अभाव है।

विगत 40 वर्षों में ग्रामीण विकास हेतु जो भी कार्यक्रम बनाए एवं चलाए गए हैं और जितना धन आवंटित किया गया है, यदि वास्तव में उतना ईमानदारी से व्यय किया गया होता तो निःसंदेह आज हम विश्व को एक नई दिशा दे सकने में सक्षम होते। लेकिन भ्रष्टाचार के चलते ग्रामीण विकास हेतु आवंटित किए गए धन का अधिकांश भाग बिचौलियों द्वारा हड़प लिया गया है। इसी के चलते हमारे गांवों का उतना विकास नहीं हो सका है जितना कि होना चाहिए था।

भ्रष्टाचार की जड़ कहां?

ग्रामीण विकास पर आवंटित किया गया पूरा धन व्यय न होने का प्रधान कारण भ्रष्टाचार है। आज समाज का प्रत्येक व्यक्ति कम से कम काम अधिक से अधिक दाम चाहता है। समाज से सन्तोष की भावना लुप्त होती जा रही है। आवश्यकताएं बढ़ती जा रही हैं, इसकी पूर्ति न होने पर व्यक्ति घूसखोरी आदि में लिप्त हो रहा है तो फिर उससे कर्तव्यपरायणता की आशा कैसे की जा सकती है?

ग्रामीण विकास की बाधाएं

- जिला तथा खण्ड स्तर पर ग्रामीण विकास हेतु जो भी कार्यक्रम चलाए जाते हैं उनमें स्थानीय सत्ताधारी नेता का हस्तक्षेप होता है, जो निष्पक्ष होकर ईमानदारी से कार्य नहीं करने देते।
- जिला तथा खण्ड स्तर पर ग्रामीण विकास हेतु जो भी कार्यक्रम चलाए जाते हैं उसमें मुख्य भूमिका ग्राम प्रधान, ग्राम सेवक एवं खण्ड विकास अधिकारी की होती है। यदि ये अधिकारी एवं कर्मचारी भ्रष्ट होते हैं तो जितना धन किसी एक गांव के लिए आवंटित किया जाता है वह बिचौलियों में बंटता हुआ ऊपर तक पहुंचता है। फलस्वरूप ग्रामीण विकास नहीं हो पाता।
- यदि कर्मचारी एवं अधिकारी ईमानदारी से योजना का क्रियान्वयन करना चाहते हैं तो उन्हें परेशान किया जाता है, उनका तबादला कर दिया जाता है अथवा तरह-तरह के चार्ज लगाकर निलम्बित कर दिया जाता है।
- गांवों में प्रधान शरीफ, ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को न चुनकर ऐसे व्यक्ति को चुना जाता है जो किसी न

किसी अपराध, राजनीतिक पार्टी से सम्बन्धित होता है तो फिर से इनसे आशा कैसी?

- गांवों में कार्यरत ईमानदार अधिकारियों के बच्चों को परेशान किया जाता है।
- ग्रामीण विकास हेतु जो भी कार्यक्रम चलाए जाते हैं उसमें ईमानदारी नहीं होती, अपितु वे कार्यक्रम अधिक से अधिक वोट बटोरने के दृष्टिकोण से बनाए एवं क्रियान्वित किए जाते हैं।
- लोगों के मन में गांव एवं देश के प्रति उचित सम्मान की भावना का अभाव होता है।
- इस भौतिकवादी युग में चाहे वह सरकारी अथवा गैर सरकारी कर्मचारी हो या अधिकारी वह हर भौतिक सुख-सुविधा का लाभ उठाना चाह रहा है। ऐसा वह अपने प्रतिमाह मिलने वाले वेतन से नहीं कर पाता। विवश होकर वह भ्रष्टाचार में लिप्त होता है।
- सरकार द्वारा ईमानदार अधिकारियों एवं कर्मचारियों को सुरक्षा प्रदान नहीं करना है। बाध्य होकर उन्हें वे कार्य करने पड़ते हैं जिसे उनकी अन्तर्आत्मा स्वीकार नहीं करती।

विगत 40 वर्षों में ग्रामीण विकास हेतु जो भी कार्यक्रम बनाए एवं चलाए गए हैं और जितना धन आवंटित किया गया है, यदि वास्तव में उतना ईमानदारी से व्यय किया गया होता तो निःसंदेह आज हम विश्व को एक नई दिशा दे सकने में सक्षम होते। लेकिन भ्रष्टाचार के चलते ग्रामीण विकास हेतु आवंटित किए गए धन का अधिकांश भाग बिचौलियों द्वारा हड़प लिया गया है। इसी के चलते हमारे गांवों का उतना विकास नहीं हो सका है जितना कि होना चाहिए था।

सुझाव

यदि वास्तव में सरकार ग्रामीण विकास करना चाहती है और चाहती है कि ग्रामीण विकास हेतु आवंटित हर एक रुपया ग्रामीण विकास हेतु खर्च हो तो उसे निम्नलिखित सुझावों पर अमल करना होगा—

- विधायिका हेतु ऐसी आचार संहिता बनाई जाए और उसका कड़ाई से पालन किया जाए कि ईमानदार, देश-भक्त सच्चरित्र एवं नैतिक व्यक्ति ही चुनकर जा पाए।
- सरकारी कर्मचारियों एवं अधिकारियों में देश-प्रेम की भावना जागृत की जाए।
- ऐसे कड़े कानून बनाए जाएं और उनका पालन किया जाए कि दूसरे अधिकारी एवं कर्मचारी भ्रष्टाचार में लिप्त होने का साहस ही न जुटा सकें।
- ग्रामीण विकास हेतु जो भी कार्यक्रम तैयार किए जाएं वे राजनीति से प्रेरित न हों।
- ईमानदार कर्मचारियों एवं अधिकारियों को सुरक्षा की पूरी गारंटी दी जाए ताकि वे ईमानदारी से कार्य कर सकें।
- ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत कर्मचारियों एवं अधिकारियों के बच्चों हेतु स्कूल-स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की पूरी व्यवस्था की जाए।
- सरकार भ्रष्टाचार की जड़ को समूल नष्ट करे।
- ईमानदार कर्मचारियों एवं अधिकारियों को पुरस्कृत किया जाए।
- राजनीतिज्ञ ईमानदार कर्मचारियों के कार्यों में हस्तक्षेप न करें, ऐसी व्यवस्था की जाए।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि यदि वास्तव में सरकार ग्रामीण विकास करना चाहती है और चाहती है कि ग्रामीण विकास हेतु आवंटित धन ईमानदारी से गांवों के विकास पर खर्च हो तो उसे विधायिका पर नजर रखनी होगी। साथ ही सरकारी कर्मचारियों, अधिकारियों एवं जनता को भी पूर्ण लगन, परिश्रम एवं ईमनादारी से कार्य करना होगा, तभी ग्रामीण विकास सम्भव हो सकेगा अन्यथा नहीं।

प्राध्यापक—अर्थशास्त्र
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी

मिट्टी-चिकित्सा

डा. प्रवीण शर्मा

प्राकृतिक चिकित्सा की अनेक शाखाएं हैं। इनमें मिट्टी चिकित्सा का एक विशिष्ट स्थान है। वेदों में मिट्टी चिकित्सा के अनेकों प्रमाण मिलते हैं। भारतीय साधु-सन्त नंगे पैर चलते हैं और शरीर पर भस्म रमाए रहते हैं। इसका विशेष महत्व है। मिट्टी से हमारे शरीर को गर्मी में ठंडक और सर्दी में गर्मी प्राप्त होती रहती है। स्पष्ट है कि बिना जूतों के चलने से शरीर का धरती मां से सीधा सम्पर्क बना रहता है और मिट्टी में विद्यमान गुण हमें प्राप्त होते रहते हैं। इससे रज एवं तम गुण शान्त होते हैं तथा सात्विक गुण जागृत होते हैं।

जर्मनी के प्राकृतिक चिकित्सकों डा. एडोल्फ जस्त एवं डा. लूई कूने ने कब्ज पर मिट्टी का प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि इसका उपयोग कब्ज में बहुत लाभदायक रहता है। समय-समय पर समुद्री रेत का प्रयोग औषधि के रूप में भी किया है। समुद्री रेत बिना पचे गुदामार्ग से बाहर निकल जाता है और अपने साथ मल को भी ले जाता है।

फादर कनाइप ने नंगे पांव चलने के विषय में अपनी पुस्तक "माई वाटर क्योर" में स्पष्ट कहा गया है कि नंगे पांव चलने पर उनकी नसों में स्वाभाविक रूप से रक्त संचार की गति बढ़ जाती है, इससे उन्हें सहज, सुडौलता, लालिमा और शक्ति प्राप्त होती है।

भारतवर्ष में प्रचलित मिट्टी-चिकित्सा को हमारे राष्ट्रपिता श्री मोहनदास करमचन्द गांधी ने विधिवत् चिकित्सा के रूप में स्वीकार किया और बापूजी ने मिट्टी चिकित्सा पर अनेकों प्रयोग स्वयं अपने तथा अपने अनुयायियों पर किए और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मिट्टी में रोग निवारण की क्षमता है।

गांधीजी ने 23 मार्च सन् 1946 में उरुली काचन (पूना) में प्राकृतिक चिकित्सालय भी खोला।

गांधीजी ने अपनी पुस्तक "आरोग्य की कुंजी" तथा "कुदरती उपचार" में बताया कि मनुष्य का शरीर पांच तत्वों से मिलकर बना है हवा, पानी, पृथ्वी, अग्नि और आकाश। इन पांच तत्वों से यह मनुष्य रूपी पुतला बना है और ये ही नैसर्गिक उपचारों के साधन हैं।

गांधीजी स्वयं कब्ज से पीड़ित रहते थे। इसके लिए वे कभी-कभी अपने मित्र डा. प्राप जीवन मेहता की बताई हुई एक-दो औषधियों का प्रयोग कर लिया करते थे। कब्ज की स्थिति में "साल्ट" का प्रयोग करते थे। दवाओं के प्रति वह सदैव उदासीन रहते थे। एक बार पोलक नामक व्यक्ति ने एडोल्फ जस्त द्वारा लिखित पुस्तक "रिटर्न टू नेचर" बापूजी को पढ़ने को दी। इस पुस्तक में "मिट्टी के प्रयोग" पर विशेष ध्यान दिया गया है। पुस्तक में निर्देशानुसार बापू ने सोते समय पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखी। सवेरे सन्तोषजनक दस्त हुआ। मिट्टी के इस प्रयोग के बाद बापू ने कभी औषधियों (साल्ट) का प्रयोग नहीं किया। बापू द्वारा बनाई गई इस प्रथम मिट्टी की पट्टी की लम्बाई 6 इंच, चौड़ाई 3 इंच तथा मोटाई ½ इंच थी। सिरदर्द की स्थिति में बापू ने सदैव स्वयं तथा अपने अन्य कार्यकर्ताओं पर औषधि का प्रयोग न करके मिट्टी की पट्टी का प्रयोग सिर पर रखकर पूर्ण सफलता प्राप्त की।

उपचार में प्रयोगार्थ मिट्टी—

1. किसी नदी अथवा तालाब जैसे पवित्र स्थान के किनारे की कोमल एवं चिकनी मिट्टी।
2. किसी बाग-बगीचे में खाली स्थान पर दो फुट गहरा गड्ढा खोदकर मिट्टी प्राप्त की जा सकती है।
3. शहरों की बस्ती तथा गन्दे नालों से दूर की मिट्टी।
4. कुएं की खुदाई हो रही हो तो उस मिट्टी को भी प्रयोग में लाया जा सकता है।
5. कुम्हार जिस मिट्टी से बर्तन बनाता है, वह मिट्टी अधिक अच्छी होती है।
6. नदी या समुद्र के किनारे मिलने वाली बालू या रेत भी एक प्रकार की मिट्टी ही होती है। इसका प्रयोग संक्रामक विष तथा कब्ज को दूर करने में अत्युत्तम है।
7. काले रंग की मिट्टी चर्म रोगों और घावों में लाभदायक है।
8. लाल रंग की मिट्टी जोड़ों के दर्द में उपयोगी होती है।

9. मुलतानी मिट्टी का प्रयोग स्त्रियां शरीर पर मलने तथा सिर धोने के काम में लाती हैं।

10. खड़िया मिट्टी का प्रयोग दांतों का मंजन बनाने में किया जाता है।

मिट्टी की पट्टी को प्रयोग में लाने की विधि

मिट्टी-चिकित्सा में प्रयोग में लाने वाली मिट्टी न अधिक चिकनी और न अधिक रेतीली होती है। उसमें कंकड़, कांटा आदि कुछ न रहे। अधिक सूखी मिट्टी को कूट-पीसकर छानने योग्य बना लें। फिर आवश्यकतानुसार पानी इतना डालें कि वह मुलायम रहे और अधिक देर तक न सूखे। आवश्यकता पड़ने पर मिट्टी को धूप में सुखा सकते हैं धूप के स्पर्श से मिट्टी के गुणों में वृद्धि हो जाती है। एक टाट का टुकड़ा लेकर, उस पर लकड़ी अथवा चम्मच से मिट्टी फैलानी चाहिए। (हाथों का स्पर्श ठीक नहीं) हाथों के द्वारा शरीर की गर्मी मिट्टी में प्रवेश कर सकती है। मिट्टी की पट्टी इस प्रकार रखी जाए कि मिट्टी त्वचा पर सीधी स्पर्श करें। त्वचा तथा मिट्टी के मध्य में कोई वस्त्र नहीं रहना चाहिए। त्वचा पर मिट्टी तथा मिट्टी पर टाट अथवा वस्त्र रहना चाहिए। पट्टी कम से कम आधा घंटे तक रखनी चाहिए। पट्टी हटाने के पश्चात उस अंग को भीगे हुए वस्त्र से पोंछें। फिर उसे सूखे कपड़े से पोंछकर धीरे-धीरे रगड़कर अथवा रात्रि को खाना खाने के तीन घन्टे पश्चात मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। प्रयोग में लाने वाली मिट्टी 2-3 घंटे पानी में भीगी रहनी चाहिए।

मिट्टी के चिकित्सात्मक गुण

1. मिट्टी शरीर के अन्दर के मल को घुलाती है।
2. मिट्टी में शरीर के समस्त विकारों को खींचने की शक्ति होती है।
3. मिट्टी में शरीर के अन्दर के विजातीय द्रव्य एवं औषधि विष को बाहर निकाल फैंकने की शक्ति होती है।
4. मिट्टी शरीर में किसी भी प्रकार की जलन एवं तनाव को दूर करती है। शरीर को शिथिलीकरण की अवस्था में लाकर गहरी निद्रा प्रदान करती है।
5. मिट्टी हमारे शरीर की अधिक गर्मी को खींचकर ताप-संतुलन करती है और आवश्यक ठंडक प्रदान करती है।
6. मिट्टी में सांप-बिच्छू आदि के काटने के विष को दूर करने की शक्ति होती है।
7. मिट्टी हमारे शरीर को चुम्बकीय एवं रोग निवारक शक्ति प्रदान करती है।
8. मिट्टी सामान्य अवस्था में सभी प्रकार के रोगों में उपयोगी है, विशेषकर कब्ज, फोड़ें-फुन्सी, सूजन एवं दर्द आदि।

मिट्टी त्वचा के रोम कूप को खोलती है, रक्त को ऊपरी भाग में खींचती है, अन्दर के दर्द एवं रक्त संचय को दूर करती है और विजातीय द्रव्य को बाहर निकालती है।

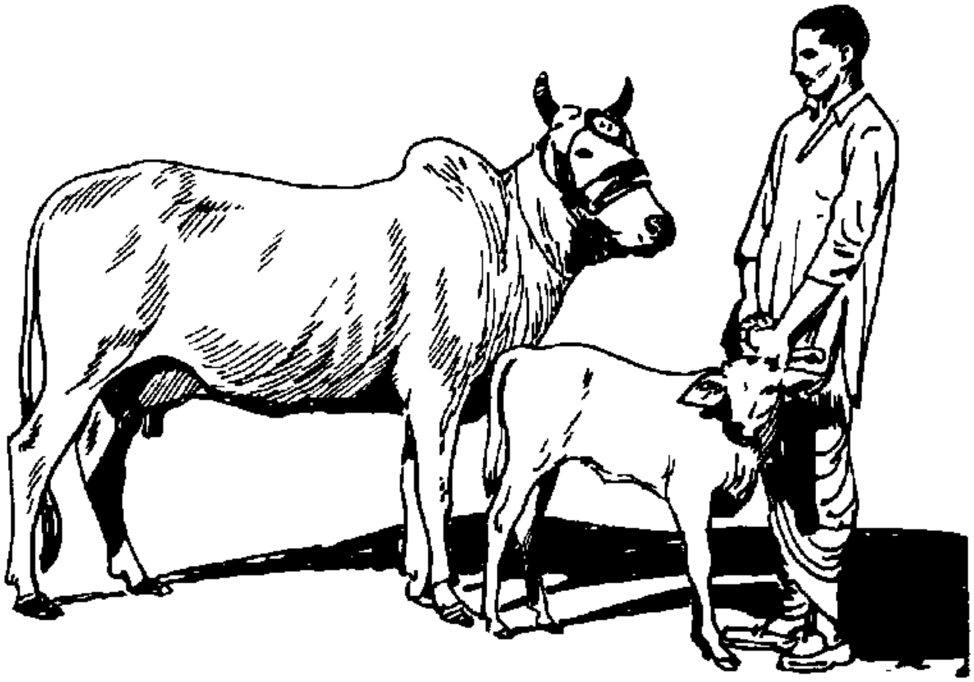

"हमने आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लक्ष्यों को पाने में प्रेरक शक्ति एवं मूल्यों की उपेक्षा की है। हमारा प्रशासक एवं प्रबन्धक वर्ग व्यापक सामाजिक उद्देश्यों के प्रति तटस्थ व उदासीन हो गया है। उनके आचरण व व्यवहार का प्रभाव उन लोगों पर पड़ता है जिनके लाभ के लिए कार्यक्रम तैयार किए जाते हैं। परियोजनाओं के, फिर चाहे वे करोड़ों रुपये की लागत वाली बड़ी परियोजनाएं हों या जगह-जगह फैली छोटी योजनाएं हों, जिनका असर बहुसंख्य गरीब जनता पर पड़ता है, क्रियान्वयन में कुशलता और निष्ठा की कमी असहनीय और हताश करने वाली है। यह कमी नहीं रहनी चाहिए।"

– इंदिरा गांधी

(सातवीं पंचवर्षीय योजना का दृष्टिकोण 4 जून, 1984 को योजना आयोग, नई दिल्ली में हुई बैठक में इंदिरा गांधी का भाषण)।

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/7
P & T Regd. No. D (I
Licenced under U (D).
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

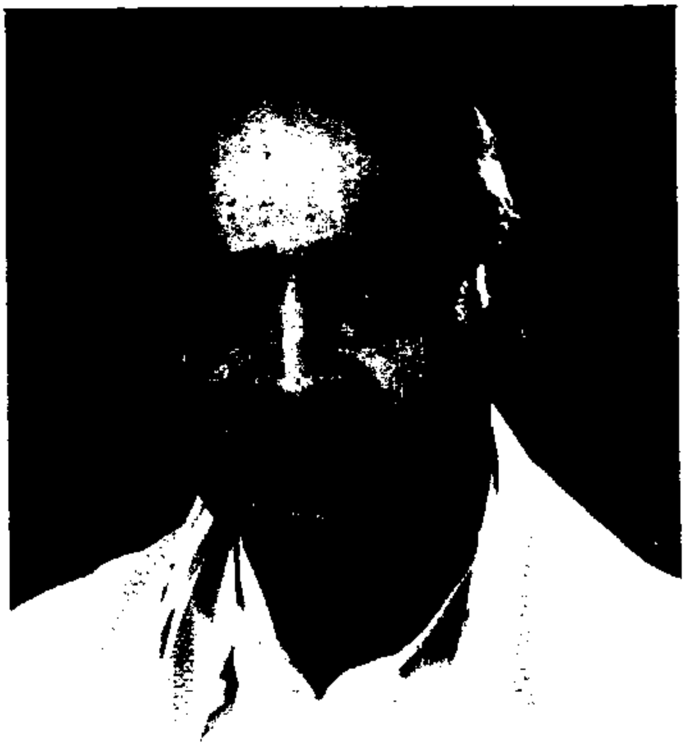

"देहात के गरीबों के उत्थान पर सरकार सबसे अधिक ध्यान देगी। हमारा प्रयत्न होगा कि ग्रामीण क्षेत्रों में खेती पर जो दबाव है उसे कम करने के लिए रोजगार के दूसरे साधन उपलब्ध कराए जाएं जिससे कि बेरोजगारी अर्ध-रोजगार और कम आय की समस्या का सामना किया जा सके। प्रशासन को अधिक जिम्मेदार बनाया जाएगा जिससे कि विकास के लिए खर्च किए गए प्रत्येक रुपये का लाभ उन लोगों तक पहुंच सके जिनको इसकी जरूरत है।"

— पी. वी. नरसिंह राव

(ये अंश प्रधानमंत्री पद संभालने के बाद ही 22 जून 1991 को आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से प्रसारित पहले राष्ट्रीय प्रसारण से लिया गया है)।

... दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और